गगनाञ्चल

प्रवासी भारतीय विशेषांक

वर्ष 25 अंक 4 अक्तूबर–दिसम्बर 2002

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद्

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद् भारत के विदेश मंत्रालय के अधीन एक स्वायत्त संगठन है। भारत व अन्य देशों के मध्य सांस्कृतिक संबंधों एवं पारस्परिक सद्भाव को स्थापित तथा संपुष्ट करने के उद्देश्य से 1950 में परिषद् की स्थापना की गयी थी। भारत तथा दूसरे देशों के मध्य इस सांस्कृतिक संवाद के उद्देश्य से आयोजित अपने प्रकाशन कार्यक्रम में परिषद् अन्य गतिविधियों के अतिरिक्त छः पत्रिकाएं प्रकाशित करती है, जिसमें चार त्रैमासिक पत्रिकाएं एवं दो छमाही पत्रिकाएं हैं। हिंदी (*गगनाञ्चल*), अंग्रेज़ी (*इंडियन होराइजन्स* और अफ्रीका क्वार्टरली), अरबी (*सक़ाफ़त–उल–हिंद*), त्रैमासिक पात्रिकाएं हैं और स्पेनिश (पपलेस दे *ला इंडिया*), फ्रेंच (*रेकौव अवेक लैंद*) छमाही पात्रिकाएं हैं। प्रकाशन सामग्री के लिए संपादक '*गगनाञ्चल*' से निम्नलिखित पते पर संपर्क किया जाना चाहिए:

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद्
आज़ाद भवन, इंद्रप्रस्थ एस्टेट,
नई दिल्ली–110002

शुल्क दरें

वार्षिक	त्रैवार्षिक
रु० 100	रु० 250
US$ 40	US$ 100
£ 16	£ 40

उपरोक्त शुल्क दरों का अग्रिम भुगतान "भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद्, नई दिल्ली" को देय बैंक ड्राफ्ट/मनीआर्डर द्वारा किया जाना श्रेयस्कर है।

प्रकाशक
सूर्यकान्ति त्रिपाठी
महानिदेशक,
भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद्,
नई दिल्ली

संपादक
कन्हैयालाल नन्दन

ISSN : 0971-1430

मुद्रक : सीता फाईन आर्ट्स प्रा० लि०,
ए-22, नारायणा इंडस्ट्रियल एरिया,
फेज़–2, दिल्ली–110028
दूरभाष : 25895100, 25896999
ई–मेल : *printer@vsnl.com*

प्रकाशक की ओर से

ऐसा माना जाता है कि विश्व में हर सातवें में से एक व्यक्ति भारतीय मूल का है। इनमें से लगभग सौ करोड़ व्यक्ति भारत में रहते हैं, व दो करोड़ भारत की सीमाओं के बाहर। भारत वंशियों के भारत से बाहर जाकर बसने के कई राजनीतिक, सांस्कृतिक और आर्थिक कारण हैं। यह परम्परा, बौद्ध धर्म के प्रचार के साथ ढाई हजार वर्ष पूर्व प्रारम्भ हुई। समुद्री एवं हवाई यात्रा के विकास के कारण, पिछले दो सौ वर्षों में भारतीय मूल के लोग दुनिया के कोने–कोने में जा कर बसे हैं। भारत में अंग्रेजी उपनिवेश व्यवस्था के अंतर्गत, सूरीनाम, फीजी, मॉरीशस और श्रीलंका जैसे देशों में कृषि का विकास करने के लिए भारतवंशियों को संस्थागत रूप से ले जाकर बसाने का एक विशद राजनीतिक इतिहास है। मध्य एशिया, दक्षिण पूर्व एशिया, यूरोप और अमेरिका में भारतीयों के प्रवास के कारण, आर्थिक हैं।

स्वतंत्रता के उपरान्त, भारत सरकार ने विदेशों में बसे प्रवासियों के साथ सम्पर्क बनाये रखने के लिए सतत प्रयास किया है। भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद् की पत्रिका गगनांचल का प्रकाशन, इस भावना से किया जाता है कि विदेशों में बसे हिन्दी भाषी लोगों को भारतीय संस्कृति और साहित्य से जोड़ा जाए। इस वर्ष, यह पत्रिका 25 वर्ष पूरे करने जा रही है। अपने 25 वर्ष के इतिहास में गगनांचल के अनेक अंक प्रवासी भारतीय को समर्पित हैं। गगनांचल का यह विशेषांक भी इसी श्रृखंला की एक कड़ी है।

प्रवासी भारतीयों ने, जिस भी देश में जाकर बसे हैं, उस देश के आर्थिक और सांस्कृतिक विकास में अपना योगदान दिया है। सूचना प्राद्यौगिकी के तीव्र विकास ने इतनी तेजी से अंतर्राष्ट्रीय परिदृश्य को बदला है, कि पूरा विश्व एक गांव लगता है। इस बदलते तकनीकी माहौल से भारत के बाहर रह रहे प्रवासी, भारत के सांस्कृतिक और आर्थिक जीवन में अपना योगदान दे सकते हैं। साथ ही, भारत सरकार भी प्रवासी भारतीयों के प्रति अपना उतरदायित्व निभाने में अधिक सक्षम हुई है। जनवरी 2003 में मनाया जा रहा "प्रवासी भारतीय दिवस" इसी भावना का द्योतक है।

आशा है कि गगनांचल का "प्रवासी भारतीय" विशेषांक इस भावना को प्रखर करने में सफल होगा।

सूर्यकांति त्रिपाठी

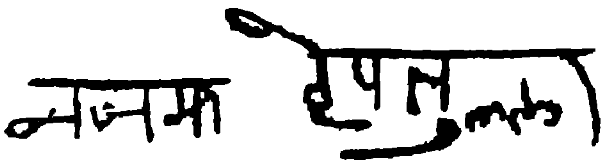
सूर्यकांति त्रिपाठी
(महानिदेशक)

अध्यक्ष की ओर से

आगामी आप्रवासी भारतीय दिवस के उपलक्ष्य में मैं सभी विशिष्ट प्रतिनिधियों का सादर अभिनंदन करती हूँ। भारतीय मनीषा में "वसुधैव कुटुम्बकम्" की परिकल्पना को इस वृहद भारतीय परिवार ने जीवंत किया है। अपने पुरुषार्थ से उसने विश्व की मेधा एवं संपदा में जो महती योगदान किया है, उससे भारत का गौरव बढ़ा है। युग–युगान्तर से भारत ने विश्व की अन्य संस्कृतियों से दार्शनिक, सांस्कृतिक एवं आर्थिक आदान–प्रदान की सतत् परम्परा को जीवित रखा है। आधुनिक विश्व में इस परम्परा को और समृद्ध बनाने में हमारे आप्रवासी बन्धुओं का विशिष्ट एवं सराहनीय योगदान रहा है। प्रथम आप्रवासी भारतीय दिवस उनके इस योगदान के उपलक्ष्य में आयोजित किया गया है।

त्वरित संचार एवं कंप्यूटर के इस युग में जबकि आर्थिक एवं तकनीकी आदान–प्रदान अधिकाधिक सहज हो रहा है, यह आवश्यक है कि हम विश्व की विभिन्न संस्कृतियों के बीच एक संवाद बनाये रखें। भूमंडलीकरण तभी सफल हो सकता है, जब हम विश्व की सांस्कृतिक विविधता को न केवल संरक्षित रखें, बल्कि उसे और अधिक समृद्ध बना सकें। आप्रवासी भारतीय भारत की समन्वित सांस्कृतिक परम्परा के प्रतिनिधि हैं। भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद् के संस्थापक के रूप में मौलाना आज़ाद ने अखिल विश्व से इस सांस्कृतिक संवाद को सातत्य प्रदान करने का प्रयास किया। मौलाना साहब को भारत की सांस्कृतिक सहिष्णुता पर असीम विश्वास था। भारत में बाह्य प्रभावों को आत्मसात करने की अपार क्षमता रही है। हमारे ऐतिहासिक अनुभवों ने हमें वैश्विक साहचर्य एवं बंधुत्व पर एक नवीन दृष्टि दी है। पंचशील हमारे राजनय का प्रामाणिक आधार रहा है। भारतीय दर्शन में एकात्म ब्रह्म को परम सत्य की मान्यता है जो कि विश्व की अनंत विविधताओं में अभिव्यक्त है। 'एकोऽयं विप्रः बहुधा वदन्ति' या 'वहादत अल् वुजूद'। भारत ने अनेकता में अंतर्निहित एकता को पहचाना है, अतः आवश्यक है कि हम सार्वभौमिक मानवता की इस एकता के प्रति पुनः संकल्पबद्ध हों। आज ज़ब कि चतुर्दिक विश्व में मूलवाद सिर उठा रहा है तथा विभिन्न संस्कृतियों के मध्य दरार अधिकाधिक व्यापक हो रही है, यह आवश्यक है कि विश्व में एक

सांस्कृतिक संवाद कायम हो। इस प्रयास में हमें आप्रवासी बन्धुओं का विशिष्ट सहयोग प्राप्त है। हमारे आप्रवासी बंधु भारत का यह प्राचीन दर्शन दिग्दिगांतर तक पहुचाएं, विश्व सौहार्द के प्रति यह उनका योगदान होगा। भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद् के अध्यक्ष के रूप में आप्रवासी भारतीय प्रतिनिधियों का पुनः हार्दिक अभिनंदन करती हूँ।



नजमा हेपतुल्ला

सम्पादक की ओर से

स्वतंत्र भारत के इतिहास में पिछले साल एक ऐसा काम हुआ था जिसे सारे संसार के भारतवंशी समाज में खुले मन से सराहा गया था। वह काम था विश्वभर में फैले भारवंशियों के गौरव को पहचानकर उन्हें भारत की आंतरिक ऊर्जा से जोड़ना। इस महती काम के लिए विदेश मंत्रालय ने जो समिति बनायी थी, उसके अध्यक्ष थे सुविख्यात संविधान विशेषज्ञ विधिवेत्ता सांसद डॉ० लक्ष्मीमल्ल सिंघवी। उन्होंने अपनी रिपोर्ट प्रधानमंत्री के हाथों सौंपते हुए जो सिफ़ारिशें की थीं, उन पर अपनी सहमति की मोहर लगाते हुए प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी ने तत्काल कहा था कि 9 जनवरी का दिन प्रतिवर्ष आप्रवासी भारतीय दिवस के रूप में मनाया जाया करेगा। वह दिन भारत के इतिहास का यादगार दिन है। उसी दिन महात्मा गांधी दक्षिण अफ्रीका से भारत लौटे थे। प्रवासी गांधी के स्वदेश लौट कर अपनी जड़ों से जुड़ने का दिन। उसी संकल्प के तहत 9 जनवरी 2003 को प्रथम आप्रवासी भारतीय सम्मेलन का आयोजन किया गया है। डॉ० सिंघवी ने इस अंक के लिए विशेष रूप से दिये साक्षात्कार में स्पष्ट कहा है कि "वे विश्व के आकाश में, अपने मन के क्षितिज पर एक भारतवंशी इन्द्रधनुष देखना चाहते हैं। इस इन्द्रधनुष की सतरंगी छटा और उसकी परिकल्पना मुझे आत्मविभोर करती है, क्योंकि यह उत्सव भारत का उत्सव है, भारतवंशियों का उत्सव है, निवासी और प्रवासी के संगम पर भारत और विश्व का उत्सव है।"

यह उत्सव अपनी जड़ों से जुड़ने और उनके साथ अपनी इयत्ता को रेखांकित करने का उत्सव भी है। विभिन्न देशों में जा बसे हमारे भारतवंशी समाज ने वहाँ भारतीय रहन–सहन और संस्कृति की छाप तो छोड़ी ही है, उन देशों को अपना कर उनके सांस्कृतिक, साहित्यिक, आर्थिक, राजनैतिक और सर्वांगीण विकास में अनूठा योगदान दिया है। अनेक देशों में ये भारतवंशी वहाँ के राष्ट्रनिर्माण की प्रक्रिया में गहरी हिस्सेदारी निभा रहे हैं। अनेक ऊंचे–ऊंचे पदों पर आसीन हैं। उनमें से कुछ देशों से उनके योगदान की तस्वीर 'गगनांचल' के प्रस्तुत अंक में दिये जा रहे आलेखों से मिल सकेगी। कुछ आलेख समय–सीमा के अंदर न आ पाने के कारण उस वैश्विक भारतवंशी छवि की मुकम्मल तस्वीर दे पाने में सहायक नहीं हो पाये,

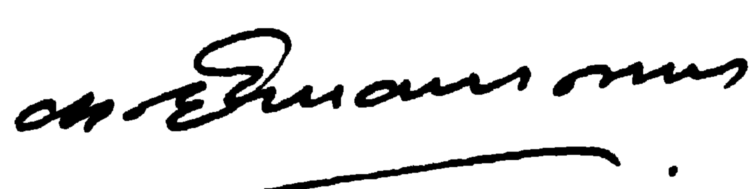
किन्तु जो आलेख हैं, उनसे भारतवंशी समाज की जिजीविषा, संघर्षों से जूझने की शक्ति और अपने संस्कारों के प्रति आस्था का भाव पूरी तरह उभर कर सामने आता है।

'गगनांचल' अपने उन सभी लेखकों का हृदय से आभारी है जिन्होंने समय कम होते हुए भी इस विशेष अवसर के लिए हमे अपने आलेख भेजे। भारतवंशी समाज से लगातार संबंध बनाने का अनथक काम किया पत्रकार बालेश्वर अग्रवाल ने। उनका साक्षात्कार भी हम इस अंक में दे पा रहे हैं। प्रवासी मन कहाँ–कहाँ से ऊर्जा पाता है और उसकी कैसी–कैसी छवियाँ अपने मन में अंकित करता है, इसको भी इस अंक की अनेक कविताओं में देखा जा सकता है। लेकिन विदेश में अपने देश को जीने के लिए क्या–क्या उपक्रम करने पड़ते हैं और एक चिन्तक मन किस प्रकार अपने को अपनी जड़ों में बींधे रहना चाहता है उसे जिस प्रकार पंडित विद्यानिवास मिश्र ने 'गगनांचल' के लिए लिखे गये अपने लेख 'कहत किन परदेसी की बात' में चित्रित किया है वह रचनाधर्मिता का एक ऊर्जस्वित उदाहरण है। मारीशस से हिंदी रचनाकार अभिमन्यु अनत ने जिस प्रेम से इस अंक के लिए अपनी कहानी भेजी, वह 'गगनांचल' के प्रति विदेशों में भारत की यादें जीने वाले रचनाकारों के मन का आईना है। कोशिश हमारी यह है कि इन रचनाओं के ज़रिये प्रवासी भारतीय मन और प्रवास की मानसिकता के विभिन्न पहलुओं पर हमारा ध्यान जा सके। उन्हें भले ट्रिनिडाड के हरिशंकर 'आदेश' की रचनाओं में पाया जाये या गाज़ियाबाद के कुँअर बेचैन की गजलों में। व्यंग्यकार गोपाल चतुर्वेदी को इस पहलू पर लिखने की सूझी, जिसे आप व्यंग्य के साथ पढ़ सकेंगे। पिछले दिनों वाशिंगटन डीसी के एक थियेटर में वहाँ बसे भारतीय रंगकर्मी उमेश अग्निहोत्री ने डॉ० धर्मवीर भारती का 'अन्धा युग' मंचित किया जो विदेशियों के बीच भारतीय चेतना की अलख कैसे जगा सका, यह उनके आलेख में स्पष्ट पढ़ा जा सकता है।

प्रथम प्रवासी भारतीय दिवस के सन्दर्भ में इन रचनाओं को प्रस्तुत करते हुए हमें हर्ष हो रहा है और हमारी उम्मीद है कि इन्हें पढ़कर पाठकों को भी हर्ष होगा।

इसी अंक के साथ 'गगनांचल' अपने प्रकाशन के पच्चीस वर्ष पूरे कर रहा है। इस दृष्टि से भी इस अंक का भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद के लिए एक ऐतिहासिक महत्त्व है। हम अपने पाठकों और लेखकों के हृदय से आभारी हैं कि उन्होंने 'गगनांचल' को इतना प्यार और आदर दिया कि 'गगनांचल' अपने गौरव के सोपान चढ़ कर मुस्कराता हुआ आपकी सेवा कर रहा है।

नये वर्ष की मंगलकामनाओं के साथ।



कन्हैयालाल नन्दन
(संपादक)

अनुक्रम

कहत किन परदेसी की बात

● डॉ॰ विद्यानिवास मिश्र

"देश–विदेश की यात्राओं से मेरी अपनी पारंपरिक समझदारी की समझ कुछ विशद हुई है और अपने देश के प्रति प्यार और समर्पण का भाव इसलिए बढ़ा है कि यह देश गैर को गैर नहीं समझता। एक तरह से विदेश में रहकर स्वदेश को मैने अनेक प्रकार की पीड़ाओं के बीच रहते हुए जीने की कोशिश की है। यह कोशिश मुझे कुछ और न दे सकी हो, एक संतोष तो देती है कि मैं अपने देश की कमजोरी को छिपाने के लिए उसका दोष विदेश पर डालने की नादानी न करूं।"

देश घूमने की उमंग का अलग रोमांच है। पराए देश की यात्रा का रोमांच और भी विशेष है। धीरे–धीरे यह उमंग कम होने लगती है। उम्र के कारण नहीं, अपनी जमीन के लिए बेचैनी के कारण। यह बेचैनी इसलिए होती है कि आदमी कभी न कभी स्व से ही आश्वासन पाता है। आधी से अधिक जिन्दगी बोस्टन में बिताकर अपने एक बिदाई भाषण में आनन्द कुमारस्वामी ने कहा कि अपने जीवन का शेष भाग हिमालय की गोद में अपने स्व के पुनः अन्वेषण में लगाऊँगा। वही अस्तगमन होगा। अस्त का अर्थ वैदिक भाषा में घर होता है। सूर्य अस्त होता है तो अर्थ होता हे कि सूर्य अपने विश्राम के लिए घर पहुंचता है। यह अलग बात है कि सूर्य अस्त नहीं होता, लोगों को लगता है कि सूर्य अस्त हो रहा है, क्योंकि लोगों को अपने जीवन के अस्त होने की छवि सूर्यास्त में प्रतिबिंबित मिलती है। बहुत कम यायावर होंगे जिन्हें घर का ऐसा निमंत्रण यात्राओं की श्रृंखला में न मिलता हो, भले ही कुछ लोग अनसुना कर देते हैं। जो लोग अपनी धरती पर नहीं लौट पाते, वे जहां रहते हैं वहां अपनी धरती का टुकड़ा अपने लिए रच लेते हैं।

मैं भारतीय ढंग से ही विदेश में रहा। मेरा घर लघु भारत कहा जाता था। वहां धूप की गंध होती थी, भारतीय शाकाहारी भोजन की गंध होती थी, भारतीय कॉफी और चाय की गंध

होती थी और सोने के लिए स्प्रिंगदार गद्दे के ऊपर चीड़ की पटिया लगवाई गई थी क्योंकि स्प्रिंगदार शैय्या पर सोने से पीठ में दर्द होने लगता था। मेरे बड़े भाई की तरह थे अज्ञेय जी, उन्हें हम लोग भाई कहते थे। वे भी जब बर्कले मेरे साल भर रहने के बाद आए तो उनका भी घर भारत की गंध से भर उठा। पर यह सब करने के बावजूद देश की मिट्टी में मिलने का, देश की मिट्टी पर पैर रखने का रोमांच घुमक्कड़ी के रोमांच से कुछ अलग होता है। मैं पहली बार बर्कले से 1961 के अंत में लौटा था और कुहरे के नाते दिल्ली पहुंचते–पहुंचते विमान कराची की ओर मोड़ दिया गया और लगभग बारह घंटे अपने देश को छूने की प्रतीक्षा असह्य होने लगी। शाम को दिल्ली पहुंचा, दूसरे दिन इलाहाबाद। कड़ाके की ठंड थी, पर त्रिवेणी में स्नान किया, लगा कि मेरा पुनर्जन्म हो गया।

पहला प्रवास तो फुर्सत के क्षणों में बहुत सालता है। मैं जिस समय बर्कले में था, बहुत थोड़े से भारतीय थे। उनमें से कुछ काफी निकट आ गये थे। वे शुक्र या शनि को मेरे घर पर आते थे। मैं सबके लिए रसोई बना देता था। पर सप्ताहांत के दो दिन झेले नहीं जाते थे। साथ बैठकर भारतीय संगीत सुनते थे। एक दिन रामाश्रय राय जी एक रिकार्ड लाये जिसमें कुछ चैती के गाने थे। उसमें पद का बोल था "और दिना बोले कोइली दिन दुपहरिया, आजु काहे बोले अधि रतिया हो रामा..."। उसी दिन शाम को काठघर में मेरे लिए जो दफ्तर मिला था उसमें सूरज डूबने के बाद कोयल की कूक सुनाई पड़ी थी। उसी दिन जब यह रिकार्ड औचक बजा तो उस सुर–संपन्न देश की हवा जहर घोलने लगी। वहां जाने कैसे एक कोयल बोली, पूरे क्षेत्र में कहीं चिड़िया दिखाई नहीं पड़ती थी। किसी चिड़िया की आवाज कभी सुनाई नहीं पड़ती थी। कभी शहर में कहीं गाय–बछड़े नहीं दिखाई पड़ते थे। शहर से बाहर निकल कर कहीं गौशाला हो—यह अलग बात है। वहां बड़े–बड़े घेरों के भीतर चरती गायें देखने को मिल जाती थीं। पर शहर से दो तीन घंटे यात्रा के बाद। रोजमर्रा की जिन्दगी में पशु–पक्षी का स्थान नहीं था। वहां पर रहते हुए, सात–आठ महीने रहने के बाद आषाढ़ आया और कहीं बादल का नाम नहीं, बिजली नहीं, बादल की गरज नहीं। सितम्बर–अक्टूबर तक आते–आते रिमझिम–रिमझिम रोती बिसूरती बूंदाबांदी मिली—लगा इस देश में तो पावस ही नहीं। पावस नहीं तो पेड़ों के नीचे झूले कहां से होंगे, झूले और झूले के गीत कहां होंगे, धरती की सोंधी उसॉस कहां होगी। धरती का आंचल तो वहां कीट नाशकों के प्रयोग से साफ–सुथरा होते हुए भी या तो गंधहीन या फिर विषैली गंध से भरा रहता है। ऐसे में रिकार्ड पर चैती के स्वर बहुत भारी पड़े। उस विदेश में रहते हुए स्वदेश की वह धूल, वह तपती हुई बालू जो वर्षा के पहले डोंगरे से एक सोंधी सी निश्वास छोड़ती है, साफ–सुथरी, चिकनी चमकती हुई काली सड़कों से कहीं अधिक कमनीय लगी और स्वदेश कुछ अधिक प्यारा लगा। अपने देश में रहते हुए तो लोग अपने देश को कोसते रहते हैं पर बाहर जाकर अपने देश की सही पहचान होती है। इस पहचान की बहुत कीमत अदा करनी होती है। वह कीमत सघन परिश्रम से अदा की जाय, वह कीमत जैसे–तैसे पेट पाट

कर और पोषण की पूर्ति के लिए तवे से उतरी हुई रोटी की जगह टोस्टर पर सेंकी पावरोटी, ठंडे दूध, फलों के रस से पूर्ति करने के बावजूद एक ललक तो सुसचि से बनाए गए भारतीय व्यंजन के लिए बनी ही रहती है। स्वर्गीय डाक्टर ज़ाकिर हुसैन के भाई इतिहास के प्रोफेसर थे। वे फुलब्राइट शोधवृत्ति पर अमेरिका विश्वविद्यालय में गये। चार–पांच महीने के बाद वे बर्कले पधारे। आते ही उन्होंने अपने एक शिष्य से, जो मेरे ही साथ उर्दू पढ़ाने के लिए नियुक्त थे, मिलते ही कहा, "मियां, कहीं हिन्दुस्तानी चाय मिलेगी" ये जो पुड़िया में चाय के नाम पर क्या तो मिलता है, उसे गरम पानी में डाल कर चाय पीते–पीते जीभ का स्वाद बिगड़ गया है। उसके साथ लगता है मेरी जुबान भी बिगड़ गई है। उस शिष्य ने (जिसका नाम अब्दुल अजीम था) कहा–"एक पंडित जी हैं, उनके यहां चाय मिलेगी। और उन्हें लेकर मेरे यहां आ गया। पहले फोन कर दिया कि पंडित जी, मेरे एक बुजुर्ग आये हैं, चाय पिलाने ला रहा हूँ। अजीम मेरे पास दो–तीन दिनों में एक बार जरूर आ जाते थे। मैंने कहा, "तुम्हें इजाजत की जरूरत कब से पड़ने लगी।" दोनों आये। मैंने चाय के साथ कुछ पकौड़ी बनाई। रख दी, अचार ले गया था, उसका एक टुकड़ा रख दिया। वहां औटार दूध का डिब्बा मिलता है, उनसे मिठाई बना लेता था। कुछ मिठाई भी रख दी। उन्होंने जब तक चाय पी, अमेरिका को सौ–सौ गालियां दी। बोले, चाय तो चार महीने के बाद आज मयस्सर हुई है। तब अमेरिका में भारतीय रेस्तरां नहीं थे। चाय पीने के बाद उन्होंने कहा, बर्खुरदार, यह बूढ़ा बड़ा बेशर्म है। मैं यहां से बिना खाए नहीं टलने वाला। मैंने पूड़ी–सब्जी बनाई और घर ही दही जमा लेता था, दही परस दिया। वे परम तृप्ति से स्वाद लेते रहे। मैंने पूछा, "किब्ला, आप तो निरामिष भोजन वाले नहीं है और यहां तरह–तरह के आमिष भोजन मिलते हैं, आपको यह घास–पात कैसे रूच रहा है। बोले, "मियों यही तो खाना है। इटावे में जन्मा हूँ, दूध, दही, घी के बिना खाना क्या होता है? आखिर मेरे खून में तो यही पूड़ी–तरकारी–चटनी–खीर का स्वाद है।"

उनकी बात से मुझे अनुभव हुआ कि आदमी सब चीजों के अनुकूल अपने को बना लेता है, लेकिन उसका कुछ जातीय स्वाद होता है। सौन्दर्य–सी सौष्ठव की कुछ जातीय चेतना होती है। एक अमेरीकी तरुण प्रोफेसर हिन्दुस्तान सर्वेक्षण के लिए आये थे। साल भर बाद अमेरिका लौटे तो पहली प्रतिक्रिया थी कि ईश्वर को धन्यवाद कि इतने दिनों बाद सुन्दरियों की नंगी टाँग देखने को मिली। आदमी भले ही अपने को विदेश की चाल–ढाल में ढालने की कोशिश करे, ढाल भी ले, पर वह कहीं–न–कहीं स्वदेश के लिए तड़पता ही रहता है।

मैं अमेरिका में रहते हुए कभी–कभी सोचता था कि नेता जी सुभाष चन्द्र बोस देश से बाहर गये होंगे, देश के लिए तिनके से पहाड़ जैसी आजाद हिंद फौज खड़ी की होगी, सब इस प्रबल आशा से कि देश को स्वतंत्र देखेंगे। अंडमान की धरती पर उन्होंने तिरंगा भी लहराया, इम्फाल के पास तक वे आये और इसके बाद कहां गुम हुए, कैसे गुम हुए, कैसे

अंतराली के दिन उस देश के लिए तड़पन की एक तीखी तड़पन की लकीर बने रहे, यह यहां रहते हुए हम कल्पना भर कर सकते हैं, उनकी पीड़ा शायद हम झेल भी नहीं पाते।

अपने पहले विदेश प्रवास में, जो लगभग दो वर्षों का था, बावजूद इसके कि मैं उस देश की कला–संस्कृति को नजदीक से जानने के लिए गहराई से प्रयत्न करता रहा और शैक्षिक जगत के लोगों का आदर भी पाता रहा, मैं वहां के रस में डूब नहीं सका। मेरे साथी अध्यापक ने मुझे फुटबाल का खेल दिखाया, जिसे वे लोग बड़ा खेल कहते हैं और उसमें गेंद हाथ–पैर दोनों से उछाली जाती है और खेल से अधिक आकर्षक होता है खेल के मैदान में दोनों गोल के प्रोत्साहन के लिए तरुणियों की नृत्य–मुद्राएं और दोनों तरफ के प्रशंसकों के मारो–मारो–रौंदो के गगन भेदी नारों का पूरे आकाश में भर जाना। मेरे मित्र ने कहा, यही अमेरिका है। मैंने जार्ज संगीत सुना, कलात्मक फिल्म देखी, आधुनिक कला की प्रदर्शनियां जगह–जगह ध्यान से देखीं। अपने दफ्तर के बगल के नाट्य कला के प्रोफेसर आलीवर के स्नेहवश नाटक के रिहर्सल देखे। यूनानी रंगमंच से लेकर ब्रेख्त के रंगमंच वाले नाट्य प्रयोग देखे। हिन्दी कविता का अंग्रेजी काव्यान्तर करते समय अमेरीकी कवियों से मैंने सहयोग लिया और उनकी कविता बारीकी से तोलने की कोशिश की। मुझे विश्वास है कि मैंने उस विजातीय संस्कृति के उस समय तक भारत में अनछुए भीतरी पहलुओं को समझा। उससे मेरी दृष्टि का विस्तार हुआ, पर उससे कम दृष्टि की वह गहराई नहीं थी जो उस संस्कृति को आमने–सामने रखकर अपनी संस्कृति की समझ आई।

एक बार एक राजपुरुष वहां गये। वे दिवंगत हो चुके हैं। इसलिए नाम लेना उचित नहीं है। उन्हें लंच पर भारतीय विद्या से संबद्ध अध्यापकों ने निमंत्रित किया। मैं भी उसमें शामिल हुआ। पर लंच जब लंबा चलने लगा तो मुझे ख्याल आया कि दसेक मिनट बाद मेरा क्लास है। मैंने क्षमा मांगी और चला आया। उन्होंने मेरे पीछे टिप्पणी की। ऐसे लोग बाहर जाते हैं तो देश की नाक कट जाती है। ये यहां रहकर भी इस देश के तौर–तरीके न सीख सके। उनकी टिप्पणी और भी तीखी होती गई कि एक मेजबान बुजुर्ग प्रोफेसर ने अपनी तिलमिलाहट को दबाकर कहा, "मि. अमुक, आप हमारे मेहमान हैं इसलिए मैं कुछ टिप्पणी नहीं कर रहा, इतना ही आपके द्वारा संदेश पहुंचाना चाहता हूँ कि काश आप प्रो. मिश्र की तरह कुछ और लोगों को दूसरे देश भेजते, अपने दूतावासों में भेजते तो भारत की छवि कुछ दूसरी होती। प्रो. मिश्र यहाँ की संस्कृति को खूब समझते हैं पर अपनी संस्कृति को भूलने की कीमत पर नहीं। बाद में वहां उपस्थित लोगों ने मुझे बहुत बधाई दी कि प्रो॰ एमनिउ ने आपकी बड़ी बड़ाई की, वे तो कभी कुछ बोलते ही नहीं।

मैं समझता हूँ कि अपनी संस्कृति में रहते हुए जो दूसरों की संस्कृति को जानने की कोशिश करता है उसमें खो जाने के लिए नहीं, उसे गहराई से समझने के लिए, वह निश्चय ही आदर पाता है। मेरा सौभाग्य था कि मुझे बर्कले में भी और उसके बाद सिएटेल में भी

1967–68 में आदर भी मिला, प्रेम भी मिला। दो–तीन बार अमेरिकी घरों में सात–आठ दिन रहने का मौका मिला। उनके घर के व्यवहार को नजदीक से देखने का मौका मिला। मैं नहीं समझता कि मैं तमाशा बना। इतनी स्वागत पार्टियों में शामिल हुआ, मुझे कभी किसी ने शराब की घूँट पीने को नहीं दी, उलटे सबने क्षमा याचना पूर्वक कहा कि यहां काफी बनाने वाली मशीन है। अपनी काफी बनाकर आप पी लें, या दूध पी लें। खाने–पीने के मामले में भी कभी किसी ने टोका–टाकी नहीं की। आप दूसरों को स्वीकार कीजिए, वे आपको स्वीकार करेंगे।

जैसा कि मैंने पहले कहा कि यह सब तो जीने की लाचारी के कारण मैंने किया। इससे लाभ भी हुए, पर इस लाभ को जब मैं अवकाश के क्षणों में उभरने वाले निपट अकेलेपन के दर्द से तोलता हूँ तो वह दर्द बहुत भारी पड़ता है। इसीलिए दो–दो तीन–तीन बार मुझे स्थायी प्रोफेसर के पद का आमंत्रण मिला। मैं उसे स्वीकार नहीं कर सका और इसका मुझे पछतावा कभी नहीं हुआ—अपने देश में विश्वविद्यालय सेवाओं में दुरंत निर्वासन की स्थिति हुई थी। बल्कि जब बाद में विदेश गया और विदेश में मेरे साथ के गये लोगों की दूसरी पीढ़ियां आ चुकी थी, उनके साथ रहने पर उनकी बेबसी देखी, और उस बेबसी को बहलाने के लिए उनके घर आयोजित होने वाले रामचरित मानस के पाठ सुने तो मुझे लगा कि मैंने कितना अच्छा निर्णय लिया जो यहां बसा नहीं। अपने देश से बाहर बसना बड़ी कठिन नियति है। इसे झेला तो जा सकता है, पर इसे झेलते हुए आदमी सहज नहीं रह पाता। मैं यह बात केवल विरही हिन्दुस्तानी के बारे में नहीं कह रहा हूँ, जो प्रवासी की विरह–व्यथा में ही जीता रहता है। मैं कुछ निजी अनुभवों के आधार पर कह सकता हूँ कि अंग्रेजी बोलने वाला (हाँ, अमरीकी अंग्रेजी बोलने वाला नहीं) उन्हीं की नस्ल का आदमी भी वहाँ अपने को बेगाना पाता है।

एक बार इतिहास के ब्रिटिश प्रोफेसर ने मुझे फोन किया कि मैं आपसे मिलने आना चाहता हूँ। मेरे दिमाग में अंग्रेज की एक गुमसुम छवि अंकित थी जो अपनी साहबी के वृत्त में ही घिरा रहता है। मुझे उत्सुकता हुई आखिर यह मुझसे मिलने क्यों आ रहा है। वे आये, बहुत बेतकल्लुफ होकर बैठे, चाय की फरमाइश की, चुस्की लेकर चाय पी। बोले, चार–पांच महीने से यहां हूँ, किसी से दिल खोल कर बात नहीं कर सका। मुझे लगा अमरीकी बाहर से खुला होता है भीतर से बन्द। आडू के फल की तरह। बाहर से कोमल, भीतर से कठोर। वे बहुत दूर तक अनौपचारिक दिखते हैं, पर उसकी एक सीमा होती है, उसके बाद वे निठुर हो जाते हैं। मैंने कहा कि हम तो आपके द्वारा सदियों से सताए हुए हैं। वे तुरन्त बोले, तभी तो आप हमें समझ सकते हैं। आपसे खुलकर बात कर सकेंगे, भले ही आपके मन में हमारी छवि शोषक अत्याचारी की हो पर भारत में जो अंग्रेज गये थे वे बहुत परिवर्तित होकर आये हैं। कुछ तो सामंती स्वभाव लेकर, कुछ वहां की सभ्यता से आतंकित होकर। कुछ ऐसे भी हैं जो वहां की कविता, लोक गाथा, कला में रम कर आये हैं और उन्हें अपने घर में ऐसे

स्थान दिया है जैसे हम लोग अपने घर के चित्रों, गीतों को मन में सजा कर रखते हैं। वे एक घंटे तक बात करते रहे, बात कुछ विशेष नहीं थी, बस इतनी थी कि उन्हें बात करने का अवसर नहीं मिला था। मुझे उनकी जैसी शिकायत नहीं थी क्योंकि एक जैसी छवि वाले जितना एक–दूसरे की समझ के परे होते हैं उतना भिन्न छवि वाले नहीं होते। एक चुटकुला है कि एक अमेरिकी इंग्लैण्ड गया और पेट्रोल पम्प से उसे गाड़ी में पेट्रोल भराना था। जाते ही उसने पूछा कि गैस स्टेशन है, पता चला कि नहीं पेट्रोल पम्प है। अमेरिकी लड़ने लगा कि मैं अपनी आँखों देख रहा हूँ कि यह गैस स्टेशन है। पंप के मालिक ने दुहराया कि मेरा पंप मैं ही नहीं जानूँगा। यह पेट्रोल पम्प है। एक फ्रांसीसी आ गया, झगड़ा सुना। दोनों से उसने कहा कि आप थोड़ी–सी फ्रेंच जानते हैं और फ्रेंच में उसने पेट्रोल पंप का अनुवाद सुना दिया। टीप यह हुआ कि दो अंग्रेजी बोलने वाले फ्रांसीसी भाषा की सहायता से एक दूसरे को समझ सके। है तो यह मजाकिया चुटकुला पर अगर इसी को विस्तृत आयाम दें तो यूरोप के वासी अमेरिकी संस्कृति को और अमेरिकी यूरोपीय संस्कृति को शायद भारतीय भाषा के माध्यम से ज्यादा बारीकी से समझ सकेंगे। और यह बात मैंने यूरोप और अमेरिका के कई देशों की यात्रा के बाद देख ली है। कोई बहुत अभिमान की बात नहीं, पर भारतीय संस्कृत स्त्री–पुरुष जितनी आत्मीयता प्राप्त कर लेते हैं उतनी आत्मीयता दूसरे नहीं प्राप्त कर पाते। शायद भारत का यह स्वभाव है कि किसी को दूसरा मानता नहीं। साथ ही साथ दूसरे जैसा अपने को होने नहीं देता। उसमें एक प्रतिरोध भी है और अनुरोध भी है। अनुरोध इस लक्ष्य से कि चेतना का प्रवाह सब में एक है। प्रतिरोध इसलिए कि उस प्रवाह की अभिव्यक्ति देश–काल के कारण अलग–अलग है। वह अभिव्यक्ति अगर नष्ट हो जाए तो फिर ऐसी एकरसता आयेगी जो जीवन के रस को सोख लेगी। यह अवश्य है कि यहां रहते हुए जो थोथी डींग हाँकते हैं कि भारत सबका गुरू है वह भारतीय को शोभा नहीं देती। भारत तो मानता है कि

रहिमन बात अगम्य की कहन सुनन की नाहिं
जे जानत वे कहत नहिं कहत ते जानत नाहिं।।

अगर यह नहीं है कि हम अपने ज्ञान की सीमा के साथ–साथ अपने अज्ञान का अछोर विस्तार भी समझते रहे तो अपने को उपनिषदों का, संतों की वाणी का वारिस कहने का कोई हक नहीं प्राप्त होता। इसीलिए दक्षिण पूर्वी एशिया के देशों और एशिया के दूसरे देशों के साथ भी हम जब अपने को बड़े भाई, अपने को पूर्व विजेता मानकर बात करते हैं तो अप्रीतिकर हो जाते हैं और इसी प्रवृत्ति के कारण हम अप्रीतिकर हुये भी हैं। यह प्रवृत्ति हमारे भीतर उपनिवेशवादियों के लम्बे और सघन संपर्क के कारण आई, नहीं तो हिन्दुस्तान ने कभी उपनिवेश बनाया ही नहीं। पुराणों में जिनके दिग्विजय की कहानी है उन्होंने भी किसी देश की स्वाधीनता नहीं छीनी, केवल धान व बीज जैसे उखाड़कर फिर से रोपा जाता है वैसे ही सत्ता को पुनः स्थापित किया। यदि हमारी कहानियां, हमारी कला इन देशों की कला में

घुल मिल कर इनकी प्रतिभा से निखरकर नए–नए रूप धारण कर सकी तो यह औपनिवेशक दबाव के कारण नहीं था, यह आदमी के भीतर साझेदारी की विवशता के कारण था। आजादी के पचास वर्षों के बाद हमारे सामने एक चुनौती है कि हम किस प्रकार अपने आसपास के अपने जैसे सुविधावंचित देशों से किस भाव से जुड़े और किस भाव से अधिक सुविधा संपन्न देशों की ओर बिना झुके उनसे सही रिश्ता बनाएँ।

हमारे मन में पाश्चात्य संस्कृति के नाम पर एक सरलीकृत पाश्चात्य संस्कृति है, जब कि पश्चिम में कई पश्चिम हैं। अमेरिका और यूरोप में तो भेद है ही, यूरोप के देशों में भी परस्पर भेद हैं। कुछ देश ऐसे हैं जिन्होंने कोई उपनिवेश नहीं स्थापित किया, बल्कि स्वयं साम्राज्यवादियों की लिप्सा के शिकार होते रहे। इन देशों में हंगेरी, चेकोस्लोवाकिया, रोमानिया, बल्गेरिया, पोलैण्ड एक ओर आते हैं, दूसरी ओर भीतरी संघर्षों की बहुलता वाले देश हैं–जर्मनी, फ्रांस, स्पेन, इटली और ग्रीस। मुझे जर्मनी, रोमानिया, बल्गेरिया, इटली और स्पेन–इन देशों में अपेक्षाकृत अधिक समय तक प्रवास करने को मिला और कुछ देशों में एक से अधिक बार जाने को मिला। रोमानिया, इटली और फ्रांस में जिन लोगों से संपर्क हुआ वे बहुत घनिष्ट हो गये। जर्मनी में जर्मन प्रोफेसर के साथ भी रहना हुआ और भारतीय मूल के प्रोफेसर इन्दु प्रकाश जी के साथ अनेक बार रहना हुआ। बल्गेरिया में मेरे बेटी–दामाद सांस्कृतिक विनिमय के कार्यक्रम में गये थे, उनके पास एक–एक पखवारे रहा। चेकोस्लोवाकिया और हंगेरी में सात–सात दिन ही रहा पर दोनों स्थानों में अलग–अलग अनुभव हुए। हंगेरी में 1967 में गया था और हंगेरी उस समय एक बार रूसी औपनिवेशिकता से जूझ चुका था और जूझकर हंगेरी ने अपने लिए सीमित स्वाधीनता का रास्ता बनाया था। चेकोस्लोवाकिया में उसी समय स्वाधीनता के संघर्ष की शुरुआत हुई। वह संघर्ष कुचल भी दिया गया और मेरे अनेक मित्र उसमें उत्पीड़न के शिकार हुए। हंगेरी में पाणिनीय अध्ययन के साझीदार लास्लोवण्टाल मिल गये और उन्होंने अपने घर बुलाया। उनका घर जेवेगिनी गांव में था जो चेकोस्लोवाकिया के सीमांत पर डेन्यूब के किनारे पर बसा था (वहां दूना नाम से आकारित)। लास्लो के साथ करीब आठ घंटे मैंने बिताए और भाषा–विज्ञान की चर्चा के साथ–साथ रूस के साम्राज्यवाद में पिसने वाले बुद्धिजीवियों की भी खुली चर्चा हुई। लास्लो ने हँसते हुए कहा–मैं इतना निर्भीक होकर सब कुछ कह रहा हूँ क्योंकि हम जिस भाषा में बात कर रहे हैं उसे यहां घर में और बाहर कोई समझने वाला नहीं है। नहीं तो लोग अपनी पत्नी से भी सहमते हैं। अन्तरंग बातचीत या तो भीड़ से भरे रेस्तरां में करते हैं या फिर कहीं मेले में जिसमें बातचीत थोड़े से वाक्यों में ऐसे होती है जैसे दो अनजाने आदमी एक दूसरे से टकराकर माफी मांग रहे हों। सोवियत के लौह पर्दे के भीतर की स्थिति को भी मैंने देखा और उससे बाहर निकलने की स्थिति का भी मैंने जायजा लिया। इन दोनों स्थितियों की विडंबना अलग–अलग थी। पहली स्थिति में तो रहने वाला आदमी बिल्कुल अंधकार में था। जैसे–तैसे उस अंधकार को भेद कर कुछ अफवाहें पहुँचती थीं, चोरी–छुपे कुछ कैसेट पहुंचते

थे। गिरिजाघरों में सन्नाटा था। केवल एक निश्चित समय पर मोमबत्ती जला दी जाती थी। सामान्य जरूरत की चीजें भी मुश्किल से मिलती थीं। इस दमन के कारण पूर्वी यूरोप की पश्चिमी यूरोप के प्रति बहुत ही स्पृहा का भाव था। पर इसके साथ ही साथ दमन की प्रक्रिया दो सकारात्मक प्रतिक्रियाओं को जन्म देती है। एक तो अपने परिवेश के साथ सघन जुड़ाव, क्योंकि अपने देश में भी यात्राएं प्रतिबंधित रहती थी और फूल–पत्ती चिड़िया के बारे में बात करते हुए लोग एक ओर अपने मानवीय उद्‌गार व्यक्त कर सकते थे, दूसरी ओर उन्हीं को व्याज बनाकर अदभुत व्यंग्य रचना कर सकते थे। जैसा कि रूस, जार्जिया रोमानिया और पोलैण्ड के लेखकों ने किया। सौभाग्य से मुझे प्रत्येक देश में कोई न कोई व्यक्ति ऐसा मिला जो भारतीय विद्या के प्रति आकृष्ट था। साथ ही साथ दमन का भुक्तभोगी था। उनसे बात करते हुए आत्म मंथन का संकल्प जगता था। हंगेरी के हर्माता एक आदि जाति की अवधारणा को कपोलकल्पित सिद्ध करने में लगे थे। रोमानिया के ब्लागा वैदिक कविता के रूपांतरण में लगे थे। रोमानिया ने निर्चिया–लियादे जैसे विद्वान चितंक और ब्रांकुश जैसे शिल्पी को देश से पलायन के लिए विवश किया।

रोमानिया में मेरे प्रिय मित्र थे फिरजू इल्जार्ज। वे पेशे से डाक्टर थे पर संस्कृत अध्ययन में उनकी रुचि थी। उन्होंने बड़े स्तरीय शोध निबन्ध लिखे थे। उनसे 1967 में पहली भेंट हुई थी, फिर पत्र व्यवहार रहा। फिर "78 में लगभग 12 घंटे उनके घर ही उनके पुस्तकालय में जमकर बात हुई। उस पुस्तकालय कक्ष में मिर्चिया एलियादे की सारी पुस्तकें थीं। ब्रांकुश की पुस्तकें थीं। उनकी कोई संतान न थी। उनकी बड़ी इच्छा थी वाराणसी आने की। मैंने थोड़ी मदद की, वे आये और काशी में मेरे साथ रहे भी। वे अपनी सारी पुस्तकें भारत को ही भेंट करना चाहते थे पर उसी बीच उनका स्वर्गवास हो गया। उसी अंतराल में रोमानिया लौह पर्दे से बाहर हुआ। नई सरकार ने उनके नाम से एक शोध संस्थान स्थापित किया, वहीं उनकी पुस्तकें आ गईं। उस संस्थान को भारत सरकार क्या दे–इसके लिए मुझे फिर प्रो॰ कौटेकर के साथ रोमानिया भेजा गया। संस्थान के निदेशक प्रो॰ रादू से मेरी कई दिनों तक बातचीत हुई। देश स्वतंत्र था, पर एकाएक पर्दा हट जाने के बाद दैनिक उपयोग की सामग्री के लिए भूख जगी थी, वह सामग्री दुर्लभ से दुर्लभतर होती जा रही थी। ये सारे देश एक उपभोक्तावादी सभ्यता के आकर्षण में खिंचकर समझौता करते जा रहे थे। कभी रोमानिया और बल्गेरिया यूरोप को अनाज की आपूर्ति करने वाले थे। रोमानिया में उद्योग भी कई विकसित हुए थे पर पर्दा हटते ही लोगों के पास खेती वापस मिली। खेत जोतने वाले वापस नहीं मिले। वे कारखानों में काम करते–करते खेती की संस्कृति से इतने कट चुके थे कि खेती लायक नहीं रह गए थे। खेत के खेत अनजुते पड़े थे। कारखाने बंद हो चुके थे। तब भी ऐसे लोगों की कमी नहीं थी जो अपनी शताब्दियों की इयत्ता खोने को तैयार नहीं थे। यूरोप के वर्गीकरण की प्रक्रिया कैसे–कैसे शुरू हुई यह मैंने कई यात्राओं में टुकड़े–टुकड़े कालखंडों और देशों में अनुभव किया। इन सबको देखकर

मुझे बराबर अपने देश के मायाजाल में फंसने की चिंता बढ़ती गई। हम लोग जो पश्चिम को निरा भौतिकवादी मानते हैं, बहुत अन्याय करते हैं। जहां लोग अति विकसित हैं वहां मन से निरा सूनेपन के शिकार हैं। अत्यन्त विपन्न भी हैं। इसी विपन्नता में एक नया बोध भी विकसित हो रहा है। इसकी सुगबुगाहट मैंने कई स्थानों पर सुनी। मेरे कानों में भी सेर्जू एल्जार्ज का कथन गूँज रहा है कि आपके पास तो भगवद्गीता है। आपके सारे क्लेश दूर कर सकती है, हमारे पास तो वह भी नहीं। मेरे मन में हुआ कि कहूँ कि आप भाग्यशाली हैं कि आपको गीता का जीवन दर्शन इतना स्पृहणीय लग रहा है। असली अभागे तो हम हैं जो इस ग्रंथ की गूँज अपने आकाश में सुनते हुए भी बहरे हो गये हैं, हमें अपने उद्धार की कोई चिन्ता नहीं है। मैंने कहा नहीं। अपनी जाँघ उघाड़ने की निर्लज्जा मुझे नहीं आई।

पिछले दो तीन सालों में स्पेन और इटली के अनुभव और अधिक सकारात्मक अनुभव थे। स्पेन के प्रो॰ रफरल ने साल भर तक मुझसे पत्र–व्यवहार से बातचीत की और फिर 9–10 दिन तक बनारस में आकर आमने–सामने बातचीत की। वे स्पेन के प्रसिद्ध दार्शनिक और सम्मानित रचनाकार भी हैं। वे अंग्रेजी समझ लेते हैं, बोल नहीं पाते। उनके और हमारे बीच दुभाषिया का काम करते थे बनारस में 12 साल से रह रहे आस्कर पुजोल। उन्हें एक ही चिंता थी कि पूर्व और पश्चिम में संवाद क्यों नहीं स्थापित होता। पश्चिम के लोग या तो ऊब ओर व्यर्थता की अनुभूति के शिकार होकर पूर्व के विशेष रूप से भारत के कुछ अति विज्ञापित आध्यात्मिक उपदेशकों के पीछे हो जाते हैं या फिर पूर्व के लोग पश्चिम के अन्धानुकरण में पश्चिम के दर्शन को अनपचा उड़ेलते रहते हैं। संवाद नहीं होता। क्यों? इसी प्रश्न से बात शुरू हुई और इस लंबे संवाद का प्रतिफल यह निकला कि हर संस्कृति में कुछ चीजें ऐसी होती हैं जो सार्वकालिक सार्वभौम होती है, उन्हें समझने की चौखट अलग होती है जो देश–काल से नियंत्रित होती है। दोनों के अन्तर को समझा जाए तो कोई देश दूसरे देश के तौर–तरीके पर अपने तौर–तरीके लादना न चाहे। संवाद के लिए एक का दूसरे में विलयन न केवल आवश्यक है, बल्कि वह संवाद में प्रति बंधक भी है। प्रायः जब एक संस्कृति दूसरी संस्कृति में एकदम से घुलना–मिलना शुरू कर देती है तो दोनों के दोष उभर आते हैं और गेंदल फेन बन जाते हैं। भीतर धारा में क्या घटित होता है, इस पर लोगों का ध्यान नहीं जाता। असली संवाद तब होता है जब हम एक–दूसरे के साथ सामान्य की समझ अलग करें और एक–दूसरे की विशेषता की समझ और उसके प्रति आदर भाव रखने की बात अलग करें।

इटली में मैंने एक छोटे से भारत शोधकर्ताओं के समुदाय के सामने श्रीविद्या के बारे में लगातार दस दिनों तक बातचीत की। यह बातचीत भी यह मानकर नहीं हुई कि लोग दीक्षा ही लें, यद्यपि कुछ ने दीक्षा ली और उसके बाद उनके भीतर सच्चाई को समग्रता से जानने की प्रेरणा जगी। लेकिन यह बातचीत मूल रूप से यह मानकर हुई कि भारत की तथाकथित रहस्यमय विद्या को लोगों तक पहुंचाया जाए कि कम से कम इतना तो स्वीकार करें कि

पदार्थों के बीच सम्बन्ध कितने प्रकार का होता है और इन सभी विशेषताओं को स्वीकार करते हुए एक होना है कि विचार किसी के एकाधिकार में नहीं होते।

देश–विदेश की यात्राओं से मेरी अपनी पारंपरिक समझदारी की समझ कुछ विशद हुई है और अपने देश के प्रति प्यार और समर्पण का भाव इसलिए बढ़ा है कि यह देश गैर को गैर नहीं समझता। एक तरह से विदेश में रहकर स्वदेश को मैंने अनेक प्रकार की पीड़ाओं के बीच रहते हुए जीने की कोशिश की है। यह कोशिश मुझे कुछ और न दे सकी हो, एक संतोष तो देती है कि मैं अपने देश की निन्दा न करूँ और इसी कारण मैं अपने देश की कमजोरी को छिपाने के लिए उसका दोष विदेश पर डालने की नादानी न करूँ।

□□□

विशेष साक्षात्कार

प्रवासी अपनी संस्कृति की पहचान लेकर चलता है

● डॉ० लक्ष्मीमल्ल सिंघवी

राजधानी दिल्ली में 9 जनवरी से 11 जनवरी के मध्य आयोजित होने वाले 'प्रवासी भारतीय दिवस' पर कार्यक्रमों का आयोजन एक ऐतिहासिक कदम है। यह आयोजन अनेक ऐसे दलों का निर्माण करेगा जो सैकड़ों हजारों मील दूर विश्व के प्रत्येक कोने में, अपनी रचनात्मक उपस्थिति का भाव कराते 'हमारे अपनों' को हमसे और तीव्रता के साथ जोड़ेंगे। प्रवासी भारतीयों पर भारत सरकार द्वारा गठित उच्च स्तरीय समिति के अध्यक्ष, डॉ० लक्ष्मीमल्ल सिंघवी के साथ, प्रस्तुत विषय पर 'गगनांचल' की ओर से प्रेम जनमेजय की सार्थक बातचीत निश्चित रूप से पाठकों की अनेक जिज्ञासाओं को शांत करेगी।

गगनांचल : 9 जनवरी से 11 जनवरी तक आयोजित होने वाला प्रवासी भारतीय दिवस का आयोजन एक अभूतपूर्व कदम है। आप इसकी परिकल्पना से लेकर इसे सार्थक आकार देने की प्रक्रिया के एक महत्वपूर्ण केंद्रबिंदु हैं। इस आयोजन की संकल्पना और आयोजन के विषय में गगनांचल के पाठक आपके विचारों से लाभान्वित होना चाहेंगे।

डॉ० लक्ष्मीमल्ल सिंघवी : प्रवासी भारतीय दिवस की पृष्ठभूमि का इतिहास मुझे कई स्मृतिवीथियों में ले जाता है।

अपने छात्र जीवन में मैंने एशिया और यूरोप में भारतीय सभ्यता के प्रभाव का अध्ययन किया था और एक तरह से मैंने तब सहस्त्रों वर्षों पूर्व भारतीय की सभ्यता–यात्राओं के मानचित्र को देखा और समझा था। शायद उस पुरातन युग के प्रवासी भारतवंशियों द्वारा उनके बहु–आयामी गरिमामय अवदान की यशगाथायें तभी मेरी चेतना में प्रविष्ट हो गयी थीं।

एक दूसरी स्मृति है, कैलिफोर्निया में जब मैं शोध एवं अध्यापन का कार्य कर रहा था तब एक व्यक्ति मुझे मिला, जिन्होंने मुझे बताया कि वह एक प्रवासी भारतीय के वंशज हैं, और अपनी जड़ों को खोजना और पाना चाहते हैं। उनके पूर्वज शायद 19वीं शताब्दी के अन्त में कैलिफोर्निया आये थे। वे अकेले थे क्योंकि उस समय भारतीय महिलाए साथ नहीं गई थीं। वे एक मैक्सिकन महिला के साथ रहने लगे और इस प्रकार इस "भारतवंशी" युवक की पहचान कैलिफोर्निया में प्रवासी मैक्सिको के लोगों में घुलमिल गयी और लगभग खो गई। वह युवक अपनी भारतीय जड़ों को खोजने के लिये आतुर था। यह बात लगभग 48 वर्ष पहले की है। उन दिनों भारत के कुछ थोड़े से लोग ही संयुक्त राज्य अमरीका में थे और उनमे से अधिकांश लोग का बहुरंगी परिचय प्रस्तुत करता था और बहुसंस्कृति–वाद के स्वरूप को रेखांकित करता था।

एक और स्मृतिवीथि मेरे मानस में जाग उठती है। 1956 में मैंने बीहड़ और दुर्गम सड़कों के रास्ते से पूरे यूरोप और ब्रिटेन से लेकर अफगानिस्तान तक की मोटरकार में एक यात्रा की, जिसने मुझे सभ्यताओं के परस्पर सम्बंध और संवाद को जानने का मौका और अवसर दिया। मैंने योरोपीय भाषाओं के अंतरंग सम्बंधों को यूरोप, ईरान और अफगानिस्तान में देखा और ईरान एवं अफगानिस्तान में कई प्रवासी भारतीय परिवारों से परिचय भी हुआ, किन्तु तब तक यूरोप में प्रवासी भारतीयों की संख्या बहुत थोड़ी सी थी।

जब 1962 में मैं लोकसभा का निर्दलीय सदस्य चुना गया तब मैंने प्रवासी भारतीयों का प्रश्न पं० जवाहर लाल नेहरू के समक्ष रखा उस समय मैंने एक नये शब्द का भी निर्माण किया जो कई लोगों को प्रिय और रूचिकर प्रतीत हुआ। वह शब्द था "भारतवंशी"। भारतवंशी एक विलक्षण शब्द है, क्योंकि यह शब्द वंश को किसी जाति या परिवार से नहीं जोड़ता, बल्कि वह देश के विराट परिवार का परिचायक है। बरसों से मानवीय सभ्यताओं के संवाद में और अलग–अलग जनसमुदायों की संस्कृति में मेरी रूचि रही थी, 1962 से वह रूचि भारतवंशी समुदाय की ओर मुखातिब हुई।

भारत जब उपनिवेश था, हमने यहाँ ब्रिटिश–प्रवासी समुदाय को पाया। अमरीका में मैंने आयरलैण्ड, इटली, स्कॉटलैण्ड, इंग्लैड, जर्मनी, हॉलैण्ड, फ्रांस इत्यादि कई देशों के मूल के लोगों को एक नए राष्ट्र का निर्माण करते देखा। इस प्रकार सांस्कृतिक वैविध्य से यह सबक सीखा कि व्यक्ति एक देश के मूल का होकर दूसरे देश का निवासी, प्रवासी और नागरिक होता है किन्तु वह प्रवासी अपनी संस्कृति की पहचान भी लेकर चलता है, अपनी स्मृतियों का पाथेय और सम्बल लेकर दूसरे देश में जाता है।

इतिहास के शोध और अध्ययन में मैंने पाया कि यद्यपि कई वर्षों की दासता के कारण हम लोग विदेश को काला पानी कहने लगे थे और हमने विदेश गमन और प्रवास को निषिद्ध कर दिया था, हमारे पूर्वज देश–देशान्तर में गये थे और भारत की संस्कृति का सन्देश उन्होंने विश्वभर में प्रसारित किया था। श्रीलंका, बर्मा, थाईलैण्ड, मलेशिया, इण्डोनेशिया,

कम्बोडिया और कोरिया, चीन और जापान में समय की शिला पर हमारे प्रवासी पूर्वजों के चरण चिन्ह भी मैंने देखे। हमारे व्यापारिक सम्बंध हजारों वर्षों से अलग–अलग देशों और सभ्यताओं से रहे, किन्तु वे स्मृतियाँ केवल इतिहास की धरोहर मात्र बनकर रह गईं। किन्तु आज भारत पर ब्रितानियों के आधिपत्य के समय भारत से अलग–अलग देशों में गए और बसे प्रवासी भारतीय लगभग प्रत्येक महाद्वीप में मिलते हैं और हमारी स्वाधीनता के बाद प्रवासी भारतवंशी और भी कई देशों में फैले हैं, फले फूले हैं। उनकी शक्ति और सम्पन्नता बढ़ी है। आज तो वे लगभग दो–ढाई करोड़ की संख्या के लोग भारतवर्ष और भारतवासियों के साथ सम्बंधों के सेतु का निर्माण करने की आकुल अभिलाषा रखते हैं।

मेरा यह सौभाग्य रहा कि तीसरी लोकसभा के सदस्य के नाते और तदनन्तर पिछले चार दशक में मैंने प्रवासी भारतीयों का प्रश्न हमारे राष्ट्र के प्रथम प्रधानमंत्री पं० जवाहर लाल नेहरू से लेकर वर्तमान प्रधानमंत्री श्री अटल बिहारी वाजपेयी तक निरन्तर उठाया। पं० नेहरू के बाद मैंने जब यह प्रश्न श्रीमती इन्दिरा गांधी के समक्ष उठाया तो उन्होंने व्यावहारिक राजनैतिक यर्थाथवाद का परिचय दिया और मुझे समर्थन भी दिया। उन्होंने मुझे एक राजनयिक मुद्दे को लेकर केरिबियन भी भेजा। किन्तु इस विषय को नए और अधिक व्यापक परिप्रेक्ष्य में उनके पुत्र श्री राजीव गांधी ने देखा। उन्होंने मुझे कहा कि वे आयोगों का भार मेरे कन्धों पर रखना चाहते हैं। एक पंचायती राज को संवैधानिक आधार देने के लिए और दूसरा प्रवासी भारतीयों से सम्बंध बनाने के लिए। मैंने पंचायती राज को संवैधानिक अधिकार देने के लिए जो प्रस्ताव दिये, और प्रारूप प्रस्तुत किए, वे तो कालान्तर में हमारे संविधान के अध्याय बन गये; किन्तु प्रवासी भारतीयों के लिए उनका सोच साकार नहीं हो पाया। यही प्रस्ताव मैंने प्रधानमंत्री श्री नरसिम्हाराव जी को भी दिया। उन्होंने इसी आधार पर एक ऑरेन्ज कार्ड की घोषणा की। मैंने और भारत के पूर्व मुख्य न्यायाधीश श्री पी.एन. भगवती ने श्री राजीव गांधी को एवं श्री राव को इस विषय पर एक लिखित प्रस्ताव भी दिया, जिसके आधार पर प्रवासी भारतवंशियों को एक वैकल्पिक दोहरी नागरिकता दी जा सकती थी। उन दोनों प्रधानमंत्रियों को यह प्रस्ताव अच्छा लगा।

भारतवासियों एवं प्रवासी भारतवंशी समाज के बीच सार्थक सेतु–निर्माण की दृष्टि से भारत के प्रधानमंत्री श्री अटल बिहारी वाजपेयी जी ने हमारे इतिहास में एक नया अध्याय लिखा। उन्होंने एक उच्चस्तरीय समिति बनाई और मुझे उसकी अध्यक्षता का भार सौंपा। उनकी इस पहल में एक दृष्टि थी, एक संकल्प था। उनकी दृष्टि वैश्विक थी। उनका यह संकल्प था कि विश्व में भारत के लिये अगणित भारतवंशी सेतुओं का निर्माण हो। इस उच्चस्तरीय समिति ने समस्त विश्व के देशों में अलग–अलग प्रकार के जो प्रवासी भारतवंशी हैं, उनकी समस्याओं का अध्ययन किया, और उनको सुना और विशाल 600 पृष्ठ का दस्तावेज तैयार किया, जिसको "डायसपोरा रिपोर्ट" का नाम दिया गया है। डायसपोरा रिपोर्ट में कई सुझाव दिये गये हैं उनमें से एक सुझाव प्रवासी भारतीय दिवस मनाने का था।

एक दूसरा सुझाव यह था कि प्रवासी भारतीयों को भारत–सम्मान पुरस्कार दिये जायें। प्रधानमंत्री जी ने ये दोनों सुझाव तत्काल स्वीकार कर लिए और उसी के क्रियान्वयन की प्रक्रिया में 9-10-11 जनवरी, 2003 को प्रवासी भारतीय दिवस मानाया जा रहा है। इस समारोह और सम्मेलन में पहली बार भारत सरकार के तत्वावधान में दुनिया के अलग–अलग देशों से भारतवंशी लोग आयेंगे और सेतु निर्माण का कार्य प्रारम्भ होगा। हमारी उच्चस्तरीय कमेटी के अधिकांश प्रस्तावों का क्रियान्वयन अभी शेष है और मैं यह मानता हूँ कि यह सम्मेलन–समारोह उन प्रस्तावों/सुझावों को एक गति देगा और भारतवंशियों के लिये एक सार्थक नीति निर्माण की रचना में एक सार्थक सोपान सिद्ध होगा।

गगनांचल : विदेशों में रह रहे प्रवासी भारतीय निरंतर अपनी जड़ों से जुड़े रहना चाहते हैं; विशेष रूप से भारतीय मूल के वे लोग जो वर्षों पहले फिजी, मॉरिशस, त्रिनिडाड और टुबैगो आदि देशों में एक मजदूर के रूप में गए, तथा जिन्हें आपने अत्यन्त ही सार्थक और खूबसूरत नाम—भारतवंशी—दिया है। ये भारतवंशी जिस तीव्रता के साथ भारत से अपना जुड़ाव अनुभव करते हैं, सम्बन्धों की ऐसी तीव्रता भारतवासियों में देखने को कम मिलती है। क्या आपको लगता है कि वर्ष में एक–आध बार आयोजित इस प्रकार के आयोजन प्रवासी भारतीयों को उनकी जड़ों से जुड़ने का सुख दे पाएंगे? अथवा इस दिशा में और भी प्रयासों की आवश्यकता है?

डॉ० लक्ष्मीमल्ल सिंघवी : प्रवासी भारतीय जो भारतवासियों की तरह ही भारतवंशी हैं, भारत के साथ गहरा जुड़ाव महसूस करते हैं। इसका कारण यह है कि उनके मन में अपने पूर्वजों की संस्कृति के प्रति एक आकर्षण और लगाव है। भारतवासियों की अपनी समस्याएँ हैं और प्रवासी भारतीयों की अपनी समस्याएँ हैं। किन्तु हम दोनों की एक समान साझेदारी भी है। प्रवासी भारतीय दिवस एक राष्ट्रीय दिवस के रूप में हमारे उन रिश्तेदारों को प्रीतिपूर्वक समर्पित है, जो दूर–दराज देशों में बसे हुए हैं, अपना जीवन व्यतीत कर रहे हैं। भारतीय संस्कृति उनकी और हमारी साझे की धरोहर है। प्रवासी भारतीय दिवस प्रवासी भारतीयों के स्नेह–सम्मान के निमित्त भारतवासियों और प्रवासी भारतीयों का राष्ट्रीय दिवस है। भारतवासी भी धीरे–धीरे उनके साथ अधिक लगाव महसूस करेंगे। तभी प्रवासी भारतीयों को जड़ों से जुड़ने का सुख मिलेगा और जड़ें भी अभिसिंचित होंगी। इस दिशा में हम भारतवासियों द्वारा भी और अधिक गहराई से भारतवासियों के साथ जुड़ने का उपक्रम करना होगा। उसके लिए हमने कई सुझाव रिपोर्ट में दिये हैं।

गगनांचल : आपने यू० के० में भारतीय उच्चायुक्त के रूप में अपने कार्यकाल के समय हिन्दी भाषा और साहित्य के प्रचार–प्रसार की दिशा में अनेक महत्वपूर्ण कार्यक्रमों को आरम्भ करवाया और आज भी हिन्दी–समिति जैसी अनेक संस्थाएं द्विगुणित गति से इस दिशा में सक्रिय हैं। अपने अनुभव के आधार पर मैं कह सकता हूं कि इस समय यू० के, अमेरिका, नार्वे, हॉलैंड, यू०ए०ई०, मॉरिशस, त्रिनिडाड आदि अनेक देशों में प्रवासी भारतीय

लेखकों का एक विशाल समुदाय है जो अपने सीमित साधनों में रचनाशील है। आप स्वयं एक सृजनशील व्यक्तित्व हैं, क्या आपको नहीं लगता इन रचनाकर्मियों को आपस में जोड़ने के लिए एक मंच तैयार किया जाना चाहिए?

डॉ० लक्ष्मीमल्ल सिंघवी : मैं भाषा को संस्कृति की मंजूषा मानता हूँ, बल्कि वह संस्कृति की मंजूषा ही नहीं, उसका वाहन भी है। मैं जहाँ–जहाँ देश–विदेश में गया हूँ, मैंने भाषा, सभ्यता और भारतीय विरासत को जोड़ने का प्रयत्न किया है और प्रवासी भारतीयों द्वारा भारत के मित्रों के बीच आत्मीयता द्वारा स्थाई सम्बंध बनाने का उपक्रम किया है। मेरा यह मानना है कि भारतवंशी रचनाकर्मियों का, भारतीय भाषाओं को आपस में जुड़ना चाहिए और दूसरी विश्व भाषाओं के साथ गहरे सम्बंध स्थापित करने चाहिए। तभी हम भारत के सांस्कृतिक नवोन्मेष के नये चरण का सूत्रपात कर सकेंगे।

गगनांचल : मुझे लगता है कि प्रवासी भारतीयों को जोड़ने के बहुत सीमा तक प्रयास सरकारी स्तर पर अधिक हैं। इसे जनसामान्य से जोड़ने के लिए किस तरह के प्रसास किए जा सकते हैं?

डॉ० लक्ष्मीमल्ल सिंघवी : प्रवासी भारतीय दिवस केवल एक सरकारी उपक्रम नहीं है, यद्यपि सरकार ने एक पहल की है जो आवश्यक थी। इस नये प्रकल्प को राष्ट्रीय और वैश्विक विस्तार देने के लिए साहित्यकारों, कलाकरों, चिन्तकों, सांसदों, व्यवसायियों और मीडिया के लोगों के सहयोग की आवश्यकता है।

गगनांचल : व्यावसायिक दृष्टि से प्रवासी भारतीय भारत में निवेश करना चाहते हैं पर आज भी उनकी शिकायत है कि नौकरशाही की बाधाएं उन्हें मुंह फेरने को विवश करती हैं। क्या आपको लगता हैं कि इस प्रकार के आयोजन उनमें यह विश्वास पैदा करने में सहायक सिद्ध होंगे कि यह मंच उनकी आवश्यकताओं को सही स्वर दे पाएगा?

डॉ० लक्ष्मीमल्ल सिंघवी : व्यावसायिक दृष्टि से जो बाधाएँ प्रवासी भारतीयों और भारत में निवेश के लिये सामने आती हैं उनका उन्मूलन करना एक राष्ट्रीय प्राथमिकता है। वास्तव में हमारी दफतरशाही और अफसरशाही हमारे विकास की राह का सबसे बड़ा रोड़ा है। इस दफतरशाही मानसिकता को बदलना होगा। मुझे श्री राजीव गांधी की वह बात याद आती है कि जब उन्होंने अपने एक अफसर से पूछा कि मैंने 10-12 जगह जाने की बजाय एक ही काउन्टर या खिड़की पर सब अनुमति पत्र देने का जो आदेश दिया था, उसकी स्थिति क्या है। उनको जवाब मिला कि आपने जो एकल खिड़की बनाई थी वह अब एक और अतिरिक्त खिड़की बन गई है।

प्रवासी भारतीय दिवस का आयोंजन एक शुरूआत है, उसमें जो सार्थक संवाद का सपना और संकल्प है, वह अवश्य फलप्रद होगा, किन्तु हमको जमीन पर कुछ ऐसे कदम उठाने पड़ेंगे कि दफतरशाही और अफसरशाही कम हो जाये, प्रक्रिया के प्रपंच कम हो जायँ और विकास का मार्ग प्रशस्त होने लगे।

गगनांचल : प्रवासी भारतीय दिवस के आयोजन क्या भारत में ही सीमित रहेंगे अथवा इनका आयोजन अन्य देशों में भी होगा, इस संदर्भ में समिति की क्या योजना है?

डॉ० लक्ष्मीमल्ल सिंघवी : मेरा यह सुझाव है कि प्रवासी भारतवंशी लोगों के सरोकारों को समझने के लिए, उनके साथ संबंधों के सेतु–निर्माण के लिए एक स्थायी आयोग की स्थापना की जानी चाहिए। उस आयोग के माध्यम से यह आयोजन अलग–अलग देशों में भी होने चाहिए और भारत में भी होते रहने चाहिए, अलग–अलग कार्यक्रमों के सन्दर्भों के द्वारा सबके लिए लाभप्रद सम्भावनाओं की, खोज और व्यवस्था की जानी चाहिए। प्रवासी भारतीय दिवस तो सिर्फ एक शुरूआत है, इब्तिदा है। आगे जो कुछ होगा, वह हम सब पर निर्भर करेगा, भारतवासियों पर, प्रवासी भारतवंशियों पर और हमारे नेतृत्व की शक्ति और क्षमता पर।

मैं भारत के और विश्व के आकाश में, अपने मन के क्षितिज पर एक भारतवंशी इन्द्रधनुष देखता हूँ। इस इन्द्रधनुष की सतरंगी छटा और उसकी परिकल्पना मुझे आत्मविभोर करती है क्योंकि यह उत्सव भारत का उत्सव है, भारतवासियों का उत्सव है, निवासी और प्रवासी के संगम पर भारत और विश्व का उत्सव है।

□□□

विशेष आलेख

विदेशों में बसा भारत

• नरेन्द्र कोहली

हिंदी के प्रख्यात लेखक नरेन्द्र कोहली का अधिकांश लेखन भारतीय संस्कृति के संवाहक आदि महा ग्रंथों – रामयण, महाभारत आदि की पृष्ठभूमि पर लिखा गया, भारतीय मनीषा का पुनर्पाठ है। ट्रिनिडाड तथा टोबैगो में आयोजित विश्व हिंदी सम्मेलन के दौरान लेखक ने वहां के भारतवंशी व्यक्तियों के मध्य से जिस प्रकार अपनी हिंदी भाषा को लुप्त प्राय और इसके जन प्रतिनिधियों को उदासीन हेते पाया–उसी व्यथा की मार्मिक अभिव्यक्ति है यह उनका आत्म–संस्मरण।

ट्रिनिडाड में विश्व हिंदी सम्मेलन था और आमंत्रित करने वाले थे – ट्रिनिडाड तथा टोबैगो में भारत के 'हिंदी तथा संस्कृति अधिकारी' डॉ. प्रेम जनमेजय। मना करना असंभव हो गया तो जाने का मन बना लिया। मैं और मेरी पत्नी मधुरिमा 16 मई, 2002 को पोर्ट ऑफ स्पेन के हवाई अड्डे पर उतरे। सुनते आए थे कि वहां के अधिकांश निवासी भारतवंशी हैं। मैं तो उसे देश से दूर बसा एक लघु भारत मान कर ही गया था; किंतु कोई भारतीय चेहरा देखने को नहीं मिला। हवाई अड्डे पर अफ्रीकी मूल के ट्रिनी लोगों से ही सामना हुआ। ऐसे में मेरी कठिनाई बढ़ जाती है। लोगों का वाग्यंत्र विदेशी होता है; किंतु मेरे कान कुछ इतने देसी हैं – शुद्ध रूप से भारतीय मिट्टी के, भारतीय प्रणाली से, भारत में निर्मित कि किसी परिचित भाषा के किसी परिचित शब्द का भी भिन्न ढंग से किया गया उच्चारण मेरी समझ में नहीं आता। भारत से निकलते ही पग–पग पर कठिनाई का सामना हो रहा था – लंदन में, न्यूयार्क में और अब पोर्ट ऑफ स्पेन में। यहां तक कि इमिग्रेशन अधिकारी ने तीन बार 'गुड नाईट' कहा, तो मेरी समझ में आया कि वह भला आदमी मुझे धमका नहीं रहा, अपने तौर पर बड़े मीठे ढंग से अभिवादन कर रहा था।

प्रेम जनमेजय हमें लेने आने वाले थे। हमें कुछ कारणों से बाहर निकलने में देर हो गई तो वे अपना भारतीय उच्चायोग का प्रत्यय दिखा कर भीतर ही आ गए। वे दिख गए तो जान में जान आई। लगा, अब कोई चिंता नहीं है। जो कुछ होगा, वे संभाल लेंगे। ... और उस विदेशी धरती पर हिंदी में बात करना, ऐसा सुखद लगा, जैसे सांस लेने के लिए फिर से खुली हवा मिल गई हो। ... जबकि अभी भारत छोड़े दो दिन ही हुए थे।

हवाई अड्डे के बाहर प्रेम के कुछ और परिचित भी मिले। नाक–नक्शा सामान्य भारतीयों का सा था। नाम भी कुछ विकारों के साथ भारतीय ही थे। स्वाभाविक था कि मै उनसे हिंदी में संवाद करता। पर वे मेरी बात नहीं समझे। उन्होंने बड़ी शालीनता से बताया कि उनके दादा भोजपुरी या हिंदी बोला करते थे, अब उनके घरों में हिंदी नहीं बोली जाती। उनकी पीढ़ी तो फिर भी हिंदी के दस–बीस शब्द समझ लेती है; किंतु उनके बच्चे हिंदी एकदम नहीं समझते।

ट्रिनिडाड में रहते हुए, घूमते हुए, वहां की प्रकृति और भारतीय मूल के चेहरों के मध्य सांस लेते हुए, लगता था कि हम भारत में ही केरल या वैसे ही किसी सुंदर प्रदेश – जहां जल तथा हरियाली की प्रचुरता है – में घूम रहे हैं। तनिक भी संदेह नहीं होता था कि हम भारत से इतनी दूर और अमरीका के इतने निकट आए हुए हैं। आमों के वृक्ष देख कर मुंह में पानी आ जाता था। टहनियों पर लटके हुए आम देखकर मन होता था कि बस तोड़ ही लें। यह दूसरी बात थी कि वहां उनका तनिक भी मूल्य, महत्व और सम्मान नहीं था। पक कर टपक पड़ते थे, तो भी कोई आंख उठा कर उनकी ओर नहीं देखता था। बाद में जब हमने संकोच छोड़ कर आम खाए तो पाया कि वे पूर्णतः मीठे और स्वादिष्ट थे। ... सब कुछ देसी–सा लगता था; बस भाषा पर आकर बात अटक जाती थी। सब जगह यही सुनने को मिलता था कि दो पीढ़ी पहले तक हमारी भाषा हिंदी अथवा कोई अन्य भारतीय भाषा थी। अब सब लोग 'ट्रिनी अंग्रेज़ी' ही बोलते, लिखते और पढ़ते हैं।

सम्मेलन में अनेक प्रकार के हिंदीप्रेमी वर्ग दिखाई दे रहे थे। (1) भारत से आए हुए हिंदीभाषी वक्ता; (2) स्थायी अथवा अस्थायी रूप से विदेशों में रहने वाले, प्रवासी भारतीय हिंदीभाषी वक्ता; (3) विदेशों में हिंदी पढ़ाने वाले विदेशी अध्यापक; (4) ट्रिनिडाड के हिंदी अध्यापक और हिंदी छात्र। इन ट्रिनी भारतीयों ने मंदिरों में, अपनी पाठशालाओं में अथवा भारतीय उच्चायोग द्वारा चलाई जा रही कक्षाओं में हिंदी सीखी थी। वे लोग, मेरे कानों के लिए कुछ परिचित, कुछ अपरिचित, कुछ आहत विकृत, कुछ हांफती और कुछ रेंगती–सी हिंदी बोल रहे थे। कहीं–कहीं भोजपुरी की छौंक भी सुनाई पड़ जाती थी। किंतु विकट बात यह थी कि हिंदी के उन छात्रों में से आधे अंग्रेज़ी बोल रहे थे और चाहते थे कि सम्मेलन की सारी कार्यवाही अंग्रेज़ी में हो, ताकि वे सारी बात समझ सकें। हिंदी से उन्हें प्रेम तो था; किंतु हिंदी को प्राप्त करने के लिए, वे स्वयं चलने के कम इच्छुक थे। चाहते थे कि हिंदी ही चल कर उनके पास आ जाए। वैसे उन्होंने हिंदी में कविताएं लिखने में रुचि दिखाई। कविताएं

सुनाई। (प्रायः ऐसी कविताओं में कवित्व नहीं होता) पर मुझे सदा यही लगा कि उनमें भावना तो थी; किंतु अपनी मातृभाषा के प्रति जो अप्रतिम गौरव और उसे सीखने की जो उत्कट अभिलाषा होनी चाहिए, वह उनमें नहीं थी। वह उनके पूर्वजों ने उन्हें नहीं दी थी। उनका काम अंग्रेज़ी में मज़े से चल रहा था। उपयोगितावादी दृष्टि से हिंदी का उनके लिए बहुत महत्व नहीं था। वैसे ही जैसे हम संस्कृत का ज्ञान तो चाहते हैं; किंतु संस्कृत सीखने के लिए अपेक्षित श्रम करने को तैयार नहीं हैं।

सम्मेलन के बाद हमारे भ्रमण का प्रबंध करने वाले ट्रिनी भारतीय सामान्यतः ट्रिनिडाड की सबसे बड़ी संस्था, 'हिंदी निधि' के सदस्य और कार्यकर्ता थे। उनमें से कुछ लोग दिन भर के लिए हमारे आतिथ्य हेतु हमारे साथ थे। वे निरंतर हिंदी फिल्मों के गीत गा रहे थे – बिना उन शब्दों का अर्थ समझे। सत्य तो यह है कि उन गीतों में कोई अर्थ–गांभीर्य था भी नहीं, पर वे लोग तो उसका अभिधार्थ भी नहीं समझते थे। हिंदी फिल्मों के विषय में वे बड़ी सुविधा और रुचि से अंग्रेज़ी में बातें कर रहे थे। परस्पर और हम लोगों को भारतीय फिल्मों के अभिनेताओं के नामों से संबोधित करने में उन्हें तनिक भी संकोच नहीं था। किसी को दिलीप कुमार कह रहे थे, किसी को धर्मेन्द्र, किसी को हेमा मालिनी और किसी को माधुरी दीक्षित। बस यही नहीं जानते थे कि वे उससे किसी को प्रसन्न कर रहे हैं अथवा उनका मन दुखा रहे हैं। हिंदी सिनेमा के विषय में वे सब कुछ जानते थे, बस हिंदी ही नहीं जानते थे।

रवि महाराज ने प्रेम जनमेजय द्वारा रचित 'जहाजी चालीसा' का संगीतबद्ध रूप सुनवाने के लिए एक युवती को बुलवाया। उसने बड़े मधुर कंठ और शुद्ध उच्चारण में पूरा 'जहाजी चालीसा' सुनाया। मैने उसके हिंदी उच्चारण पर मुग्ध होकर जब उसकी प्रशंसा में दो–एक वाक्य कहे, तो वह रवि महाराज की ओर देखने लगी। पता चला कि वह हिंदी एकदम नहीं समझती। जो कुछ वह गा रही थी, उसे भी नहीं समझती होगी; किंतु अपने भारतीय मूल के कारण शब्दों का उच्चारण उन लोगों को तनिक भी कठिन नहीं लगता।

रवि महाराज से मेरी भेंट प्रेम के घर में ही हुई। वे ट्रिनिडाड के हिंदू समाज के ऐसे नेता हैं जो हिंदी बोलते हैं। धार्मिक अनुष्ठानों के लिए आवश्यक संस्कृत का भी उन्हें व्यावहारिक ज्ञान है। इस ज्ञान को प्राप्त करने के लिए वे काशी गए थे। वे अभी तक भारतीय भोजन करते हैं, भारतीय वेशभूषा धारण करते हैं। उन्होंने बताया कि वे भारत के चार प्रदेशों के लोगों के मिश्रण से बने परिवार के वंशज हैं। धाराप्रवाह हिंदी नहीं बोलते; किंतु अच्छी–खासी हिंदी बोलते हैं। चाहते हैं कि ट्रिनिडाड में हिंदुओं के धर्म की ही नहीं, उनकी भाषाओं की भी परंपरा बनी रहे।

उसी संदर्भ में ज्ञात हुआ कि रवि महाराज ने एक पवित्र स्थान चुन कर वहां की जलधारा में गंगाजल मिला कर उसे ट्रिनिडाड की गंगा घोषित कर दिया है। उसे गंगा कह कर ही पुकारा जाता है। हिंदुओं के पर्व त्यौहार, धार्मिक अनुष्ठान गंगातट पर ही होते हैं। जीवन में जिन भी प्रयोजनों से भारत में लोग गंगातट पर जाते हैं, वे सारे प्रयोजन वहां उसी

स्थान पर पूरे किए जाते हैं। सागरतट पर या कहिए, सागर के मध्य ही एक हिंदू मंदिर स्थापित किया गया है। इस मंदिर को बनाने वाले साधु की मूर्ति भी वहां प्रतिष्ठित की गई है। बताया जाता है कि उस मंदिर को विरोधियों द्वारा अनेक बार तोड़ा गया और उस साधु ने अपने अकेले के दम पर उसे बार–बार बनाया। आज वह मंदिर पूर्णतः स्थापित है। उस साधु का नहीं, सारे हिंदुओं का है। सब को मान्य है और उसे किसी प्रकार का संकट नहीं है। मंदिर से कुछ हट कर एक श्मशानघाट की स्थापना भी की गई है, ताकि देह त्यागने पर हिंदुओं के शवों का अपनी धार्मिक और सांस्कृतिक परंपराओं के अनुसार अंतिम संस्कार किया जा सके।

मंदिर तोड़ने का समाचार यह बताता है कि धर्म को लेकर वहां संघर्ष हुआ होगा। अपना धर्म बचाने के लिए हिंदुओं को संगठित होना और लड़ना पड़ा होगा। इसी संदर्भ में वहां का 'दिवाली नगर' भी महत्वपूर्ण हो उठता है। इस स्थान पर हिंदुओं का एक सामुदायिक मिलनस्थल बनाया गया है, जहां वे सब एकत्रित होकर अपने पर्व–त्यौहार मना सकें। निश्चित रूप से उन्हें अपने विरोधियों का सामना करने के लिए, अपना बल दिखाने के लिए, संगठित होना पड़ा। धर्म के लिए वे संगठित हुए, भाषा के लिए नहीं। ... किंतु रवि महाराज से मिलकर लगा कि वे और उनके साथी, अपने धार्मिक संस्कारों, सामाजिक परंपराओं और उन सब का वहन करने वाली भाषा – संस्कृत तथा हिंदी – की रक्षा में भी जुटे हैं। वे इन बातों में कितने गंभीर हैं, इसका भी कुछ आभास हुआ। उन्होंने चर्चा करते हुए कहा कि उनकी अनेक लोगों से कुछ शब्दों के अनुवाद को ले कर चर्चा हुई है। यज्ञ, मोक्ष, अध्यात्म, ऋषि, आनन्द ... जैसे संस्कृत के सैकड़ों शब्द हैं, जिनका अपने भावबोध के कारण अंग्रेज़ी में अनुवाद संभव नहीं है। तो फिर ऐसे शब्दों का अनुवाद करने का प्रयत्न क्यों किया जाता है। क्या हमें नीति के रूप में यह स्वीकार नहीं कर लेना चाहिए कि उन शब्दों की केवल व्याख्या की जाए, उनका अनुवाद न किया जाए?

मुझे उनकी बात बहुत सार्थक लगी। शब्द का केवल अभिधार्थ ही नहीं होता। उसमें अर्थ भरे जाते हैं। ऋषियों ने अपनी तपस्या और आविष्कारों के बल पर जो ज्ञान पाया है, उसने उन शब्दों के स्वरूप का निर्माण किया है। किसी भी दूसरी भाषा में, जिसमे वह ज्ञान नहीं है, उन शब्दों का अनुवाद नहीं हो सकता। उनको उनके मूल रूप में ग्रहण कर उनकी व्याख्या ही करनी पड़ेगी।

सनातन धर्म के एक दूसरे नेता सत महाराज से भी मुझे मिलाया गया। वे हिंदी नहीं बोलते। कह नहीं सकता कि समझते कितनी हैं। उनसे सारी बातचीत अंग्रेज़ी में ही हुई। रवि महाराज मुझ से मिलने प्रेम जनमेजय के घर आए थे। किंतु सत महाराज से मिलने का समय ले कर हम उनके समाचारपत्र के कार्यालय में गए थे। वहां जा कर ही मुझे पता चला कि वे एक लोकप्रिय समाचारपत्र निकालते थे, जिसमें पाठक के लिए सब प्रकार का मिर्चमसाला भी होता था। वह पत्र व्यावसायिक रूप से भी सफल माना जाता था। उनसे

उनके धार्मिक नेता होने के संदर्भ में इस मिर्चमसाले के विषय में प्रश्न किया गया तो वे निःसंकोच बोले, "माई रिलीजन वाज़ नेवर शाई ऑफ सेंसुएलिटी।"

हिंदी के संबंध में विशेष बातचीत नहीं हुई। उनकी सारी रुचि समाज में थी, जो धर्म के आधार पर संगठित था। वे अध्यात्म के चिंतन से अधिक धर्म और समाज के संगठन के व्यक्ति थे। उन्होंने गर्व से बताया कि ट्रिनिडाड में हिंदू संगठित थे और भारत के हिंदुओं के समान तनिक भी दुर्बल नहीं थे। वे भारत के हिंदुओं को कायर तक कह गए, क्योंकि वे तनिक भी आक्रामक नहीं थे।

ट्रिनिडाड में एक बड़ी संख्या में सत महाराज की संस्था द्वारा संचालित विद्यालय चलते हैं, जिस में सांसारिक ज्ञान के साथ अपने धर्म का ज्ञान भी दिया जाता है। वे चाहते थे कि मैं दोपहर के समय उनके एक विद्यालय में जा कर देखूं, जहां उस दिन रामचरितमानस के विषय में एक प्रतियोगिता हो रही थी और उस में बड़ी संख्या में विद्यार्थी भाग ले रहे थे।

सत महाराज की संस्था के पचास के लगभग मंदिर भी थे, जिन में जा कर लोग अपनी श्रद्धा के अनुसार पूजापाठ कर सकते थे। उनके विद्यालयों और मंदिरों में एक सीमित अर्थ में हिंदी पढ़ाने की व्यवस्था भी थी; किंतु वे स्वयं हिंदी नहीं बोलते थे। ठीक ऐसी ही स्थिति मुझे 'हिंदी निधि' के अध्यक्ष टंका सीताराम की भी लगी। वे ट्रिनिडाड की सब से बड़ी और समर्थ हिंदी सेवी संस्था के अध्यक्ष थे किंतु सिवाय 'सीताराम' के, हिंदी का एक शब्द भी नहीं बोलते थे। न मंच पर और न ही बातचीत में। 'सीताराम' वहां का अभिवादन है। प्रायः लोग 'नमस्ते', 'नमस्कार' अथवा 'प्रणाम' के स्थान पर 'सीताराम' का ही प्रयोग करते हैं। टंका सीताराम भी मंच पर आकर 'सीताराम' कहते हैं और फिर धाराप्रवाह अंग्रेज़ी बोलने लगते हैं। उन्होंने हिंदी विश्व सम्मेलन में आए हम सब प्रतिनिधियों को भोजन के लिए अपने घर बुलाया था। वह काफी बड़ा समारोह था। ऐन सागरतट पर उनका प्रासादनुमा भवन है। बाग बगीचे हैं। वहां जा कर लगता है कि आप पृथ्वी से दूर किसी नए लोक में पहुंच गए हैं। टंका सीताराम ने हम से एक बार औपचारिक परिचय का भी प्रयत्न नहीं किया, न स्वागत किया, न कोई बातचीत की। सब को खुला छोड़ दिया गया। खाओ–पियो और नाचो–गाओ। वे स्वयं मस्त हो कर पी रहे थे और नाच रहे थे। अतिथियों के सत्कार के लिए मेज़ें सजी थीं और बड़ी संख्या में सेवक तथा परिचारिकाएं थीं। मेरे लिए वहां मेरा परिचित भारत नहीं था। न भोजन में, न वेशभूषा में, न रीति व्यवहार में, न व्यवहार में। हां! नाचने के लिए जो संगीत प्रस्तुत किया गया था, वह अवश्य भोजपुरी और अंग्रेज़ी का कुछ मिश्रण था। उसके शब्द कोई समझा दे तो ठीक, अन्यथा उसका समझना मुश्किल था। कहा जाता है कि वे 'चटनी सांग' वहां के प्रत्येक उत्सव में बजाए जाते हैं। इसे उन लोगों ने अपनी परंपरा के रूप में संभाल कर रखा है। कुल मिलाकर सारे समारोह में पश्चिमी उच्छृंखलता अधिक और भारतीय मर्यादा कम ही दिखाई दी।

सम्मेलन में ही प्रो. आदेश से भेंट हुई थी। वे प्रतिदिन वहां आते थे और सारे भाषण नियम से सुनते थे। मेरा उनसे व्यक्तिगत परिचय नहीं हुआ था किंतु अंतिम दिन कवि सम्मेलन के संदर्भ में उनका परिचय दिया गया तो पता चला कि वे भी वहां हिंदी पढ़ाने ही गए थे; किंतु दो–तीन वर्षो की नौकरी के पश्चात् भारत लौट आने के स्थान पर वे वहीं बस गए। प्रायः स्थानीय भारतवंशी लोग उन्हें 'गुरुदेव' अथवा 'महाकवि' कह कर संबोधित करते थे। निश्चित् रूप से ट्रिनिडाड में वे हिंदी के सबसे महान् कवि होंगे।

प्रो. आदेश ने वहां एक संस्था की स्थापना की है : 'भारतीय विद्या संस्थान ट्रिनिडाड एंड टोबैगो इं'। यह उनका आश्रम कहलाता है। 21 मई, 2002 को उन्होंने हम सब लोगों को वहां आमंत्रित किया। वहां जाकर देखा कि वह टंका सीताराम के भोज जैसा विराट आयोजन नहीं था। न वैसा स्थान था, न उतने लोग थे और न ही उतना तामझाम था। वह शुद्ध भारतीय वातावरण में आयोजित एक उत्सव जैसा था। वे अपने संस्थान को आश्रम कहते हैं। उनके शिष्य उन्हें गुरुदेव कहते हैं। जब तक प्रो. आदेश बैठ न जाएं, उनके शिष्य खड़े रहते हैं। उन में से कुछ लोग हिंदी बोल नहीं पाते किंतु समझने में शायद उन्हें कठिनाई नहीं है। सब से बड़ी बात यह है कि वहां कविता, संगीत तथा अध्यात्म का वातावरण बनाए रखने का पूरा प्रयास दिखाई पड़ता है। जितने भाषण हुए हिंदी में हुए। टंका सीताराम वहां भी अंग्रेज़ी में ही बोले। जो गीत गाए गए, वे हिंदी में थे। उनकी रचना भी प्रो. आदेश द्वारा हुई थी। उन्हें भारतीय शास्त्रीय संगीत की परंपरा में प्रस्तुत किया गया; और उन में भारत से दूर रहने की पीड़ा भी अभिव्यक्त की गई थी। भारतमाता को प्रणाम किया गया था। अंत में ज्ञात हुआ कि उस दिन प्रो. आदेश के विवाह की वर्षगांठ भी थी, अतः उनके शिष्य अपने गुरु और गुरुमाता के इस उत्सव में अपनी श्रद्धा अर्पित करने आए थे। उसी के साथ विश्व हिंदी सम्मेलन में आए प्रतिनिधियों को भी आमंत्रित कर लिया गया था। उस दिन भारतवंशियों को भारत से संबंधित होने का गर्व भी दिखाई दिया। उस परंपरा को बनाए रखने का आभास भी हुआ। विदेश में रह कर अपनी मातृभूमि के प्रति उन लोगों की पीड़ा का अनुभव भी हुआ। लगा कि उन लोगों में अभी कहीं भारत जीवित था। वे अपने धर्म, अपनी परंपराओं, अपनी संस्कृति तथा अपनी भाषा के प्रेम से ओतप्रोत थे और उन सब को अक्षुण्ण बनाए रखना चाहते थे।

एक और व्यक्ति – जिन्होंने अपने व्यवहार और दायित्वबोध से हमें प्रभावित किया – थे, ट्रिनिडाड में भारत के उच्चायुक्त श्री वीरेन्द्र गुप्त। उन से प्रथम भेंट प्रेम जनमेजय के घर पहले दिन आयोजित स्वागत समारोह में हुई। वह औपचारिक भेंट मात्र थी। दूसरी भेंट सम्मेलन के मध्यांतर में भोजन के समय हुई। वे एक मेज़ पर हमारे साथ ही बैठे थे और भारत, भारत में दी जा रही शिक्षा, भारतीय संस्कृति, साहित्य और भाषाओं पर हो रहे पाश्चात्य आक्रमण के प्रति चिंता व्यक्त कर रहे थे और उनका समाधान ढूंढने के प्रयत्न में थे। वे मुझे भारतीय विदेश सेवा के अधिकारी तो लग ही नहीं रहे थे। मैंने देखे हैं विदेश

सेवा के अधिकारी जो अभारतीय हो चुके अपने पश्चिमीकृत मस्तिष्क से सोचते हैं और भारतीय ज्ञान, चिंतन, संस्कृति तथा भाषाओं को विदेशों में प्रचारित करने के स्थान पर विदेशों को भारत में प्रचारित करते हैं। वे विदेशों में भारतीय प्रतिनिधि न हो कर, भारत में विदेशों के प्रतिनिधि बन जाते हैं। किंतु वीरेन्द्र गुप्त हिंदी बोल रहे थे, प्रो. आदेश के समान हिंदी में हस्ताक्षर कर रहे थे और ट्रिनिडाड के भारतवंशियों को ट्रिनिडाड में एक लघु भारत उपलब्ध कराने के लिए प्रयत्नशील थे।

प्रवास के अंतिम दिन हम कुछ लोग प्रेम जनमेजय के साथ टोबैगो भी गए। टोबैगो की जनसंख्या कम है किंतु कुछ अर्थों में वह ट्रिनिडाड से भी अधिक सुंदर है। बीस मिनट की हवाई यात्रा के पश्चात् हम टोबैगो मे आ उतरे। इस यात्रा में हमारे नेता थे, बॉब सिंह। बॉब सिंह, टंका सीताराम के निकट के व्यक्ति थे और 'हिंदी निधि' का भी बहुत सारा काम करते थे। वह काम व्यवस्था संबंधी ही होगा, लिखने–पढ़ने का नहीं; क्योंकि उनको हिंदी नहीं आती थी। हम अभ्यासवश उनके साथ चाहे हिंदी के कुछ शब्द बोल जाएं किंतु वे हिंदी नहीं बोलते थे।

टोबैगो में ठीक सागरतट पर बॉब का एक होटल था। संपत्ति संबंधी जानकारी मुझे नहीं है; किंतु इतना हमें बताया गया कि वहां उनके भाई अपने परिवार समेत रहते थे। वे लोग ही होटल चलाते भी थे। बॉब तो पोर्ट ऑफ स्पेन में रहते थे। हमारी भेंट बॉब के भाई के परिवार के साथ हुई। उन्होंने हमारा खूब सत्कार किया। खिलाने में वे बहुत उदार थे; और जो लोग पीना चाहते थे, उनके लिए भी किसी प्रकार को कोई अभाव नहीं था। ... हमारी आंखों को वे सब भारतीय दिखाई पड़ते थे; किंतु उनका पहनावा पाश्चात्य ही नहीं, हवाइयन कहा जाना चाहिए। पुरुष, महिलाएं और कन्याएं, सब ही निकर और टॉप पहने हुए थे। खान–पान और भाषा भी कैरेबियन द्वीपों के अनुकूल ही थी। उस में कुछ भी भारतीय नहीं था। हां! उनके नामों को सुन कर भारतीय जीवन का कोई–कोई ध्वंसावशेष कहीं से झांक जाता था। उनके बच्चों से बातचीत कर ऐसा नहीं लगा कि वे जानते हों कि उनका भारत से क्या, कैसा और कितना संबंध है। न ही वे भारत संबंधी कुछ जानने को उत्सुक लगे। लगता था, वे समझौता कर चुके थे। उनका देश ट्रिनिडाड और टोबैगो ही था। वे वहीं रहना चाहते थे। उनके पीछे कोई गौरवशाली सांस्कृतिक परंपरा नहीं थी। न वे उसकी महानता को जानते थे।

□□□

विश्वजाल पर प्रवासियों की अभिव्यक्ति

● पूर्णिमा वर्मन

विश्वग्राम बनने की ओर उन्मुख आधुनिक जीवन की गति को देखते हुए, ऐसा प्रतीत होता है कि वाद–विवाद–संवाद की सबसे बड़े से बड़ी चौपाल आज कम्पयुटर के भीतर सिमट आई है। अपनी भाषा, संस्कृति का संदेश और सूचना वाहक यह आधुनिक, अतिसंवदेनशील यंत्र–हिंदी के प्रचार–प्रसार में भी चुनौती को स्वीकार कर रहा है। और इस चुनौती को साहस से स्वीकार करने में पूर्णिमा वर्णन जैसे व्यक्तियों का सक्रिय सहयोग है। प्रवास की अवधि को सोद्देश्यतापूर्ण अवसर के रूप में कैसे कायांतरित किया जा सकता है–पाठक इस आत्म चित्र में पढ़ेंगे।

सात साल पहले शारजाह के जिस फ्लैट में पहले–पहल कदम रखा था वहां मेरा परिचय 500 मैगाबाइट की स्पेस, बारह इंच की स्क्रीन और आठ मैगा बाइट की स्मरण शक्ति वाले एक छोटे–से कंप्यूटर से हुआ था। आज 30 गीगा बाइट स्पेस, 17 इंच की स्क्रीन और 256 मैगा बाइट स्मरण शक्ति वाले जिस कम्प्यूटर पर मैं यह दस्तावेज़ अंकित कर रही हूं वह देखने में पहले वाले से ज्यादा भिन्न नहीं है।

भिन्नता इसके अंदर छुपे हुए रचनात्मक अनुभव में है जिसे मैने गणेश जी तरह अपने चूहे (माउस) पर बैठ कर विश्व भ्रमण करते हुए सहेजा है। इसमें दुनिया के हिन्दी लिखने–पढ़ने वाले तमाम व्यास मुनियों की वे अमूल्य रचनाएं हैं जो उन्होंने प्रवास के दौरान अपने देश और अपनी भाषा को समर्पित की हैं। इन सभी रचनाओं को एक साथ एक मंच पर लाने और अभिव्यक्ति के नाम से विश्व के हर कोने में साप्ताहिक रूप से पहुंचाने का भागीरथ प्रयत्न इस नन्हीं–सी मशीन का कमाल है।

जिस तेज़ी से विज्ञान का विकास हुआ है, दुनिया छोटी हुई है और भाषाओं का विस्तार हुआ है, हिन्दी बोलने वाले हिन्दुस्तान तक सीमित नहीं रहे। वे दुनिया के हर कोने में हैं—यूरोप, अमेरिका, आस्ट्रेलिया, दक्षिणी अमेरिका, सुदूर पूर्व जापान या फिर मध्यपूर्व।

मध्यपूर्व के इस शारजाह शहर में भी हिन्दी बोलने वालों की कमी कभी नहीं रही, लेकिन हिन्दी साहित्य के प्रेमियों के लिए यह मरुस्थल ही था। पत्र—पत्रिकाओं की कमी और पुस्तकों के अभाव में मैंने विश्वजाल पर हिन्दी की खोज शुरू की। उस समय गिने—चुने थोड़े से हिन्दी जालघर थे। कोई भी जालघर डायनेमिक लिपि का प्रयोग नहीं कर रहा था। इसीलिए हिन्दी पढ़ने के लिए उनकी लिपि को डाउनलोड करने और इंस्टाल करने की ज़रूरत होती थी। सबसे पहले मैने 'दैनिक जागरण) की लिपि को डाउनलोड कर के इंस्टाल करना सीखा। उनके तरतीबवार निदेशों को समझना आसान था।

इस लिपि में टाइप करना संभव नहीं था। इसीलिए एक ऐसी लिपि की तलाश शुरू हुई जिसमें हिन्दी लिखी जा सके। अंतरजाल पर कोंकण रेलवे के हर्षकुमार ने शुषा नाम से भारतीय भाषाओं की सुंदर लिपियों की रचना की है जो मुफ्त उपलब्ध हैं। मैंने अपने काम के लिए इसी लिपि को चुना। तीन हिन्दी जालघर भी मिले जो पहले से इस लिपि का प्रयोग कर रहे थे। ये थे कोलकता की वाणी मुरारका का 'काव्यालय', यू एस ए के विनोद तिवारी का 'मेरी कविताएं' और बंगलोर के राज जैन का 'आखर'। इन सब से संपर्क साध कर कंप्यूटर पर हिन्दी को ठीक से लिखने—पढ़ने में बहुत मदद मिली।

अंग्रेज़ी के कुछ बेहतरीन साहित्यिक जालघरों से परिचय हुआ तो लगा कि हिन्दी में भी ऐसा ही कुछ होना चाहिए। इस समय तक मेरी कंप्यूटर की प्राथमिक जानकारी मज़बूत हो चुकी थी और 'आइ सी क्यू' नाम के चैट कार्यक्रम में हिन्दी साहित्य के प्रेमियों का एक अच्छा समूह (लगभग 100 लोग जो आज भी मेरी सूची में हैं) मेरे पास था। यहीं मेरा परिचय अश्विन गांधी और दीपिका जोशी से हुआ जो बाद में 'अभिव्यक्ति' और 'अनुभूति' के आधार स्तंभ बने।

अश्विन गांधी केलोवना, कैनेडा के विश्वविद्यालय में कंप्यूटर साइंस और वेब डिज़ाइनिंग के प्रोफेसर थे। दीपिका जोशी कुवैत में नयी—नयी आयी थीं और उन्हें मराठी टाइपिंग का अनुभव था। मैं इस समय तक वेब डिज़ाइनिंग का एक पाठ्यक्रम पूरा कर चुकी थी और जियोसिटीज़ में छोटा—सा जालघर बना रही थी। इसी जालघर के द्वारा मेरी पहचान न्यूयार्क के राजेन्द्रकृष्ण से हुई जिन्होंने 'बोलो जी' नाम से एक जाल पत्रिका हाल ही में शुरू की थी। वह पत्रिका जाल प्रकाशन का मेरा पहला अनुभव थी। इस अनुभव का विकास 'अभिव्यक्ति' के रूप से हुआ।

'अभिव्यक्ति' की स्थापना और आकार लेने में तकनीकी सहयोग की महत्वपर्ण भूमिका प्रो॰ अश्विन गांधी की थी। आज भी वे अपने समय, सहयोग और रचनात्मक अनुभवों को बांटते हुए हमारे साथ हैं। दीपिका जोशी ने टाइपिंग का जो महान दायित्व अपने कंधों पर

लिया था, आज भी वे उसे बखूबी संभाले हुए हैं। इस बीच 'आइ सी क्यू' में एक छोटे–से बच्चे के मार्फत मेरा परिचय प्रबुद्ध कालिया से हुआ जो हिन्दी लिपियों को विश्वजाल पर ठीक से प्रदर्शित करने के क्षेत्र में प्रयोग कर रहे थे। आगे चल कर उन्होंने 'अभिव्यक्ति' के लिए डायनेमिक लिपि बनाई जिससे इस जाल पत्रिका की लिपि को बिना डाउनलोड या इंस्टाल किए पढ़ना संभव हो गया। इस लिपि के इस्तेमाल करते ही एक महीने के अंदर पाठकों की संख्या दोगुनी हो गयी और दुनिया के हर कोने से हिन्दी रचनाकार इस मंच पर एकत्र होने लगे।

'अभिव्यक्ति' का जन्म 15 अगस्त, 2000 को हुआ था। इस समय कविताएं इस पत्रिका का एक हिस्सा थीं। कविताओं की लोकप्रियता और प्रवासी हिन्दी कवियों की इसमें बढ़ती हुई रुचि को देख कर छः महीने के अंदर 'अनुभूति' नाम से कविताओं की एक पत्रिका को अलग से प्रकाशित करने की आवश्यकता होने लगी। अतः 1 जनवरी, 2001 को 'अनुभूति' पहली बार प्रकाशित हुई। इसके दो महीने बाद इन पत्रिकाओं को एक बड़े, बेहतर और अधिक सुविधाजनक सर्वर पर स्थानांतरित कर दिया गया ताकि पाठक सुविधाजनक वाचन का आनंद ले सकें। विदेशों में पढ़ने वाले या नये–नये जा कर वहां बसे युवक–युवतियों का एक बड़ा समूह 'अनुभूति' की नई हवा का महत्वपूर्ण हिस्सा है। 'अनुभूति' की 'नई हवा' लिंक में इसकी सुगंध का आनंद लिया जा सकता है। स्वाभाविक रूप से कंप्यूटर इंजीनियरों की संख्या हमारे पाठकों में सबसे ज्यादा है।

न्यूज़ीलैंड के रोहित कुमार हैप्पी, कैनेडा से सुमन कुमार घेई, यू एस ए से लावण्या शाह, जर्मनी से अंशुमान अवस्थी और फ्रांस से राजेश वाल्टर प्रीतम विदेश से 'अभिव्यक्ति' के साथ जुड़ने वाले सबसे पहले लोगों में से थे। रोहित कुमार हैप्पी ने शुषा की कुंजियों पर अपनी लिपि विकसित की है और 'भारत दर्शन' नाम से एक हिंदी पत्रिका भी प्रकाशित करते हैं जो विश्वजाल की पहली हिंदी पत्रिका मानी जा सकती है। अंशुमान अवस्थी, राजेश वाल्टर प्रीतम और सुमन कुमार घेई ने भी शुषा लिपि में अपने–अपने जालघर विकसित किए हैं। सुमन कुमार घेई का जालघर विश्वजाल की दुनिया में हिन्दी लिपि में लिखी गयी उर्दू ग़ज़लों और नज्मों का सबसे बड़ा संकलन है। वे एक संवेदनशील कवि तथा कहानीकार भी हैं और 'अभिव्यक्ति' के लिए 'कनाडा कमान' शीर्षक से नियमित स्तंभ भी लिखते हैं। कनाडा के हिन्दी प्रेमियों को 'अभिव्यक्ति' तथा 'अनुभूति' से जोड़ने में उनकी महत्वपूर्ण भूमिका है।

धीरे–धीरें हिन्दी के प्रतिष्ठित साहित्यकार भी इस कारवां में आ मिले। यू एस ए से कोलंबिया विश्वविद्यालय की सुषम बेदी ने रचनात्मक सहयोग के साथ–साथ पत्रिका को अपने पाठ्यक्रम में प्रकाशित कर के महत्वपूर्ण सहयोग किया। यू एस ए से ही डॉ॰ सुरेन्द्रनाथ तिवारी और सुभाष काक, कैनेडा के प्रतिष्ठित साहित्यकार प्रो हरिशंकर आदेश, यू के से गौतम सचदेव, तेजेन्द्र शर्मा, उषा राजे, उषा वर्मा, दिव्या माथुर, मोहन राणा और अरुण

अस्थाना, त्रिनिडाड से डॉ॰ प्रेम जनमेजय, नार्वे से डॉ॰ सुरेशचंद्र शुक्ला 'शरद आलोक' के निरंतर सहयोग से इस जालघर ने आकार ग्रहण किया है। यू के की शैल अग्रवाल ब्रिटेन की राजनैतिक, सांस्कृतिक और सामाजिक गतिविधियों का जो चित्रण 'लंदन पाती' शीर्षक से 'अभिव्यक्ति' में करती हैं उसे विश्व–व्यापी सराहना मिली है।

'अभिव्यक्ति' के साथ–साथ पिछले कुछ सालों में विश्वजाल पर प्रवासियों के द्वारा रचे गये अनेक, जालघर, पत्र एवं पत्रिकाएं विकसित हुए हैं। इनमे डॉ॰ मलाइया के हिन्दी लिंक, अनेक हिंदी शिक्षा कार्यक्रम और बीबीसी तथा कोलोन से प्रसारित होने वाले हिंदी कार्यक्रमों के जालघर शामिल हैं। प्रवासियों द्वारा समाचार–पत्रों, साहित्यिक पत्रिकाओं तथा महिलाओं और बच्चों के लिए भी हिंदी में अध्ययन तथा मनोरंजन की सामग्री सुलभ की गयी है। इनमें से अधिकतर के लिंक 'अभिव्यक्ति' के शिक्षा सूत्र या डॉ॰ मलाइया के हिंदी लिंक में दिए गए हैं।

बात अगर हिन्दी की हो तो हिन्दुस्तान के सहयोग के बिना अधूरी रहती है। 'अभिव्यक्ति' और 'अनुभूति' में प्राचीन भारतीय साहित्य और समकालीन हिन्दी साहित्य के अनेक लेखकों की रचनाएं शामिल की गयी हैं। कुछ लुप्तप्राय और महत्वपूर्ण रचनाओं को खोज निकालने के लिए हमारे इलाहाबाद सहयोगी श्री ब्रजेश कुमार शुक्ल ने प्राचीन पुस्तकालयों की धूलभरी अलमारियों के गले हुए पन्नों के बीच जो महत्वपूर्ण कार्य किया है, वह हर किसी के वश का नहीं। डॉ॰ दिविक रमेश, डॉ॰ सूर्यबाला, रवींद्र और ममता कालिया का सौजन्यपूर्ण सहयोग हमारे साथ रहा। हिन्दी के सभी प्राचीन और आधुनिक साहित्यकारों तथा पत्रिकाओं के प्रति हमारा आभार जिनके सहयोग से इस जालघर का निर्माण और विकास जारी है।

व्यावसायिकता के युग में अर्थशास्त्र के नियमों पर चलने वाली इस दुनिया में बिना अर्थ के केवल सौजन्य पर आधारित जिस जालघर की रचना हमने की है वह भारत के हिन्दी प्रेमियों के संगठन और परिश्रम का अनुपम उदाहरण है। यह कोरी आत्मप्रशंसा नहीं है। देश–विदेश से आने वाले 200 से अधिक पत्रों को हमने एक फाइल में संकलित किया है। जिस दीवागनी से नयी पीढ़ी के लोग हरिवंशराय बच्चन की 'मधुशाला', श्यामनारायण पांडेय की 'जय हनुमान', अज्ञेय की नाग और धर्मवीर भारती की 'अंधायुग' जैसी रचनाओं की मांग करते हुए परदेस से पत्र लिखते हैं, उससे हिंदी साहित्य की विश्वव्यापी लोकप्रियता का अनुमान लगाया जा सकता है।

□□□

'हेरिटेज सिटी' पारामारिबो के प्रवासी भारतवंशियों की भारतीयता

● प्रो० पुष्पिता

सूरीनाम!
इस देश का नाम सुनकर लगता ही नहीं, यह विदेश है। इतनी बड़ी संख्या में भारतवंशी यहां हैं कि जीवन के प्रत्येक क्षेत्र का संचालन मानो उन्हीं के हाथों में है। और हो भी क्यों न; सैकड़ों वर्ष पूर्व कुली बनाकर बहाने से ले जाए गए इन भारतवंशियों ने उस अपार जंगल को, अथाह संपन्न जो कर दिया है। अत्यन्त जानकारी दे रही हैं प्रो॰ पुष्पिता।

भारतीय संस्कृति में मानव–संस्कृति का सौन्दर्य समाहित है। 'वसुधैव कुटुम्बकम' दर्शन का जीवंत स्वरूप यदि देखना है तो विश्व में प्रवासी भारतवंशियों का जीवन चरित्र देखा जा सकता है। भारतीय संस्कृति का महा वट वृक्ष भारतभूमि में है लेकिन उसकी जड़े विश्व भू–धरा में हैं। जहाँ भी प्रवासी भारतवंशी हैं वे भारतीय संस्कृति के वंश–वृक्ष हैं। विदेश की भूमि में वह भारतीयता के लिए ही फलता–फूलता है। अपनी स्वदेश की सरहदों के पार जाकर ही जाना जा सकता है–प्रवास की पीड़ा और स्वदेश का अक्षय–सुख।

एक वर्ष से प्रवासी भारतवंशियों की पीड़ा के साथ मैं भी समव्यथी प्रवासी भारतीय हूँ। इस वर्ष 'हेरिटेज सिटी' के रूप में विश्व विख्यात हुए पारामारिबो की वसन्त गर्मी सुवासित वसुन्धरा से प्रवासी सूरीनामी भारतवंशियों की रगों में व्याप्त भारतीय–संस्कृति का अपना वैभव है। हिन्दू–धर्म विदेशों में भारतीय संस्कृति की शक्ति है इसकी स्पर्शानुभूति को प्रवासी भारतवंशियों के बीच रहकर ही अनुभव किया जा सकता है –

राम–राम भईया ... कइसे रहलो? मोई से?

राम–राम भईया ... चले हो धीरे–धीरे?

अरे! – चलावे के परी!

हाँ भईया – देख न डाला (डॉलर) का दमवा चढ़ता जा है। यह संवाद पूर्वी उत्तर भारत के किसी गाँव के दो मनई के बीच का नहीं है। सात–समुद्र पार और सत्रह हजार किमी. पार लातिन अमेरिका उपमहाद्वीप के शीर्ष पर बसे, सूरीनाम देश के प्रवासी भारतवंशियों के बीच का है। राम–अब सिर्फ भारत के ही नहीं हैं। पूरे विश्व के हैं और विश्व–मानव संस्कृति के हैं। 'श्रीराम धाम' दर्शन की अभिलाषा में आज से एक सौ तीस वर्ष पूर्व आये सन् 1873 ई० में आजा–आजी की पीढ़ी अरकाटियों (मानव–मजदूरों के दलाल) द्वारा बदतर हालतें में बंधुआ मजदूर के रूप में सूरीनाम धरती पर आयी। तब 'श्रीराम धाम' की जगह भयानकता की चीत्कार करता भीषण जंगल हाथ लगा। एक भारतीय ने तो सूरीनाम धरती पर पाँव धरते ही दम तोड़ दिया। सूरीनाम धरती पर उसकी देह ने समाधि ली। भारतभूमि के पंचतत्व सूरीनाम देश के नदी तट पर पंच तत्वों में विलीन हो गये। राम नाम लेते हुए उसने प्राण त्यागे। गाँधी जी के राम – भारतीय संस्कृति के राम – यहाँ के जन जीवन में आपसी दरस–परस पर राम–राम उद्‌बोधन के रूप में बसे हुए हैं।

घर–घर में पढ़ी–पढ़ायी और पूजी जाने वाली गीता और रामचरित मानस की कर्मनिष्ठा और मर्यादाबोध सूरीनाम के हिन्दुस्तानियों का आज भी जीवन बोध है। अपने श्रम के गर्भ से काढ़कर भारतवंशियों ने यह देश विश्व के सामने वसन्तजीवी देश के रूप में प्रस्तुत किया है। एक ओर विश्व में प्राकृतिक सौन्दर्य के लिए विख्यात तो दूसरी ओर प्रवासी भारतवंशियों की भारतीय सांस्कृतिक निष्ठा के लिए प्रसिद्ध सूरीनाम देश के लोगों की बोली–बानी रहन–सहन खानपान जीवन–शैली भारतीयता का आईना है। सूरीनाम की धरती पर भारतवंशियों ने अपनी सांस्कृतिक निष्ठा से इसे भारतभूमि का अखण्ड खण्ड बना दिया है। सूरीनाम के प्रसिद्ध कबीरपंथी भारतवंशी कवि सुरजन परोही अपनी एक कविता में लिखते हैं –

कोयल की मीठी बोली हम समझ नहीं पाते
कौए की तीखी बोली से हम रूठ नहीं जाते
हम भारतीय तो नहीं लेकिन बीज वहीं का है
सूरीनाम के वातावरण में पला वेदों का ज्ञान वहीं का है।

जीविका से कुम्हार सुरजन संयुक्त परिवार को अपने परिश्रम से जिलाये हुए हैं। जिनके घर की रोटी आज भी 1873 में आये आजा–आजी की गठरी में आये बेलन से बनती हो और उनकी अम्मा भारत से लाए हुक्का और मिट्‌टी के गणेश को आज भी सहेजकर रखी हो जबकि स्वयं 87 वर्ष की होकर पहिया वाली गाड़ी के सहारे पूरे घर में रेंगती हो और मेरे पूछने पर वह सिसक कर बोल पड़ी हो – भारत की याद में अब आँसू नहीं आँखें बहती हैं।

भारत देश के निवासी आज भारतीय कहलाते हैं लेकिन सूरीनाम के भारतवंशी आज भी स्वयं को हिन्दुस्तानी कहलाना पसन्द करते हैं। अपने छोड़े हुए हिन्दुस्तान से ही अपनी पहचान जोड़ते हैं और नाभिनाल सम्बन्ध महसूस करते हैं। पिछले दिनों इन्टरनेट के द्वारा

भारत–लंका के बीच के सेतू की सूचना का हर्षोन्माद दर्शनीय था। फोटो प्रिंट देखते–बाँटते भारतवंशी अघाते नहीं थे। शबरी, निषादराज की–सी भक्ति सूरीनामियों में राम और भारत के प्रति दिखायी देती है। भारत देश की खबरों के साथ सोते–जागते और सोचते हैं। भारतीयों के साथ किसी भी तरह के दु:खद समाचार से इन लोगों का तन–मन काँप उठता है। भारत और भारतीयों के साथ किसी तरह का अन्याय उन्हें सहन नहीं है। यहाँ हिन्दू भाई जहाज में साथ आये मुस्लिम परिवारों में जहाजी भाई होने का रिश्ता मानते हुए भाई–चारे के साथ रहते हैं। धर्म और मन्दिर–मस्जिद को लेकर कभी विवाद नहीं हुआ। लेकिन आतंकवादियों के प्रकोप से सिहरे हुए मुस्लिम परिवारों को हिन्दू परिवारों के प्रति अपनेपन के गहरे सम्बन्धों को भी देखा गया है। विदेश में वे सबसे पहले भारतवंशी और भारतीय हैं, इसके बाद उनका कोई दूसरा जाति–धर्म बनता है। हिन्दू–मुस्लिम परिवारों के लड़के–लड़कियाँ विवाहोपरान्त अपने–अपने धर्म, परम्पराओं, रीति–रिवाज और चाल–चलन को मानते हैं। किसी परिवार से कोई हस्तक्षेप और दबाव नहीं पड़ता है। रहमान खान यहाँ का दूसरी पीढ़ी के पहले भारतीय हिन्दी भाषी कवि हैं जिनकी कविताओं में कबीर की निर्गुनियाँ सुगन्ध और साखी की तरह तपाने वाली सच्चाई की तीखी आँच है।

एक ओर यदि प्रकृति ने सूरीनाम की धरती पर भारतीय वसुधा के सौन्दर्य का रचाव–श्रृंगार किया है तो दूसरी ओर प्रवासी भारतवंशियों ने भारतीय संस्कृति के अटूट वैभव का। इस देश के ऋतुचक्र में ऋतुराज वसन्त और वर्षा रानी का आधिपत्य है। सूखे के चन्द दिनों को सूरीनाम झूरा का मौसम कहते हैं। सुबह का सूरज अपनी वासन्ती सूरजमुखी सुनहरी चदरिया पसारकर वसन्त ऋतु का ऐसा सौन्दर्य पसारता है कि सम्पूर्ण भारत में खिलने–फूलने वाले फूल यहाँ की धरती में सुगन्ध वाटिका बनाये हुए मिल जायेंगे। दोपहर होते–होते तक वासन्ती हवाएँ समुद्र पिता के वक्ष पर खेलते हुए बादलों की उँगली थाम सूरीनाम के सुनीलाकाश आँगन में अठखेलियाँ करते हुए सहेज लायेंगी। अपराह्न तक दबे पाँव होने वाली बरसात की गूँज आनन्द हर्षक होती है। सूरीनाम के बादल संन्यासियों की तरह चुपचाप आते हैं और आशीष की तरह बरसते हैं। बादलों का आशीर्वाद यहाँ की प्रकृति के रोम–रोम में दिखायी देता है। हालैंड की वास्तुकला पद्धति में बने यहाँ के मकानों की संरचना प्रतिदिन की बरसात झेलने के सामर्थ्य से समन्न होने के कारण विशेष अनोखी पद्धति में बने हैं। 1966 में वास्तुशिल्पी इन्जीनियर श्री जानकी प्रसाद जी जो यहाँ के एसोशिएशन के अध्यक्ष भी हैं ने बताया कि यहाँ के मकान अपने पांव पर खड़े मकान हैं। नींव के बाद सतह से पाँच फुट से लेकर बीस फुट की ऊँचाई में खम्भे या पाँव पर खड़े कर फिर वास्तविक मकान का ढांचा रचते हैं। घनघोर बूंदों की झमाझम में भारतभूमि के सावनिया मेघों की छमाछम सुनायी देती है। घरों की विशेष तरह की टीन को छतों के मंच पर भाव–विभोर होकर नृत्य करती हैं बूँदें और आनन्दित होकर मेघा (मेढ़क) विस्परिंग फ्रॉग बजाते हैं सीटियाँ। घास के भीतर छुपे मेढ़कों की सीटियों के कारण धरती के मुँह से सीटियाँ सुनकर एक अद्‌भुत हर्षोन्माद की अनुभूति होती है। दिन में कई बार पं॰ जसराज और

कुमार गन्धर्व के मेघ मल्हार राग की याद आती है। संध्या की सूर्यास्त बेला में कवि सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' की संध्या सुन्दरी सचमुच अवतरित होते हुए महसूस होती है। सूर्य की लाली का सिन्दूर लगाकर सूरीनाम की नदियाँ सुहागिन स्त्रियों की तरह अलौकिक श्रृंगार करती हैं चाँदनी से सजी धरती पर अभिसार के लिए। मेघों और चिड़ियों के सामूहिक गान से प्रायः पूरबिया लोकगीतों की धुनें स्मृतियों के ओठों पर गूंज उठती हैं और न जाने कितने अवधी और भोजपुरी लोकगीतो के बोल अधरों के बोल बन बैठते हैं। दिवस में कई बार मेघों की बरसात सूरीनाम की धरती को बनाती है पूजा और उपासना के योग्य पावन और पवित्र कि सम्पूर्ण सूरीनाम देश प्रकृति द्वारा रचा हुआ ईश्वराधना का नैसर्गिक मन्दिर प्रतीत होता है। वेद की ऋचाओं की पावनता यहाँ दृष्टव्य है। भक्ति की सुगन्ध यहाँ के फूलों से महसूस होती है। पूरी धरती पूजा–साधना के लिए उपासना–स्थली की तरह पवित्र और पावन लगती है। हिन्दुस्तानियों (भारतवंशियों) के घरों के अहातों के भीतर छोटा–सा मन्दिर और झंडियाँ यहाँ की हिन्दू संस्कृति का प्रतीक हैं। उत्तर भारत के गाँव–घर याद आ जाते हैं। भारतवंशियों के उर–अन्तस में भारतीयता का संस्कृति–बोध अपने चरम उत्कर्ष पर है कि युवा–पीढ़ी के मेरे न जाने कितने छात्र कन्धे तक लम्बी चुटिया रखाये हुए हैं। यूरो कैरेबियन देशों में पेन्टर के रूप में ख्याति प्राप्त कलाकार चित्रकार श्री जार्ज राम जिआवन सिंह स्वयं कन्धे तक लम्बी चुटिया रखाये है और अपनी मँहगी से मँहगी पेन्टिग पर पहले 'ॐ' लिखकर फिर अपना हस्ताक्षर करते है। विश्व स्तर की प्रतियोगिताओं और आर्ट गैलरी, फाइव स्टार होटल गैलरी में वे अपनी भारतीय संस्कृति गर्मी, हवन, यज्ञ, पूजन, झंडी पूज़न और विवोहात्सव आदि की पेन्टिंग लगाते हैं। उनके सत्तर विद्यार्थी हैं जिनपर वे प्रयोग कर रहे हैं कि यदि वे भजन, श्लोक और मंत्र सुनते हुए पेन्टिंग बनाये तो उस पर क्या असर होगा। प्रसिद्ध कलाकार आनन्द बिन्दा अरविन्द माँ के परम भक्त हैं और कभी भारत नहीं गये हैं बावजूद इसके अरविन्द जी के दर्शन से प्रभावित योग का प्रशिक्षण देते हैं। हाल ही में ब्राजील से अपनी एकल प्रदर्शनी लगाकर लौटे हुए आनन्द बिन्दा की पेन्टिग की खासियत गति है। दौड़ते और अनेक मुद्राओं वाले घोड़ों की पेन्टिंग को देखकर टालस्टॉय के लघु उपन्यास के घोड़ों का उल्लेख याद आ जाता है।

पारामारिबो के उत्तर पश्चिम निकेरी की ओर बढ़ने पर धान की खेती और सड़क के दोनों ओर कनिहर में कमल के फूलों की रंगत से एक साथ उत्तर भारत और कालिदास का साहित्य याद आता है। पारामारिबो से उत्तर पूर्व एलबिना तट की ओर मुखातिब होने बॉक्साईड की खदानों से पटे इलाकों की लाल मिट्टी देखकर बिहार का लालमटिया जिला और कोयले की खदानें याद आती हैं।' सूरीराम की धरती पर दस प्रतिशत आबादी है और शेष पर आज भी जंगल का वैभवशाली वर्चस्व है कि रह–रहकर कवि भवानी भाई की कविता 'सतपुड़ा के जंगल' रह–रहकर याद आती है।

प्रवासी भारतवंशियों के आजा–आजी ने अपने श्रम से इस देश की धरती ही नहीं रची अपितु अपनी दिनभर की कमायी पूँजी से सिर्फ एक वक्त जांगर खातिर खाना खाते रहे और

शेष धन को वे मन्दिर की मूर्ति के लिए जोड़ते–लगाते थे। गोवर्द्धन घाट पर बने प्रसिद्ध मन्दिर के निर्माता की नयी पीढ़ी के चाँद गोवर्द्धन (भूतपूर्व शिक्षा एवं वित्त मंत्री) का कहना है कि मेरे आजा–आजी ने भूखे रहकर अपनी पेट की कमायी से मन्दिर बनवाये थे। सूरीनाम में दो सौ के आसपास मन्दिर हैं। प्रवासी भारतवंशियों ने अपने घर के साथ–साथ अपने मन्दिर रचे थे। अपने घर में चूल्हा जलाने से पहले मन्दिर में दिया जलाते थे। अपने भोजन से पहले भगवान को भोग लगाते थे और यही संस्कार आज के चालीस प्रतिशत भारतवंशियों की रगों का हिस्सा है। प्रायः मन्दिरों में सभी भगवानों की मूर्तियाँ होती हैं। सप्ताह में एक दिन छः से नौ बजे तक मन्दिर लगाते हैं। मंच पर पुरोहित पंडित का व्यास पीठ से प्रवचन होता है। दर्शक दीर्घा में चर्च के हाल की तरह बेंच लगी रहती हैं। स्त्रियों–पुरुषों की अलग–अलग दीर्घाएं हैं। स्त्रियाँ सिर ढके रहती हैं फिर चाहे मिनी स्कर्ट ही क्यों न पहने हो। भजन–मंडली गाती है जिसके साथ–साथ भक्तों के लिए रोमन लिपि में लिखे हुए भारत में विख्यात और गाये जाने वाले भजन एकसुर में गाये जाते हैं। सूरीनाम में हिन्दी भाषा और साहित्य के विकास का आधार भजन, भक्ति और हिन्दू धर्म है। मन्दिरों में शेष दिनों में हिन्दी, नृत्य (कत्थक और भरतनाट्यम) और संगीत की कक्षाएं होती हैं। कत्थक के लिए श्री आनन्द रामचरण का नाम जितना जाना–पहचाना है, भरतनाट्यम के लिए माधुरी जगमोहन को उतनी ही प्रसिद्धी हासिल है। कत्थक और भरतनाट्यम की धरोहर नयी पीढ़ी में इन्हीं दोनों के कारण सूरीनाम की धरती पर झनक रही है।

साढ़े चार लाख आबादी वाले देश की चालीस प्रतिशत आबादी वाले भारतवंशियों के घर–घर में गीता और रामचरित मानस का गुटका मिल जायेगा। भारतभूमि के सभी पर्व अपने सम्पूर्ण ऋतुचक्र के साथ यहाँ मनाये जाते हैं। शारदीय नवरात्र से लेकर वासन्तीय नवरात्र के बीच के सभी पर्व यहाँ सम्पूर्ण धार्मिक अनुष्ठान और निष्ठा के साथ मनाये जाते हैं। होली पर्व पर विशेष रूप से घर–घर घूमती हुई गान–मंडलियाँ बैठक–चटनी गाना गाती हैं और रंगीन पाउडर की सुगन्धित सूखी होली खेलती हैं। सूरीनाम के बैठक–चटनी के लिए विख्यात कृष रामखिलावन ने अपने गीतों के गान की विशेष शैली के कारण विश्व प्रसिद्धी हासिल कर ली है। दशहरा से एक माह पूर्व से यहाँ रामलीला का प्रदर्शन प्रारम्भ हो जाता है। भाई के लिए रक्षा–बंधन, तो पति के लिए करवाचौथ जैसा व्रत यहाँ बहुत धूमधाम से मनाये जाते हैं।

स्वामी दयानन्द सरस्वती को मानने वाले आर्य समाजी संस्थाओं के द्वारा प्रवासी भारतवंशियों की नव्यतर पीढ़ी को हिन्दू धर्म के कार्यकर्ता होने का प्रशिक्षण दिया जाता है। इसके अतिरिक्त गायत्री परिवार, सत्य साईं बाबा के उपासकों के अनेक मन्दिर हैं। मुस्लिम धर्मावलम्बियों के लिए सुन्दरतम मसजिदे हैं। रोज़ा–नमाज का पालन होता है। महिला समाज की सेवा में संलग्न 'शीला' संस्था की अध्यक्षा–श्रीमती मैरी गफूर खान की सेवाएँ प्रवासी भारतवंशियों के विकास में सहायक हैं। यूरोप की भोगवादी आत्मघाती संस्कृति के विरुद्ध अपने अस्तित्व और अस्मिता के लिए सूरीनाम के भारतवंशी प्राणपण से जुटे ही नहीं हुए हैं बल्कि अपना सर्वस्व दाँव पर लगाकर भारतीय संस्कृति को बचाये हुए भी हैं।

सूरीनाम देश की राष्ट्रीय भाषा डच होने के बावजूद पच्चीस वर्ष पूर्व आये प्रो० सदानन्द सिंह द्वारा स्थापित 1978 में 'सूरीनाम हिन्दी परिषद' का गठन हुआ, जिसके अध्यक्ष भूतपूर्व जनसेवा और संचार मंत्री श्री जानकी प्रसाद सिंह जी पच्चीस वर्षो से भाषा के प्रचार–प्रसार में लगे हुए हैं। पच्चीस वर्षो की भाषा–प्रचार की साधना को देखते हुए भारतीय सांस्कृतिक केन्द्र की हिन्दी प्रोफेसर पुष्पिता ने हिन्दी भाषा और साहित्य के प्रचार–प्रसार के लिए 'सूरीनाम विद्यानिवास साहित्य संस्थान' और 'साहित्य मित्र संस्था' का गठन किया है और वहाँ से 'हिन्दी नामा' और 'शब्द–शक्ति' पत्रिका प्रकाशन की दिशा में सक्रिय हैं। इससे पूर्व 'सूरीनाम हिन्दी दर्पण' नाम से पत्रिका के विशेषांक प्रकाशित होते रहते थे। 'सेतूबन्ध' नाम से महातम सिंह जी पत्रिका का सम्पादन और प्रकाशन करते रहे हैं।

भारतवंशियों की बस्ती में हर तीन–चार घर के बीच एक हिन्दी की कक्षा शाला है। हर दो–तीन घरों के आँगन–बीच 'श्यामपट्ट' लगा हुआ है जहाँ हिन्दी भाषा के कुछ शब्द–कुछ वाक्य–कभी चौपाई और कहीं कबीर का दोहा या मीरा का भजन लिखा हुआ मिल जाता है। हिन्दी सेवियों की सम्पूर्ण सेवाएँ अवैतनिक हैं और इच्छुक विद्यार्थियों से कोई शुल्क नहीं लिया जाता है।

साहित्य के क्षेत्र मे तीन प्रवासी भारतवंशियों के नाम शीर्ष पर हैं। सूरीनाम इनसाइक्लोपीडिया में प्रथम 'दिया' बनाने वाले व्यक्ति के रूप में पहचाने–जाने वाले 'सुरजन परोही' हिन्दी भाषा के कवि हैं तो कैरेबियन और यूरोपीय देशों में ख्याति प्राप्त कर चुके और हालैंड में कवि जीत नाराइन की कविता का मोनामेन्ट है। वे सरनामी हिन्दी के प्रचारक और कवि हैं। जीत नाराइन अपने पुरखों के संघर्ष के प्रति गहरी करुणा से सम्पृक्त कविताएँ लिखते हैं–

गिरमिट, गरीबी, हाल और हड़ताल की बयानबाजी
कितने मरे, मारे गये, केवल घायल हुओं की गिनती हुई
जब कि इतिहास है ये लगभग
तो फिर, सिर्फ याद भर करने के लिए ही इसका साथ क्यों है?
तब हम पर क्यों
बोल दो, इतिहास, इतिहास पर ही रोये।

कवि श्री मार्तिन हरिदत्त लछमन श्रीनिवासी ने अपनी कविताओं से डच साहित्य में अपनी एक पहचान बनायी है। इसके अतिरिक्त हरिदेव सहतू, शिवराज देवराज, महावीर, सुशीला बलदेव जैसे महत्त्वपूर्ण लोग हैं। अमित अयोध्या, रोशनी अयोध्या, संतोषी, वन्दना, उषागोपी ऐसे हिन्दी भाषाकर्मियों की नयी पीढ़ी तैयार हो रही है। सूरीनाम देश के अर्थ तंत्र पर प्रवासी भारतवंशियों के व्यवसाय की पकड़ है जिसमें सिन्धियों का नेतृत्व है। व्यवसाय संगठन के भगवान पाण्डेय अध्यक्ष हैं। थल सेना, पुलिस, प्रशासन और न्याय के अनेक क्षेत्रों में भारतवंशियों का प्रभुत्व है तो चिकित्सा के क्षेत्र में कई भारतवंशी चिकित्सक हैं।

प्रवासी भारतवंशियों की श्रम की खेती से अपने लिए पूँजी की फसल उगाने वाले गोरों ने भारतीयों को बैलों की जोड़ी की तरह खेतों में जोता। अपनी सत्ता और पूँजी का हल उनके नाजुक कन्धों पर रखा। लेकिन प्रवासी भारतवंशियों के पूर्वज अपने साथ धान और लावा ही नहीं, धर्म का धान भी अपनी आत्मा की गठरी में बाँध लाये थे जिसकी लहलहाती फसल प्रवासी भारतवंशियों के मन–मानस में आज भी देखने को मिल जाती है।

सत्ताधारी डच शासकों के द्वारा शर्तबंदी प्रथा के अन्तर्गत बंधक बनाये जाने के बावजूद कुत्ता, कुली और कलकतिया कहकर लांछित किये जाने वाले हम सबके मजदूर पुरखों ने और उनके गोदिया बच्चों ने कुली स्कूल में अपमानित स्थिति में डच भाषा में शिक्षा पायी। जिसका जीवंत और विश्लेषणात्मक्र दस्तावेज़ सूरीनाम विश्वविद्यालय की डच विभागाध्यक्षा डा० लीला गोवर्धन रामबोकस की शोध प्रबन्ध पुस्तक में मिल जायेगा। विपरीत और दाहक परिस्थितियों में भी हमारे पूर्वजों ने अपने भारतीय संस्कार नहीं छोड़े। ढिबरी की रोशनी में तुलसी और कबीर के लिखे को भजते रहे। राम के होने पर भरोसा रखा।

ईश्वर की आराधना में अगरबत्तियों की तरह सुलगते हुए प्रवासी भारतवंशियों की भक्ति की पहचान पूरे विश्व की ताकत बनी हुई है। भक्ति की शक्ति ही इस देश के हिन्दुस्तानियों की शक्ति है। पंडित का कार्य यहां पुरुष ही नहीं स्त्रियाँ भी करती हैं। इस क्षेत्र में पंडिता सुशीला बलदेव, पंडिता संझरी द्वारिका सिंह और पंडिता तारा बदलू, पंडिता नारायणा आदि है। स्त्रियों का भाषा–बोध पुल्लिंग–वाची है। यहाँ की स्त्रियाँ कहती हैं–मैं जाता हूँ, मैं खाता हूँ। और पुरुषों के द्वारा कहा जाता है–मैं जाती हूँ और मैं खाती हूँ। महिलाएँ अपने पतियों को आज भी दुल्हा कहती हैं और पुरुष अपनी पत्नी को दुल्हिन या महारानी कहकर पुकारते हैं।

अटलांटिक महासागर की तटौना धरती होने के बावज़ूद अमेजन नदी की डेल्टा–भूमि से बना हुआ है सूरीनाम तट। अटलांटिक महासागर में समाने वाली सूरीनाम देश की सभी नदियों के मुहाने अमेजन नदी के पानी से छके और माटी से भरे रहते हैं। ब्राजील का शीशवत् सूरीनाम देश भारतीय संस्कृति की पहचान का विलक्षण देश है। गाँधी, विनोबा और जयप्रकाश नारायण के विचारों की किताबे लोगों के घरों में है। इस देश के प्रवासी भारतवंशियों के घरों में यदि एक ओर धार्मिक साहित्य की ज्योति है तो दूसरी ओर भारतीय महापुरुषों के विचारों की ज्वाला और मशाल है। निकेरी के नागरिक क्लेमन्स विश्वामित्र सूरीनाम के क्लोनियल पार्लियामेन्ट के पहले सदस्य हुए और 1950 तक इस देश की सेवा की। पचास वर्षों से सूरीनाम की सत्ता–शासन द्वारा भारतवंशियों के प्रतिनिधि सदस्य और अगुआ सभापति श्री जगन्नाथ लछमन का नाम आदर के साथ लिया जाता है जिनका 2001 में निधन हुआ। सरनामी हिन्दी और हिन्दी के लिए समर्पित सेवक सत्ता में सक्रिय श्री ज्ञानाधीन की सेवाएं प्रवासी भारतवंशियों के सम्मान सम्वर्द्धन में सहायक रही हैं। सरकार में रहते हुए सरनामी हिन्दी और डच का शब्दकोश लिखा। सूरीनाम के प्रवासी

भारतवंशियों के लिए मन में रह–रहकर जो गूंजता है, उसे मैं कविता में कुछ यूं अभिव्यक्त कर रही हूँ–

भारत से दूर
सात समुद्र सुदूर
सप्तसिन्धुशाली देश में
सिन्धुघाटी की सभ्यता के लिए
सूरीनाम देश में प्राण देकर जीता है
प्रवासी भारतवंशी

धान बीजड़ से भारतवंशी जन
सूरीनाम के लिए जन्मे
भारतभूमि के पंचतत्वों से बने
सूरीनाम के पंचतत्वों के लिए

भारतवंशी, सूर्यवंशी
सूरीनाम की तपती धरती के
वास्तविक सूर्यवंशी
प्रवासी भारतवंशी हैं– सूर्यवंशी

सूर्य के प्रकाश से
बनी हैं देहाकृतियां
मिटाती हैं अँधेरा
और भरती है उजाला

सूरीनामी हवाओं में
प्रवासी भारतवंशी घोलते हैं
अपने पुरखों का प्यार
और अपना दुलार
सूरीनाम में बसे
विश्व के सभी
देशवासियों के नाम–
कि पारामारिबो जाना जाता है
हेरिटेज सिटी ऑफ दी वर्ल्ड
जिसे समुद्र गाता है–लोरी की तरह
रात–दिन!

□□□

दक्षिण कोरिया में भारतीय प्रवासी

● दिविक रमेश

"जैसा कि हर समाज में सहज है, कोरिया में भी अच्छे बुरे, उदार–स्वार्थी, सहयोगी–बाधक सब तरह के लोग मिलते हैं। कुछ भारतीयों को कुछ कोरियाइयों को लेकर कटु अनुभव भी हुए हैं। यह सत्य है कि कोरियाई लोग अपने और अपने लोगों में ज्यादा मस्त रहते हैं।" दक्षिण कोरिया के विश्वविद्यालय में अतिथि आचार्य के पद पर कार्यरत रहे डॉ॰ दिविक रमेश के अपने अनुभव हैं जो प्रवासी भारतीयों की दक्षिण कोरिया में उपस्थिति को शब्दों में बांधकर 'गगनांचल' के पाठकों के लिए प्रस्तुत कर रहे हैं।

सुदूर पूर्व एशियाई देश दक्षिण कोरिया एक ऐसा खूबसूरत देश है जिसने पिछले 20–22 वर्षों में आर्थिक दृष्टि से समृद्धि के चमत्कारपूर्ण शिखर छू लिए हैं। लगभग भारत के साथ–साथ ही आज़ादी प्राप्त यह देश भारतीय आर्थिक तंत्र से ही नहीं अपितु कितने ही देशों से किस हद तक आगे आ चुका है, इसका पता इस बात से भी चलता है कि आज कोरिया की 'परकपिटाइंकम' 12000 अमेरिकी डॉलर है। इस देश की ऐसी समृद्धि भी अन्य देशों के लोगों को अपनी ओर आकर्षित करने के लिए उत्तरदायी है। यूं कोरिया से भारत का बहुत पुराना संबंध माना गया है। बौद्धधर्म चीन से कोरिया होता हुए ही जापान गया था। पहली शताब्दी में अयोध्या की एक राजकुमारी के वहां के एक राजा किम सूरो से विवाह की घटना भी वहां के ग्रंथों में मौजूद है। अपवाद स्वरूप एवं अपुष्ट ही सही एक मत का कहना यह भी है कि ई.पू. समय में भी कोरिया के दक्षिण में भारतीय लोगों का वास था और उन्होंने कोरिया को अपने साथ ले जायी गयी अनेक वस्तुओं से परिचित कराया था। किम सूरो गाया राज्य का राजा था और गाया शब्द से गया ध्वनि भी मिलती ही है। तो भी यह सच्चाई है कि बहुत सालों तक कोरिया भारतीयों के लिए वैसा आकर्षण का केन्द्र नहीं रहा जैसा जापान आदि।

मुझे 1994 से 1997 तक दक्षिण कोरिया में रहने का अवसर मिला। मैं क्योंकि भारत सरकार की ओर से गया था इसलिए मुझे कुछ अतिरिक्त सुविधाएं प्राप्त थीं जिनके रहते आटे, दाल, मसाले इत्यादि जैसी कुछ आम समस्याएं मेरे लिए समस्या पैदा नहीं कर सकीं। ये वे चीज़े हैं जो कोरिया में नहीं मिलती। वैसे तब से अब तक के समय में कुछ बदलाव भी आए हैं। मेरे प्रवास के समय, बताया जाता था कि वहां लगभग 250 प्रवासी भारतीय परिवार हैं–वैध रूप में। अवैध प्रवासी भी थे। कितने, नहीं मालूम। यह जानकारी भर थी। किसी अवैध भारतीय प्रवासी से मुलाकात कभी नहीं हुई। हाँ पकिस्तानी अवैध प्रवासियों को देखने का मौका अवश्य मिला था। उनसे कम पढ़े–लिखे ग़ैर कोरियाई मजदूरों के हालात की जानकारी भी मिली। अपने देश की अपेक्षा उन्हें कहीं ज्यादा कमाई मिलती थी। हवाले से वे रुपया अपने देश भेजते थे। मालिक उन्हें अधिकतर छिपा कर ही रखते। ये प्रवासी छोटे–छोटे कारखानों और खेतों में काम करने के लिए लाए जाते। सख्त कोरियाई वीज़ा कानून के बावजूद रास्ता निकालना आश्चर्य की बात थी। जहां तक वैध प्रवासी भारतीयों का प्रश्न है उनमें विद्यार्थी, अध्यापक, व्यवसायी, ट्रैवल एजन्ट, बैंककर्मी, बहुराष्ट्रीय संस्थाओं में कार्यरत इंजीनीयर्स, धार्मिक संस्थाओं से जुड़े लोग, भारतीय दूतावास कर्मी इत्यादि सम्मिलित हैं। पता चलता है कि आजकल लगभग 2500 भारतीय वैध और इस संख्या से कुछ ज्यादा अवैध रूप से कोरियो में हैं।

किसी भी विदेश की ओर जाने की योजना बनते ही भाषा, भोजन, आय और सुरक्षा संबंधी विचार सहज ही आ जाया करते हैं। दक्षिण कोरिया में यदि कोई भारतीय अपने दूतावास से नहीं जुड़ा है या बहुत ही अधिक सम्पन्न नहीं है, तो निश्चित रूप से भारतीय भोजन की दृष्टि से अपने को संकट में पा सकता है। कोरियाई भोजन की आदत डालनी पड़ती है। हालांकि मुझे तो वह बहुत ही स्वादिष्ट लगता है और पौष्टिक भी। रहते–रहते, काफी देर बाद, मैंने राजधानी सोल में एक ऐसा कोरियाई भोजनालय भी खोज लिया था जो न केवल सही मायनों में शाकाहारी था बल्कि अपेक्षाकृत सस्ता भी। कुछ विद्यार्थियों को छोड़ मैंने भारतीय प्रवासियों में कोरियाई भोजन के प्रति प्रायः ललक नहीं देखी। भारतीय विद्यार्थियों को भी जब–जब भारतीय लोगों के यहां भारतीय भोजन खाने का अवसर मिलता है वे बहुत ही प्रसन्न होते हैं। स्वयं मेरे घर में जितेन्द्र, संजय, रूपा आदि कुछ विद्यार्थी आते थे और प्रायः खुद ही पका कर भारतीय भोजन का आनन्द लेते भी थे और देते भी थे। जबकि कोरियाई लोग भारतीय भोजन पसन्द करते हैं। भारतीय भोजन–वैविध्य इसके लिए उत्तरदायी हो सकता है। मेरे प्रवास–काल में सोल में पाकिस्तानी समेत दो–तीन भोजनालय थे जहां भारतीय भोजन उपलब्ध था। पर थे वे मंहगे। पता चला है कि अब उनकी संख्या 10–12 हो गयी है।

भाषा–भेद भी भारतीयों के लिए कोरिया में एक व्यवधान का काम करती है। कोरिया में अंग्रेजी का प्रचलन बहुत कम है। उन्हें कोरियाई भाषा में ही बात करना सुगम लगता है।

राह चलते संवाद कोरियाई में ही संभव है। बड़े शहर तक में। वस्तुतः कोरियाई जापानियों की ही तरह राष्ट्रवादी हैं। अपनी संस्कृति और भाषा से वे ज़िद की हद तक प्यार करते हैं। विदेशी सामान तक पर वे कोरियाई में विवरण देने से नहीं चूकते। शिक्षा का माध्यम भी वहां कोरियाई है चाहे वह विज्ञान की ही शिक्षा क्यों न हो। इसलिए कोरियाई सीखे बिना भारतीयों के लिए वहां शिक्षा प्राप्त करना संभव नहीं। इधर सुना है कि भाषा का आग्रह कुछ कम हुआ है। अंग्रेजी को महत्त्व मिला है, अतः कोरियाई भाषा न आने पर भी भारतीय विद्यार्थियों को वहां के विश्वविद्यालयों में प्रवेश मिला है। जे॰एन॰यू॰ से गए छात्र जितेन्द्र ने तो शोधग्रंथ भी अंग्रेजी में लिखा है। कोरिया में बच्चों की शिक्षा के लिए कुछ विदेशी स्कूल अवश्य हैं जहां अंग्रेजी माध्यम से शिक्षा का प्रबन्ध है। ऐसे स्कूल मंहगे हैं। इतना अवश्य है कि कामचलाऊ कोरियाई सीख लेने पर संवाद करने में बहुत मज़ा आता है क्योंकि वहां के लोग बतियाने में खासी दिलचस्पी लेते हैं, खासकर कस्बों में। मसलन चूसयो ओर टसियो सीख लेने मात्र से कम से कम दीजिए और लीजिए कहना तो आ ही जाता है। कुछ काम देह–भाषा में चल जाता है।

जहां तक भारतीयों के द्वारा भारतीय धर्म–स्थलों और संस्थानों का सवाल है, वहां इंग्लैंड, अमरीका आदि की तरह भारतीय मंदिर नहीं हैं। कोरियाइयों के बौद्ध मंदिरों को ही मंदिर माना जा सकता है। भारतीय ईसाइयों और मुसलमानों के लिए अवश्य गिरिजाघर और मस्जिद उपलब्ध हैं। हाँ, कुछ दक्षिण भारतीयों के द्वारा विशेष रूप से सांई बाबा का मंदिर घर में ही स्थपित किया गया है। मेरे समय में सांई बाबा केन्द्र पेशे से इंजीनियर श्री शंकर पलानजेरी के घर से संचालित था। बहुत से भारतीय कीर्तन आदि आयोजनों में सम्मिलित होते थे। प्रसाद में स्वादिष्ट दक्षिण भारतीय भोजन का आनन्द प्राप्त होता था। शायद प्रवासियों के लिए भारत का कुछ भी आकर्षित करने में सक्षम होता है क्योंकि वहां अपनेपन की पहचान या कम से कम झलक तो मिलती है। इसके अतिरिक्त कमला जी के द्वारा संचालित ब्रह्मकुमारी केन्द्र भी सोल में था। इसमें कोरियाई लोग भी सक्रिय भाग लेते हैं। उक्त दोनों ही केन्द्र समय–समय पर बड़े आयोजन भी करते हैं। ऐसे आयोजन अल्प समय के लिए औपचारिक ढंग से ही सही लेकिन भारतीयों को एक साथ मिलने का अवसर अवश्य प्रदान करते हैं। अपनी संस्कृति की सशक्त और उदार दार्शनिक देन के कारण कोरिया में प्रवासी भारतीयों को पूजा स्थलों के अभाव से परेशान होते प्रायः नहीं देखा। इसकी पूर्ति घरों और मन में ही जो हो सकती है। बौद्ध मंदिरों की बहुतायत से निर्मित धार्मिक वातावरण भी कदाचित अभाव की पूर्ति में सहायक सिद्ध होता होगा।

जैसा कि हर समाज में सहज है, कोरिया में भी अच्छे–बुरे, उदार–स्वार्थी, सहयोगी–बाधक, सब तरह के लोग मिलते हैं। कुछ भारतीयों को कुछ कोरियाइयों को लेकर कटु अनुभव भी हुए हैं। यह सत्य है कि कोरियाई लोग अपने और अपने लोगों में ही ज्यादा मस्त रहते हैं। उनके ही विश्वास पात्र रहते हैं। मित्र या सहयोगी हो जाने पर भी औरों को वे अपना राज़दार प्रायः नहीं बनाते। एक सीमा तक ही घुलते–मिलते हैं। अन्ततः अपनों की ही

सुनते और मानते हैं। बात ग़लत हो चाहे सही। एक अपवाद मैंने प्रोफेसर ली जंग हो को भी पाया। पर ऐसों की भी बहुमत के सामने चल कितनी सकती है। ऐसा भी प्रतीत होता है कि कुछ संपन्न और पढ़े–लिखे कोरियाई लोग भारतीयों को आर्थिक दृष्टि से पिछड़ा मानते हुए दयनीय भी मानते हैं। फिर भी भारतीयों के प्रति कोरियाई लोगों का व्यवहार प्रायः भला ही होता है। प्रवासी भारतीयों के लिए ही नहीं बल्कि आने–जाने वाले भारतीयों के लिए भी श्रीमती किम यांग शिक एक अपना–सा नाम है। वे विदुषी और भारत–प्रेमी हैं। अनेक भारतीय विद्यार्थी तो उनसे मां का सा स्नेह प्राप्त कर चुके हैं। बौद्ध मंदिरों में भी भारतीयों को वहां के लागों में अपने प्रति आत्मीय भाव मिलता है। किम सुरो के स्थल किमहे में तो मैंने स्वयं एक कोरियाई विद्यार्थी को यह कहते पाया कि हम भारतीय उसकी दादी के देश से हैं।

तीज–त्योहारों के मनाने की दृष्टि से भी कोरिया में भारतीय प्रवासी वंचित ही कहा जाएगा। भारतीय दूतावास और उससे जुड़े लोगों की मदद से दीवाली और होली जैसे त्योहारों को सम्मिलित रूप से मनाने का प्रयास अवश्य होता है। कोरिया को यदि त्योहारों–उत्सवों का देश कहा जाए तो अतिश्योक्ति नहीं होगी। लेकिन प्रवासी भारतीयों का उनके उत्सवों आदि में घने ढंग से सम्मिलित होते देखने का अनुभव मेरा नहीं है। हालांकि अपनी निजी रुचि, जिज्ञासा और अपने कुछ खास विद्यार्थियों के सहयोग के कारण मुझे निजी तौर पर उनके उत्सवों, विवाह–समारोह आदि में भाग लेने के अच्छे मौके मिले हैं। मेरे विद्यार्थियों द्वारा निभाई गई दुभाषियों की भूमिका ने ऐसे अवसरों को आनन्दमय बना दिया।

मेरा अनुभव और अनुमान है कि तमाम प्रवासी भारतीयों के एकत्रित होने की स्थितियां कोरिया में न के बराबर हैं। वे अपने–अपने ग्रुप्स में ही मिलकर प्रायः संतुष्ट हो लेते हैं। लगता है वे अपने काम से काम ज्यादा रखते हैं। कदाचित धनोपार्जन ही उनका मुख्य लक्ष्य है। वहां की नागरिकता लेकर वहां सहर्ष बसने वालों की संख्या बहुत कम है। कोरियाई लोगों से विवाह करने वालों की सख्यां भी न के बराबर है। हो सकता है कि उधर कुछ बदलाव आया हो लेकिन आशा बहुत नहीं है। वस्तुतः कोरिया में नागरिकता और प्रवेश संबंधी नियम–कानून काफी कठोर हैं। ऐसे में प्रवासी भारतीयों के लिए यह भुला पाना कि वे एक विदेशी और परायी भूमि पर हैं, कठिन होता है। उनका दृष्टिकोण व्यावसायिक अधिक हो गया है। ऐसे में भावना पीछे रह जाती है। अतः एक दूसरे से जोड़ने वाले आत्मीय भाव को अवसर ही नहीं मिल पाता। मुझे निजी रूप से दूतावास से जुड़े अधिकांश व्यक्तियों का जो स्नेह और आत्मीय भाव मिला उसे मैं अपवाद ही मानता हूँ। कुल मिलाकर प्रवासी भारतीय, कोरिया की सुदृढ़ अर्थव्यवस्था के चलते, अच्छा खासा कमा लेते हैं। वैध रूप से रह रहे लोगों का जीवन यापन स्तर बहुत ऊंचा है। खासकर सुविधाओं की दृष्टि से। इधर अनेक कोरियाई कम्पनियों के भारत आगमन से एक नया अध्याय जुड़ा है। प्रवासी भारतीयों की संख्या और स्तर पर इससे सहज प्रभाव पड़ेगा ही।

□□□

नार्वे में भाषा और संस्कृति में प्रवासी भारतीयों का योगदान

● सुरेशचन्द्र शुक्ल 'शरद आलोक'

नार्वे को विश्वविख्यात नोबेल पुरस्कार तथा आधी रात में चमकने वाले सूरज के वेश के रूप में ही प्रायः पहचाना जाता है। मगर ध्रुवांत पर स्थित इस देश में भी भारतवंशियों की संख्या नगाय नहीं है। लेखक ने उस देश में भारत को संपूर्णता से देखने की कोशिश प्रस्तुत आलेख में की है।

नार्वे में प्रवासीय भारतीयों के भाषा और संस्कृति के योगदान के बारे में चर्चा के पूर्व नार्वे के बारे में थोड़ा जान लें जहाँ पर ये प्रवासी रह रहे हैं।

मध्य रात्रि का सूरज वाला देश

नार्वे विश्व के उत्तरोत्तर में बसने वाला उत्तरी ध्रुव के समीप बसा सुन्दर छोटा–सा देश है। इसके उत्तरी भाग के मध्य से होकर जहाँ–जहाँ उत्तरी ध्रुवीय रेखा जाती है इन स्थानों पर जून–जुलाई के महीने में आधी रात को भी सूरज निकला रहता है अर्थात सूरज नहीं डूबता। इसीलिए नार्वे को मध्य रात्रि का सूरज वाला देश कहा जाता है। स्वीडेन, फिनलैण्ड, रूस से लगी इसकी सीमायें हैं। नार्वे का दक्षिणी, उत्तरी और पश्चिमी भाग समुद्र से घिरा हुआ है। पहाड़ियों, घाटियों और सैकड़ों झीलों और लघुनदियों से धनी नार्वे का अधिकांश भाग जंगल है। 45 लाख की आबादी वाला देश नार्वे विश्व के पाँच देशों में स्थान रखता है जिनका विश्व में रहन–सहन का स्तर उच्चतर है। नार्वे में दो नार्वेजीय भाषायें बुकमोल और नीनाश्क हैं। इसके अतिरिक्त उत्तर नार्वे में सामी लोग जिन्हें लैप भी कहते हैं या जिन्हें यहां के आदिवासी भी कह सकते हैं, जिनके पूर्वज बहुत पहले भारत से आये थे

और विश्व के उत्तरोत्तर भाग में बस गये थे। इन सामी लोगों की भाषा सामी को भी तीसरी नार्वेजीय भाषा के रूप में स्वीकृत किया गया है।

नार्वे का राजनैतिक महत्व

उत्तरोत्तर में बसे होने के कारण नार्वे का राजनैतिक महत्व बहुत बढ़ जाता है। अमरीका–पक्षीय देश नार्वे के पास संयुक्त राष्ट्रसंघ के अनेकों महत्वपूर्ण पद हैं। नार्वे की भूतपूर्व प्रधानमंत्री ग्रू हालेम ब्रुतलान्द आजकल विश्व स्वास्थ्य संगठन की अध्यक्षा हैं। नार्वे संयुक्त राष्ट्रसंघ की सुरक्षा परिषद और रेडक्रास का अध्यक्ष भी है।

विश्वशान्ति स्थापित करने में योगदान देने वाली संस्थाओं और व्यक्तियों को शान्ति नोबेल पुरस्कार नार्वे से ही दिया जाता है। यह पुरस्कार 10 दिसम्बर को अलफ्रेड नोबेल की पुण्य तिथि पर दिया जाता है। शेष सभी नोबेल पुरस्कार स्वीडेन द्वारा दिये जाते हैं। इसकी सूचना भी भारतीय समाचारपत्रों में छपती रहती है।

भारत में नार्वे के बारे में कम जानकारी

आज से कुछ वर्ष पहले भारतीय समाचारपत्रों में सन् 1982 तक नार्वे के बारे में बहुत कम लिखा जाता था। भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम, विश्व शान्तिदूत महात्मा गाँधी और नेहरू–गाँधी परिवार के अतिरिक्त गुरुदेव रवीन्द्रनाथ टैगोर (तागोरे उच्चारण से) के बारे में नार्वेवासियों को बहुत जानकारी है। नार्वे में और ब्रिटेन में बसे देश डेनमार्क के बारे में तो भारतीय पुस्तकों में जानकारी मिलती थी। नार्वे और ब्रिटेन में राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी को शताब्दी पुरुष और सन् 1999-2000 का मीडिया पुरुष प्रधानमंत्री अटल बिहारी बाजपेयी को घोषित किया गया था।

नार्वे में भारत के बारे में जानकारी

जब भारतीय प्रधानमंत्री इन्दिरा गाँधी की नार्वे यात्रा तय हुई तब भारतीय पत्रकारों और दूरदर्शन–दल का नार्वे जाना हुआ था। उन्होंने भारत में नार्वे के बारे में बहुत जानकारी दी थी। भारत–नार्वे के सांस्कृतिक सम्बन्ध मजबूत हैं और भारत–नार्वे के मध्य सांस्कृतिक सन्धि भी हुई है परन्तु हमारे राजनयिकों और नार्वे के अधिकारियों को इसका ज्ञान बहुत कम है और ज्यादा ध्यान नहीं दिया जाता।

अर्थशास्त्री अमर्त्य सेन को अर्थशास्त्र में और वी एस नायपॉल को साहित्य में नोबेल पुरस्कार मिलने के अलावा कम्प्यूटर विज्ञान में उपलब्धियों से भारतीयों की प्रतिष्ठा बढ़ी है।

नार्वे में भारतीयों की स्थिति

नार्वे में रहने वाले लगभग छः हजार भारतीयों में अधिकांश संख्या में भारतीय सेमी स्किल्ड हैं। नार्वे में भारतीय उच्चशिक्षा प्राप्त भी हैं। जिन्होंने भारत से उच्च शिक्षा प्राप्त की है उनका यहाँ सही मूल्यांकन नहीं किया जाता। स्वास्थ्य क्षेत्र में अनेक भारतीय नर्स,

फीसियोथेरापिस्ट, चिकित्सक आदि भी हैं। कुछ भारतीय कम्प्यूटर साइंस मे कार्यरत हैं। कुछ इंजीनियर हैं, मैकेनिक हैं तो कुछ ने स्वारोजगार स्थापित किये हैं।

नार्वे में हिन्दी–पंजाबी स्कूल

नार्वे में रहने वाले भारतीयों में अधिकांश भारतीय पंजाब प्रान्त से हैं। इसके अलावा भारतीय उत्तर प्रदेश, गुजरात, बंगाल, दिल्ली और अन्य प्रदेशों से भी हैं। सभी लोग जब आपस में मिलते हैं तो प्रायः हिन्दी–पंजाबी में ही बातचीत करना पसन्द करते हैं। यहाँ से कोई भी पत्रिका पंजाबी में नहीं प्रकाशित होती। कितनी अच्छी बात है कि कुछ पंजाबी भाषी नार्वेजीय स्कूलों में हिन्दी के सहयोगी अध्यापक हैं।

स्कूलों के अतिरिक्त ओस्लो नगर मे कई जगह हिन्दी शिक्षा बच्चों को प्रदान की जाती है, जिसमें क्रान्ति कुमार एवं उषा जैन के साथ सुरेशचन्द्र शुक्ल, मीना ग्रोवर भी अविभावकों के सहयोग से बच्चों के लिए हिन्दी की कक्षायें चलाते हैं। यहाँ बहुत अच्छी तरह से पंजाबी स्कूल भी चल रहा है जिसमें सभी अध्यापक निःशुल्क पंजाबी पढ़ाते हैं इसका नेतृत्व बलविन्दर कौर एवम अवतार सिंह परागपुरी बहुत कुशलता से कर रहे हैं जिसमें सैकड़ों बच्चे पढ़ने आते हैं।

ओस्लो विश्वविद्यालय में हिन्दी–पंजाबी पढ़ने वालों को अंगुलियों पर भी नहीं गिना जा सकता इतना अभाव है पढ़ने वालों का। इन निजी पंजाबी और हिन्दी स्कूल में पढ़ाने वालों और पढ़ने वालों का उत्साह देखकर नार्वे में इन भाषाओं का भविष्य उज्ज्वल लगता है। इनकी सफलता का एक राज इनका किसी धार्मिक और प्रवासीय संस्थाओं से जुड़ा न होना भी है, ये अपने आप में ही सांस्कृतिक संस्थायें हैं। इनकी जितनी प्रशंसा की जाये कम है।

ओस्लो में भारतीय सांस्कृतिक गतिविधियाँ

नार्वे में प्रवासियों और नार्वेजीयों द्वारा योग और भारतीय संगीत की शिक्षा निजी संस्थाओं द्वारा दी जाती है। संगीत की शिक्षा देने वालों में सिंह बंसल, लाल, दिव्या जैन, नार्वेजीय संगीत का ग्रुप जो केवल भारतीय संगीत बजाता है वह यहाँ "पूर्वा एक्सप्रेस" के नाम से प्रसिद्ध है। लाल और उनके बेटे जय शंकर, उदय शंकर और बेटी रोहिणी अच्छे संगीतकार हैं। सिंह बंसल की दो बेटियाँ भी उच्चस्तर की संगीतकार हैं। डॉ॰ राजेन्द्र प्रसाद शुक्ल बांसुरी वादक हैं परन्तु पेशे से चिकित्सक हैं और शौकिया संगीत सिखा देते हैं। उनके पुत्र भारत भी बांसुरी बजाते हैं। भारत शुक्ल एक बहुत अच्छे तैराक भी हैं जिन्होंने दो वर्ष पूर्व 17 वर्ष की आयु में तैर कर इंगलिश चैनल पार किया और अनेक कीर्तिमान स्थापित किये।

शिखा चंद्रा और उनकी बेटी अच्छी नर्तकी हैं तथा नृत्य सिखाती हैं। सुरजीत सिंह सोशल वर्कर हैं। उनकी पत्नी जगदीश कौर अध्यापिका तथा बेटी लवलीन कौर एक अच्छी रंगमंच की कलाकार और नर्तकी हैं तथा नृत्य भी सिखाती हैं। कलाकारों में सोफिया कौशल नार्वे में थिएटर से शिक्षा प्राप्त रंगमंच और टीवी की कलाकार हैं। आपने अनेक फिल्मों में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। नीरू अग्रवाल और शंकर भी मंच के कलाकार हैं।

नार्वे में भारतीय मूल के लेखक

नार्वे में थ्रून फ्येल नामक स्थान पर एक पश्चिम बंगाल के विद्वान् बाराल लगभग 60-70 वर्ष पहले बस गये थे जो योग और ज्योतिष के बहुत अच्छे जानकार भी थे। उन्होंने बहुतों का ध्यान अपनी ओर आकर्षित किया। एक नार्वेजीय युवती से विवाह किया। स्व. बाराल जी की पुत्री व स्थानीय प्रशासन ने उनके नाम से एक म्यूजियम की स्थापना की है। उनकी अनेक पुस्तकें भी नार्वेजीय भाषा में छपी हैं।

अनेक भाषा के विद्वान डा. अमलेन्दु गुहा प्रसिद्ध अर्थशास्त्री हैं। आपने अनेकों महत्वपूर्ण पुस्तकें अंग्रेजी भाषा में लिखी हैं जिनमें अर्थशास्त्र के अतिरिक्त नेताजी सुभाषचन्द्र बोस, नार्वे पर तथा महात्मा गाँधी जी पर पुस्तकें महत्वपूर्ण हैं।

सुरेशचन्द्र शुक्ल "शरद आलोक" स्वयं लेखक हैं जिनके सात काव्य संग्रह हिन्दी में, एक नार्वेजीय भाषा में "फेम्मेदे फ्यूगलेर" (अनजान पंछी), एक कहानी–संग्रह उर्दू में "तारूफी ख़त" और एक कहानी–संग्रह हिन्दी में "अर्धरात्रि का सूरज" प्रकाशित हो चुके हैं। नार्वे से प्रकाशित एक मात्र सांस्कृतिक पत्रिका "स्पाइल–दर्पण" के सम्पादक हैं जो नार्वे की प्रथम पत्रिका "परिचय" (हिन्दी) के सन् 1980 से 1985 तक सम्पादक रह चुके हैं जिन्हें नार्वेजीय लेखक यूनियन ने 12 जून को पचास हजार नार्वेजीय क्रोनर जो ढाई लाख रुपये के बराबर हैं, से पुरस्कृत किया था। इनके काव्य संग्रह "रजनी" और "नीड़ में फंसे पंख" चर्चित रहे।

स्व. हरचरण चावला के दो कहानी–संग्रह, संस्मरणों की पुस्तकें उर्दू, हिन्दी और पंजाबी में छप चुकी हैं। आपने नार्वेजीय बुक क्लब के लिए एक महत्वपूर्ण भारतीय कहानियों की पुस्तक "इंडिया फोरथल्लेर" का सम्पादन किया था जिसका अनुवाद बुकक्लब के अनुवादकों ने किया था। यह बहुत महत्वपूर्ण कार्य था।

डॉ॰ राजेन्द्र प्रसाद शुक्ल को बचपन में कविताएं और कहानियां लिखने का शौक था। आपके विश्व साइकिल यात्रा के संस्मरणों की दो पुस्तकें हिन्दी में छप चुकी हैं।

स्व. पूर्णिमा चावला ने नार्वेजीय कहानियों का अनुवाद किया था जो 'नार्वे की श्रेष्ठ कहानियाँ' शीर्षक से छपा था। मरणोपरान्त उनका काव्य संग्रह "कभी–कभी लगता है" प्रकाशित हुआ था।

शाहेदा बेगम का एक कहानी संग्रह "शहर बुता" प्रकाशित हो चुका है।

अन्य अनेक लोग हिन्दी, पंजाबी, मराठी में शौक से कभी–कभी लिखते हैं उनमें डा. मीना ग्रोवर, माया भारती, नरेश आहूजा, सुजाता प्रभू, राज पाठक, अलका भटनागर, बलविन्दर कौर, सोनी गोरखपुरी, जोशी, नीता कपूर [illegible]य भटटी, इन्दरजीत पाल आदि का नाम लिया जा सकता है।

□□□

हॉलेण्ड में प्रवासी भारतीयों का योगदान

● डॉ॰ मोहन कां. गौतम

"आज प्रवासी भारतीयों की आस्मिता को संतोष रखने की प्रक्रिया की आधी सदी गुजर चुकी है। इस अवधि में सबसे महत्वपूर्ण योगदान उनकी अस्मिता की सुरक्षा ही बनी रही है। जो कार्य सूरीनाम में इनके 'आजा–आजी' नहीं कर पाए उसे प्रवासी भारतीयों ने हॉलेंड में कर दिखाया है। उन्होंने भारत की धर्मभूमि और सूरीनाम की आजा–आजी की मातृभूमि के बीच में एक हनुमान–सेतु बना डाला है।"

किसी भी वर्ग के विकास में इतिहास से लगी सभी स्थितियों का योग होता है चाहे वे सामाजिक–सांस्कृतिक हों या आर्थिक राजनीतिक और या धार्मिक–मानवीय। आज 21वीं सदी के योरोप में जो एक बहु सांस्कृतिक, बहु धार्मिक और बहु भाषी समाज की स्पष्ट इकाई है, प्रवासी भारतीयों के योगदान में महत्वपूर्ण बन गया है। आज इंग्लैंड के बाद हॉलेण्ड भारतीय प्रवासियों का दूसरा देश बन गया है। यहाँ प्रवासी भारतीयों की जन संख्या 180000 से अधिक है। वैसे भारतवंशी यहां दो लाख से अधिक हैं। भारतीयों की जनसंख्या कोई 15000 है। इसके अतिरिक्त हॉलेण्ड में प्रवासी भारतीय युगंडा, कीनिया, श्रीलंका, बंगलादेश और नेपाल से भी है।

इस आलेख में सूरीनाम के हिन्दुस्तानी (प्रवासी भारतीय) समाज पर हम बात करेंगे और उनके उन मुद्दों पर विचार करेंगे जिनसे उन्होंने अपनी भारतीय अस्मिता को सुरक्षित बनाये रखा है। हॉलेण्ड में प्रवासी भारतीयों का आगमन 20वीं सदी के पांचवे दशक में हुआ था। तब यहाँ लोग सूरीनाम से अध्ययन शिक्षण और व्यापार के लिए आते थे। अधिकतर लोग पढ़ाई के बाद सूरीनाम लौट जाते थे। बहुत ही कम तादाद में लोग यहाँ नौकरी लेकर

बस जाते थे। आज प्रवासी भारतीयों की अस्मिता को संजोये रखने की प्रक्रिया की अर्ध सदी गुजर चुकी है। इस अवधि में सबसे महत्वपूर्ण योगदान उनकी अस्मिता की सुरक्षा ही बनी रही है। जो काम सूरीनाम में इनके आजा–आजी नहीं कर पाये उसे प्रवासी भारतीयों ने हॉलेण्ड में कर दिखाया है। उन्होंने भारत की धर्मभूमि और सूरीनाम की मातृभूमि के बीच में एक हनुमान सेतु बना डाला है। इसको समझने के लिये हमें डच लोगों की मानसिकता को भी समझना होगा, जिन्होंने प्रवासी भारतीयों को केवल घर ही नहीं दिया अपितु उन्हें समृद्ध होने के लिए पूरा अधिकार भी दिया है। यही कारण था कि डच उपनिवेश सरकार ने प्रवासी भारतीयों को सूरीनाम में एक छोटा भारत बनाने का पूरा अवसर दिया था। तब से ही इन हिन्दुस्तानियों के आदर्श "अपन लोग", "अपन मुल्क", "अपन संस्कृति", "अपन भाषा" और "अपन धर्म" जीवित साकार हो गये हैं। बिना इनके उनका जीवन बेकार था। यही आदर्श उनके मूल्यों और मान्यताओं के प्रतिबिंब बने और नई पीढ़ियों को भारतीय आात्मीयता की चादर पहनाने लगे।

पांचवें और छठे दशक में सूरीनामी हिन्दुस्तानी हॉलेण्ड में बहुत कम थे। द हैग में इन्होंने मन्नान (मनन) नामक एक सांस्कृतिक संस्था की स्थापना की। इसका उद्देश्य था कि पूर्वजों की धरोहर–संस्कृति को संभाल कर सुरक्षित रखा जाये। साथ ही आजा–आजी की दर्द भरी गाथाओं को सुनकर एक नये सूरीनामी भारत वंशी साहित्य और इतिहास का सृजन किया जाये। और ऐसा हुआ भी। भारतीय सभ्यता और सूरीनामी देश भक्ति से प्रेरित होकर सभाएं लगाई जाने लगीं। भाषण, गीत, भजन, और कविता पाठों से प्रवासी भारतीयों का जागरण हुआ। इस संस्था के सदस्य ही भविष्य में सूरीनाम में राजनीतिक नेता बने। तभी 1960–61 में मेरी मुलाकात श्री बिहारी, श्री ननन पांडेय, श्री लछमन और उनके भाई श्री निवासी, डॉ॰ ज्ञान अधीन, डॉ॰ सुकुल (कोलेश्वर), श्री जुगलाल, श्री बिस्वामित्र, श्री राम किशोर, श्री परमेश्वर आदि से हुई। डॉ॰ ज्ञान अधीन ने खोनिंगन विश्वविद्यालय से डाक्टरेट ली और बनारस जाकर हिन्दी सीखी और एक छोटा हिन्दी–डच शब्द कोश भी लिख डाला। क्योंकि प्रवासी भारतीय उत्तर भारत (यू.पी. और बिहार) से थे, हिन्दी भाषा एक ऐसी साधन बनी जिससे साहित्य, इतिहास और भारतीय दर्शन को समझने में आसानी हुई। छठे दशक में श्री ब्रजलाल कालपू ने अपनी जेब से पैसे लगाकर पहला हिन्दी के गीतों का रिकार्ड बनवाया। श्री कालपू सी.एच. आत्मा के गीतों को गाते भी थे और उनकी आवाज़ आत्मा जी से काफी मिलती थी। डॉ॰ गौतम ने भी तब एक संगीत मंडली बना ली थी। श्री बिहारी की ढोलक पर उन्होंने प्रवासी भारतीयों की सांस्कृतिक वेदना को राष्ट्रीय रेडियो तक पहुंचाया। धीरे–धीरे अब हिन्दी गूंज उठी। जगह–जगह पर हवन, यज्ञ, पूजा, उत्सव कथाऐं संगीत, भजन आदि में हिन्दी को जीवित रखने का अभियान चल पड़ा। रोटरडम और लायडन के संग्रहालयों ने भी अपने अपने कक्षों में भारतवंशियों की सभ्यता, संस्कृति और रीति–रिवाजों से जुड़े त्योहारों पर प्रदर्शनियां कीं। पूजा स्थान बना डाले जहाँ प्रवासी भारतवंशी घंटों

बैठकर मनन किया करते थे। जब 1963 में प्रवासी भारतवंशियों ने सूरीनाम आगमन के 50 वर्ष का समारोह मनाया तब उसमें भारत से आये भारतीय भी शामिल हुए। किंतु छठे दशक के अन्त में किसी अनजाने कारणवश मन्नान संस्था समाप्त हो गई। लेकिन इससे प्रवासी भारतीयों की उमंगों पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। पूरे देश में सांस्कृतिक कार्यक्रमों का सिलसिला बना ही रहा।

भारत से आये हुए भारतीय यहाँ तब बहुत कम थे। इन्सटिट्यूट ऑफ सोशियल स्टडीज में कुछ विद्यार्थी भारतीय थे जो भारतीय दूतावास के साथ मिलकर सांस्कृतिक कार्यक्रम मनाया करते थे जैसे 26 जनवरी और 15 अगस्त को वैसे 5वें दशक में भारतीय दूतावास के सचिव श्री चौधरी ने "नीदरलैण्ड्स–इंडिया–ऐसोसियेशन" के निर्माण में बहुत सहायता की थी जिसमें भारत और हॉलैण्ड की मित्रता पर जोर डाला जाता था। प्रोफेसर शेबोट, प्रोफेसर लांडहीअर, श्री स्क्यूरमान इसके कर्ताधर्ता थे। मैं भी 1960 में इसका सदस्य बन गया था और प्रवासी भारतीयों को लाकर सांस्कृतिक कार्यक्रम करवाता था। अभाग्यवश इस संस्था ने प्रवासी भारतीयों के साथ मिलकर कोई खास काम नहीं किया। छटे दशक तक प्रवासी भारतीय और भारत के भारतीयों की भारतीय संगीत में रुचि तो थी पर केवल फिल्मी गानों की। "विविध भारती" और "सीलोन" रेडियो को न सुनने से भारतीयों में तो उदासी रहती थी। कहा जाता है कि पं० रविशंकर हॉलेंड में केवल 30 गिल्डर पर ही आये थे। उनके बाद ही छठे दशक में भारतीय शास्त्रीय संगीत और शास्त्रीय चित्रकला का परिचय हुआ था। हाँ, एक बात जरूर थी कि हारमोनियम, ढोलक और दंडताल प्रवासी भारतीयों के वाद्य वृंद बन गये थे। एक बड़ा काम भारतीय प्रवासियों का था कि उन्होंने हॉलेण्ड में "वेस्ट इंडियन फिल्म संस्था" खोलकर हर रविवार को भारतीय फिल्म दिखाकर प्रवासी भारतीय और भारतीयों को भारत के निकट ला दिया। भारतीय दूतावास ने एक बार "देवदास" फिल्म मंगवाई थी जो हॉलेण्ड में करीब 6 महीने तक पूरे देश में चलती रही।

प्रवासी भारतीयों की भाग–दौड़

अभी तक जो प्रवासी भारतीय हॉलेण्ड आता था, विद्या अध्ययन के बाद या तो सूरीनाम लौट जाता था या हॉलेण्ड में काम के शिक्षण के लिये बस जाता था। सातवें दशक की दर्दीली घटनाओं रोज–रोज गयाना में होने से भारतीय बैचेन हो उठे थे। डॉ० छेदी जगन को अलग कर बर्नहम प्रधानमंत्री बने। भारतीयों को सबक देने के लिये उन्होंने देश में सेना में अनिवार्य भर्ती शुरू करवा दी। भारतीय लड़कियों की जबरदस्ती भर्ती हुई। नतीजा हुआ कि प्रवासी भारतीयों की इज्जत लूटी गई। इसका प्रभाव गयाना के प्रांत बर्बीस से लगे सूरीनाम के निकेटी जिले पर भी हुआ। सूरीनाम की क्रियोल सरकार ने ऐलान कर दिया कि वह सूरीनाम को शीघ्र ही स्वतंत्रता दिलवायेगी। प्रवासी भारतीयों के नेता श्री लछमन की वी. एच.पी. (संघर्षशील सुधारवादी पार्टी जिसका पहले नाम वतन हितकारी पार्टी था) की मुठभेड क्रियोलों के दल से हुई तो पूरे देश में अफवाहें फैलने लगी कि सूरीनाम की स्वतंत्रता के बाद

भारतीयों के साथ न्याय नहीं होगा। दोनों दलों के अनुयाइयों में अविश्वास की खाइयां खुद गईं। नौबत आ पहुँची कि सूरीनाम में देशव्यापी दंगे, आगजनी और आतंक की हिंसक घटनायें दिन–दहाड़े होने लगीं। लोगों में ईर्ष्या, आक्रोश और घृणा फैल गई। भारतीयों में एक अनजाना डर समा गया और गुयाना की हाल ही में गुजरी कहानियां दुहराई जाने लगी। गुयाना से भी सैकड़ों प्रवासी भारतवंशी भाग कर सूरीनाम ही नहीं आये अपितु त्रिनिडाड, अमेरिका, कनाडा और इंग्लैण्ड भी जा पहुंचे। अभी तक जो सूरीनाम के भारतवंशी चैन से सोते थे वे डर कर हॉलेण्ड भागने लगे। उनके विचार में हॉलेण्ड ही ऐसा देश था जिसकी महारानी जुलियाना और सरकार उनकी रक्षा की उत्तरदायी थी।

हॉलेण्ड सरकार ने सूरीनाम की स्वतंत्रता के मुद्दे पर एक "राउंड टेबिल" का आयोजन किया। सभी दलों के लोगों को बुलाया गया। हिन्दुस्तानियों के नेता श्री लक्ष्मण चाहते थे कि अभी सूरीनाम स्वतंत्रता के योग्य नहीं है कुछ वर्ष और चाहिये। पर क्रियोल नेता श्री आरोन अडिग रहे। हॉलेण्ड के समाजवादी प्रधानमंत्री श्री दन आउल की सरकार सूरीनाम की समाजवादी क्रियोल सरकार से मिल गई। दूसरे भारतीय नेता श्री हिंडोरी को फुसला कर और सब्ज बाग दिखाकर अलग कर लिया और जैसे ही वह श्री आरोन के साथ हुए, सूरीनाम की स्वतंत्रता घोषित कर दी गई। सन् 1975 में 25 नवम्बर को, सूरीनाम की स्वतंत्रता के दिन तक कोई 34000 सूरीनामी आप्रवासी हॉलेण्ड आ गये जिनमें कोई 70 प्रतिशत हिन्दुस्तानी थे। बाद में भी इन आये हुए सूरीनाम हिन्दुस्तानियों के बच्चे, माता–पिता, भाई–बहिन, मित्र और रिश्तेदार आते रहे। शायद इस भाग–दौड़ की तुलना एक छोटे रूप में भारत–पाकिस्तान के बंटवारे से की जा सकती है। प्रवासी भारतीय जो सूरीनाम में धनी थे, एक ही दिन में हॉलेण्ड में गरीब बन गये। आजा–आजी के सपनों पर कुहासा छा गया। बने बनाये घर, ज़मीन, व्यवसाय सब कुछ अतीत बन गया।

डच सरकार को इस तरह की समस्या का अनुभव इन्डोनेशिया के साथ हो चुका था जब 5वें दशक में कोई 500000 आप्रवासी वहाँ से हॉलेण्ड आये थे और वे शीघ्र ही डच समुदाय के अंग बन गये थे। डच सरकार ने सोच–विचार कर सूरीनाम उपनिवेश से आये हुए राष्ट्रीय नागरिकों को बसाने के लिये 1970 से ही केन्द्र स्थापित कर दिये थे। पर जब 1973 के बाद आप्रवासियों की जन संख्या बढ़ने लगी तो समस्याओं ने एक नया रूप अपनाया और 1974 में डच सरकार ने इस केन्द्र को समाज कल्याण मंत्रालय के अन्तर्गत करके सूरीनामियों की समस्या पर विशेष ध्यान देना शुरू कर दिया। तब श्री ब्रेडल इसके निदेशक बने और सरकारी योजनानुसार आप्रवासियों की देखभाल के लिये "अतिथि" केन्द्रों की स्थापना की। श्री बी. खरगी जो बेकानूनी 'वीरोनिका' रेडियो के द्वारा भारतीय आप्रवासियों को हॉलेण्ड की सूचना देते थे, समाज कल्याण मंत्रालय ने उन्हें प्रवासियों की समस्याओं को सुलझाने के लिये नियुक्त किया। मकान का प्रबंध, नौकरी की खोज, काम, बच्चों की शिक्षा, भाषा–समस्या, जलवायु की समस्या, खान–पान की समस्या आदि शिकायतें अब श्री खरगी

और श्री ब्रेडल रोज सुनने लगे। मार्च 1976 में पूरे देश में कुल 95 'अतिथि' केन्द्रों की संख्या बढ़ गई। इन केन्द्रों में आप्रवासियों के रहने का प्रबंध किया गया। रोटी, कपड़ा और मकान के साथ नौकरी और बच्चों की शिक्षा का प्रबंध शीघ्रता से किया गया। प्रति व्यक्ति को 21 गिल्डर (75 रुपये) प्रति सप्ताह जेब खर्च के लिये भत्ता भी दिया। दिसम्बर 1976 में 'अतिथि' केन्द्रों की संख्या केवल 49 रह गई जिनमें 2211 सूरीनामी रह गये। पुनर्वास के लिये उन्हें मकान ही नहीं दिये गये बल्कि बेरोजगारी का भत्ता भी दिया गया जिससे कोई भी डच व्यक्ति भूखा नहीं रह सकता था। इतना सब होते हुए भी भारतीय प्रवासी खुश नहीं थे। सूरीनाम की तरोताज़ी स्मृतियां उन्हें बेचैन कर देती थी। सूरीनाम के प्रथम हिन्दी लेखक और कवि श्री मुंशी रहमान खान (1874–1972) जो स्वयं यू.पी. के जिले हम्मीरपुर से आये थे, उनके दोहे ने मरहम का काम तो किया पर जलन दूर नहीं हुई थी।

रहियो तुम जिस देश में पलियो नृप की नीति।
चलियो अपने धर्म पर सबसे करियो प्रीति।।

जैसे कि मुंशी जी ने कहा, आप्रवासियों ने हॉलेण्ड में आकर सरकारी नीति को माना जो उनकी सुरक्षा का कवच बना पर जिन धार्मिक और सांस्कृतिक मूल्यों की स्वतंत्रता हिन्दुस्तानियों को थी एकाएक कहीं लुप्त हो गई।

मुझे याद है द हेग में मेरी मुलाकात श्रीमती लालता से हुई जो तब कोई 70 वर्ष की थी। वह भी निकेरी से हॉलेण्ड आई थी। वह खुश भी थीं पर सूरीनाम छोड़ने का पछतावा उन्हें सताता था। पर आशा करती थी कि उन्हें कभी न कभी आजा–आजी के देश भारत की धरती को देखने का अवसर अवश्य मिलेगा। उन्हें आशा थी कि सूरीनाम में भी जब चुनाव होंगे तो भारतवंशियों की मिली–जुली सरकार बनेगी और देश में शान्ति होगी और फिर से अपने माता–पिता के गांव (परनासी) में जाकर जीवन व्यतीत करेंगी। पूछने पर उन्होंने बताया–"हमारे तीन लड़का रहा। हमार लड़का तो स्कूल गइली पर हम न गइली। हॉलेंद में एक लड़का है बाकी तो सूरीनाम में" और प्रसन्नता में उन्होंने लड़के का चित्र दिखाया। बोली, "ई देखो, ई रहा ऊ का छपवा (फोटो), मोई (सुन्दर) है न!"

फिर लम्बी सांस लेकर कहने लगी, "बेटा हम यहां का आयली–खरदी (खदेड़ी गई)। हम बोली ई कफरी (अफ्रीकीवंशी क्रियोल) लोग हियां बहुत हल्ला मचाये हैं तो चलो होलांद में, थोड़ा दिन रहिले फिर हम सूरीनाम चलजाव। हियां सब दिन थोड़ी रहिबे, फिन हियां काफी ठंडा है, वैसे मोई (सुन्दर) है।

इसी तरह एक बातचीत में श्री बुद्धराम जो कभी सूरीनाम के प्रसिद्ध ढोलकिए और गवैये थे, रोटरडम में उतावले होकर कहने लगे कि यदि कोई सुनने वाला मिले तो वह रामायण, कृष्ण–सुदामा, कृष्ण लीला, हनुमान चालीसा और प्रेमसागर की कथाऐं गाकर सुनाएं। 70 वर्ष की आयु में भी भारतीय संस्कृति से प्रेरित इस तरह के व्यक्ति भारत में भी नहीं मिलेगे। वह कहने लगे, "हमार बिटिया बुलावा मांगत रहा कि आवे, हम तब बीमार रहा।

हम तब अइली और ऐसे अभी रूकुल है। कब तलक ई ना जानत। यहां ठंड बड़ा गड़बड़ करल है। मन तो वहां (सूरीनाम) ले ली। यहां का फरकीयट (ट्रैफिक) बिलकुल गड़बड़ है। मन चाही अपन ले ली निबुआ–उबुआ, कोई चीज़ ले जाय के बेंच आई। पर यहाँ न बेंचे को, पर यहाँ तो बैठे जी ऊब जाय। एक दिन सोची तनिक घूम आई, तो हवा इतने जोर का रहा कि हमार टोपी–ओपी सब उड़ गइली। सब दिन भर बैठे रहिल, यही दुख है। सूरीनाम की याद सतावे करे।"

1969 में एक 22 वर्ष का नवयुवक श्री राजेन्द्र रामनाथ अवस्थी निकेरी से विद्या अध्ययन के लिये हॉलेण्ड आया था। अपने पिता श्री गणेश अवस्थी जो यू.पी. के हम्मीरपुर जिले से सूरीनाम गये थे उन्हीं के आदर्शों का भक्त था। रामायण का दोहा–

रघुकुल रीति सदा चल आई।
प्राण जाय पर वचन न जाई।।

उसके जीवन का आदर्श था। सूरीनाम में विद्या अध्ययन के साथ समाज सेवा से कभी वंचित नहीं हुआ। मेरी मुलाकात तभी उससे हुई थी। कैसे प्रवासी भारतीय संस्कृति की सुरक्षा की जाये–की चिन्ता में मन्नान के मित्रों से मिलकर सभायें करने लगा। नई संस्थाऐं खड़ी हुईं। ध्येय एक ही था कि कैसे पश्चिमीकरण से बचें और भारतीयकरण का अभियान सफल करें। तब सूरीमामी विद्यार्थियों में श्री शिव अलगू, श्री पलटन तिवारी, श्री रघुनाथ सिंह, श्री दौलत रामलाल, श्री कासी, श्री विजय गुरुदीन, श्री प्रेमचन्द, सभी ने इस ध्येय को पूरा करने में सहायता की। शायद सबसे बड़ा योग इन प्रवासी भारतीयों का अपनी अस्मिता की रक्षा था जिसे उनके आजा–आजी ने सूरीनाम में खून के आसुओं की परवाह न करके आगामी पीढ़ियों के लिये भारत से लाई धरोहर रूपी भारतीय अस्मिता को बनाये रखा था। सन् 1972 में कोई 10000 (ढन हाग में) आप्रवासी रह रहे थे। श्री रामनाथ जी ने डच सरकार से मिलकर प्रवासी भारतीयों के लिए उनके संगठन और विकास के लिए संस्थाओं के निर्माण में अनुदान की मांग की। मंत्रालय के श्री वानदोर्न ने सहायता भी दी। 'साबोस' संस्था के बाद 'स्ति ख़तिंग फान सूरीनामर्स' बनी दूसरी संस्था के पहले निदेशक श्री जोन बाबूराम एक सुयोग्य, वकालत पढ़े व्यक्ति थे जिनका आठवें दशक में सूरीनामी सैनिक राजनीति ने शिक्षित गणमान्य लोगों के साथ कत्ल कर दिया था। क्रियोल सैनिक नेता श्री बाउटर्स ने प्रजातंत्र को मिटाकर अपने हाथ खून में रंग लिये थे। इनके बाद श्री दौलत रामलाल निदेशक बने जो बाद में द हेग नगरपालिका के कर्मठ व्यक्ति थे। बाद में सी.डी. ए. राजनीतिक दल से लोकसभा के भी सदस्य रहे। सन् 1976 में एक और संस्था की बातें चलीं। श्री रामनाथ, श्री रामलाल के साथ 'एकता' संस्था बनाना चाहते थे। लेकिन डच सरकार की कोई रुचि नहीं थी। मंत्रालय पर जब धरना दिया गया तो 1977 में 'एकता' संस्था गठित हुई। श्री विजय गुरुदीन उसके पहले निदेशक बने। श्री रामनाथ और श्री रामलाल ने मित्रों के साथ नई योजनाऐं प्रवासियों के विकास के लिये मंत्रालय को प्रस्तुत

की। समस्याओं पर नाटक बने और खेले गये। श्री गुरु दत्त कल्ला सिंह की सहायता से "धोबी का कुत्ता न घर का घाट का" खेला गया। श्री अब्दुल रजाक, श्री इशाक, श्री कतीराम (शांति संस्था के संस्थापक), श्रीमती प्रेम पोस्टयूमस, डॉ॰ भरोस, श्री मुनी प्र॰ कालयू सभी मैदान में उतर आये। समाज संरचना में नौकरी के साथ शिक्षा, पत्रिकाएं और रेडियो पर कार्यक्रम भी प्रसारित होने लगे। श्री रामनाथ के मित्रों ने स्त्रियों पर और बूढ़े लोगों पर भी योजनाएं बनाई। बाद में 1992 OHM (हिन्दू ब्रोड–कास्टिंग कोरपोरेशन) बना जिसके संस्थापकों में 3 संस्थाऐं थीं: "सनातन हिन्दू परिषद संस्था" (सभी सनातन संस्थाऐं), आर्य समाज संस्था "फास्टनेड" और "वर्ल्ड हिन्दू फैडरेशन" (हिंदी अनुवाद में विश्व हिन्दू परिषद)। सनातन हिन्दू परिषद ने तीन हिन्दू स्कूलों का भी निर्माण किया, श्री विष्णु स्कूल, द हेग श्री लक्ष्मी स्कूल, एमस्टरडम और श्री सरस्वती स्कूल, रोटरडम जहाँ हिन्दू ही नहीं सभी वर्गों के विद्यार्थियों को भारतीय सभ्यता, संस्कृति, इतिहास, हिन्दी भाषा के साथ डच स्कूलों का पाठ्यक्रम भी पढ़ाया जाता है। आज 1200 विद्यार्थी इन स्कूलों में विद्या–अध्ययन कर रहे हैं। विशेष बात यह है कि प्रवासी भारतीय बच्चे सफलता में शत प्रतिशत हैं। दुख इसी बात का है कि आज जब भारतवंशी एन.आर.आई. और पी.आई.ओ. के वर्ग में रखे गये हैं पर वे दोनों एक–दूसरे से अलग होते जा रहे हैं। एकता केवल काग़ज पर और भारतीय आदर्शों को दिखाने तक ही सीमित रह गई है। हालांकि प्रयत्न यही है कि प्रवासी और भारत के भारतवंशी मिलकर रहें। डॉ॰ गौतम इस एकता में वर्षों से लगे हैं। आज भारतीय अस्मिता का सांस्कृतिक बोधिवृक्ष, कल्पवृक्ष बन गया है जो लोक कल्याण में व्यस्त है। सेवा और भक्ति उसके दो ध्येय हैं जिनका सम्पर्क भारतीय मूल्य और मान्यताओं से हैं। भारतवंशी का योगदान हॉलैण्ड का संभ्रांत नागरिक बनना है। वास्तविकता से दूर नहीं भागना है पर मन शांति के लिये अध्यात्मिकता का भी बाना पहनना है। उपनिवेशवादी शोषण के अनुभवों के बाद भी भारतीय आत्मीयता ने मानव को मानव से दूर नहीं किया चाहे वह किसी भी संस्कृति में पला हो। आज हॉलेण्ड का प्रवासी भारतीय एक जागरूक इन्सान है, उसे अस्तित्व और अस्मिता को तलाश नहीं है उसका ध्येय प्रवासियों की एकता और डचों के साथ मित्रता का रिश्ता बनाये रखना है। "शुभ करमन ते कबहू न टरों" उसका लक्ष्य बन गया है। हालांकि अधिकांश में उसका भारत सूरीनाम में माता–पिता और आजा–आजियों की कथायें हैं। उसे उसने देखा भी नहीं है पर उसके प्रति आभारी है। प्रवासी भारतीयों के योगदान को हम निम्नलिखित विषयों पर आंक सकते हैं।

मानववाद की सिफारिश और जाति भेदभाव से दूरी

ऋग्वेद का 'वसुधैव कुटुम्बकम्' जिसमें विश्व को एक परिवार माना है प्रवासी भारतीयों का सूरीनाम में कर्मशील लक्ष्य था। सन् 1873 से 1916 तक के 64 जहाजों में 34302 भारतीय सूरीनाम पहुंचे थे। इनमें से कोई 1/3 वापिस लौट गये थे। क्योंकि स्त्रियां 40 प्रतिशत भी नहीं पहुंची थीं, विवाह की समस्याओं के निवारण में जाति प्रथा के आवरण को

उतार दिया था। हाँ, वर्ण का ध्यान अवश्य रखा जाता था, पर बाद में वह भी नकारा गया। सन् 1930 और 1940 के यदि आगमन रजिस्टर और जन्म–विवाह के आंकड़ों को देखें तो विदित हो जाता है कि भारतीय अधिकांश लोगों ने पारिवारिक नाम परवर्तित कर दिये थे ताकि विवाह में अड़चन न हो। इससे अस्पृश्यता और अत्यंज के प्रति घृणा के स्थान पर समानवादी मानवता अपना ली गई। हॉलेण्ड में भी विवाहों में ज़्यादातर जात–पांत को नहीं देखते। विचार यही होता है कि लड़की सुख से रहे। भारत की तरह यहां दहेज का रिवाज़ भी नहीं हैं और स्त्री–पुरुष मिलकर काम करते हैं।

अध्ययन और व्यापार

आज प्रवासी भारतीयों में नवयुवक मन से पढ़ रहे हैं। उनकी प्रतियोगिता डचों के साथ और दूसरे मुस्लिम वर्गों से भी है। सरकार के वरिष्ठ अधिकारी, पुलिस अफसर और सेना उत्तरदायी बन गये हैं। काफी मैडीकल डाक्टर, प्रोफेसर, इन्जीनियर, वकील, नगर पालिका और लोक सभा के सदस्य बन गये हैं। प्रवासी भारतीय जान गये हैं कि राजनीति में बिना भाग लिए वे अपने समाज की न तो सुरक्षा कर सकते है और न विकास।

स्वयं चालित संस्थाएं

सन् 1970 में जब प्रवासियों के आगमन का तांता लगा तो समाज कल्याण मंत्रालय की सहायता से संस्थाएं खोलने और चलाने के लिये सरकारी अनुदान दिये गए। श्री रामनाथ और श्री रामलाल ने सहयोगियों के साथ बहुत काम किये। हाँ एक दोष अवश्य हुआ कि इस होड़ में व्यक्तिगत दरारें खुद गई। एक बार बना सभापति–सभापति के ही स्वप्न देखने लगा पर फिर आपसी सम्बंध भी बिगड़े। किसी ने धर्म की आड़ पकड़ी और किसी ने संस्कृति की। लेकिन 1980 के दशक में आंचालिक और राष्ट्रीय संस्थाओं के बनने से वैमनस्य कम हो गया। संस्कृति के प्रचार में रंगमंच, साहित्य, खेल–कूद, बैठक गाना, शास्त्रीय संगीत, चित्रकला, प्रकाशन और लोक संस्कृति का विकास हुआ। काफी कलाकारों को राष्ट्रीय मान्यता प्रदान की गई। महारानी ने भी इन कलाकारों की रचना को सराहा ओर विशेष पुरस्कार प्रदान किए।

लोगों के अनुसार

विडम्बना है कि हॉलेण्ड में पश्चिमी देशों की भांति धर्म (चर्च) ओर सरकारी सत्ता (स्टेट) को अलग–अलग रखा है। इस्लाम इन दोनों में अन्तर नहीं रखता। पर इस अन्तर को प्रवासी भारतीयों ने भी माना है क्योंकि धर्म की परिभाषा में इन्सान की स्वतंत्रता मुख्य है। धर्म, भारतवंशियों के लिए एक जीने का तरीका है जो समूचे जीवन में गति बनाये रखता है। प्रवासी भारतीय संकुचित मनोवृति के नहीं रहे हैं। व्यक्ति की गरिमा की प्रतिष्ठा चाहे वह किसी जाति का क्यों न हो, अगर उसका आचार–विचार समयानुसार उचित है तो उसका

आदर होना ही है। यही मूल्य भारतीय चिंतन का प्रतिबिम्ब है। हालांकि सरकारी अनुदान सांस्कृतिक संस्थाओं को मिला है पर जब धर्म को जीने का तरीका मानेंगे तो संस्कृति और मूल्यों को अलग नहीं कर सकते। इस प्रकार जीवन के लक्ष्य को अकेलेपन से दूर प्रवासी भारतीयों ने अपने योगदान में किया है।

मंदिर, मस्जिद और गिरजाघर

31 अक्टूबर 1976 में द हेग में पहला कृष्ण मंदिर स्थापित हुआ था। ये श्री श्याम किशोर छंगू और श्री बद्री रमौध शर्मा का ही योग था जिन्होंने सनातनी भक्तों को मंदिर दर्शन का अवसर दिया। उद्घाटन पर श्री शर्मा जी ने कहा था—"भारत से हमारा धर्म पैदा हुआ है। भारतमाता के आदर्श, भाषा आदि हमारी धरोहर है उसे निभाना हमारा मानवीय कर्त्तव्य है। इससे संबंध रख कर हम धन्य हो जाते हैं।"

इसके बाद तो मंदिर निर्माण का क्रम आरंभ हो गया। देव मंदिर, राम मन्दिर, शिव मंदिर आदि हॉलेण्ड के सभी नगरो में बन गये। आर्य समाजी मंदिर भी बने। सिक्खों के गुरुद्वारे भी बने। बोद्धों के आश्रम और मठ भी बने। प्रवासी भारतीय अब जहां भी जाना चाहे जा सकता है। कुछ मस्जिदें भी बनी। लेकिन प्रवासी भारतीयों की मस्जिदें अलग हैं। कम से कम वहां भाषा और हंसी—मजाक का व्यवहार तो हो सकता है।

धार्मिक पुस्तकें रची गई। सभी प्रवासी भारतीय देवनागरी नहीं पढ़ पाते हैं इसलिए प्रकाशन डच भाषा में हुए ताकि डच भी उन्हें पढ़ कर भारतीय आत्मा को समझ सकें। समय—समय पर भारत से धार्मिक विचारक आते रहे, उन्होंने संतों को कभी अपने साथ लिया या उनके जीवन से परियच कराया। वर्ल्ड हिन्दू फैडरेशन ने सन् 1988 में एक बड़ा योरोपीयन हिन्दू सम्मेलन किया जिसमें विद्वान और स्वामी भी आये थे। अन्तर्राष्ट्रीय गोष्ठियां तो हर महीने होती हैं। प्रवासी भारतीय पश्चिमी योरोपियन की भांति नई तकनीकी पर विचार—विमर्श कर रहे हैं। सभी धार्मिक संस्थाओं के पास पंडितों और विद्वानों की सूचियां हैं और समय पड़ने पर आवश्यकतानुसार उन्हें बुलाते रहते हैं। कोई दो साल से राष्ट्रीय हिन्दू परिषद भी बनी है। इसके सभापति श्री शेखर बिसाभर हें।

हिन्दी भाषा और सूरनामी

जब भारतीय सूरीनाम आये थे उन्होंने अपनी भाषा को हिन्दी की ही संज्ञा दी थी। बाद में उसे हिन्दुस्तानी (हिन्दुस्तान) भी कहने लगे। मुंशी रहमान खान छठे और सातवें शतक में हॉलेण्ड में भी रहे थे। जितना उन्होंने लिखा उतना अभी तक किसी प्रवासी भारतीय ने नहीं लिखा। कैसे अपने धर्म की प्रवासी भारतीयों ने रक्षा की, इस पर मुंशी जी ने लिखा है—

"भारतवासी यहाँ पर आये। धर्म, कर्म निज साथहिं लाये।।
पांच वर्ष कन्तराक पिटाई। सबसे राखी सत्य मिताई।।

हिन्दू पालहिं अपने करतब। मुस्लिम पूजंहिं निराकार रब।।
रहे निज देश अटल आचारा। नहीं कर सके यहां व्यवहारा।।
धर्म मुताबिक कारज करहीं। धर्म ग्रन्थ आज्ञा अनुसारहीं।।
नहिं छल कपट न दूसर कर्मा। दोनहुं पालहिं निज निज धर्मा।।
यह विधि बहुत काल चल गयउ। धर्म विसद्ध नहिं कारज भयऊ।।
पाले बालक धर्म अनुकूला। दीन्ह सीख शुभ नहिं प्रतिकूला।।
मातु–पिता विधा पढ़वाई। धर्म ज्ञान सब विधि बतलाई।।
अब नव बालक भये सयाने। धर्म कर्म सब विधि पहचाने।।

लेकिन मुंशी जी ने उन विपरीत विरोधी बातों को भी लिखा है जिसमें नव युवक धर्म का अनुसरण न कर पश्चिमीकरण अपना रहे हैं। प्रवासी भारतीयों ने भी ऐसा ही हॉलेण्ड में किया है। पिछले दशक में श्री हरी राम भरन ने आर्य समाज पर, श्री फिरई ने ज्योतिष पर और श्री चांद बैजनाथ मिसिर ने हिन्दू धर्म पर पुस्तकें लिखी हैं। वैसे काफी संस्थाएं अपनी पत्रिकाएं भी निकालती हैं जैसे श्री रूपलाल बहादुर सिंह की 'हिन्दू' पत्रिका जो काफी सालों से निकल रही है।

हिन्दी के विकास में पहले एक ही संस्था थी 'हिन्दी परिषद नीदरलांद' जो कोई 20 वर्ष पहले श्री ब्रजमोहन ने मित्रों और मेरी सहायता से स्थापित की थी। लेकिन बाद में एक और संस्था बनी 'हिन्दी प्रचार संस्था'। दोनों का संबंध वर्धा से है। आठवें दशक में एक योरोपियन हिन्दी सम्मलेन भी हुआ था जिसमें वर्धा के श्री मधुकर राव चौधरी और संत श्री बाबरा जी भी थे। अभी तक 14 सितम्बर को दोनों ही संस्थाएं हिन्दी दिवस मनाती हैं। श्री नारायण मथुरा हिन्दी परिषद के सभापति हैं और दूसरी संस्था के डॉ॰ ऊ. रामदास। अब तक कोई 10000 विद्यार्थी हिन्दी सीख चुके हैं।

चौंकिये नहीं, हिन्दी का पहला व्याकरण हॉलेण्ड के श्री जोसुआ केटेलार ने सन् 1698 में लखनऊ में रचा था। उसका लेटिनांन्तर 1743 में प्रोफेसर मिलियस, यूटरेक्ट विश्वविद्यालय ने किया और बाद में पूरे विश्व को पता लगा कि उतर भारत में ब्रज भाषा के अतिरिक्त एक और भाषा है जिसका नाम हिन्दी, हिन्दुवी या हिन्दुस्तानी है।

पहले हॉलेण्ड के चार विश्वविद्यालयों में हिन्दी पढ़ाई जाती थी अब तो केवल लायडन ही में सीमित है। डॉ॰ गौतम भी भारतीय संस्कृति के साथ हिन्दी और दूसरी भाषाएं पढ़ाते है। पर डच सरकार की कटौती की कैंची बहुत तेज चल रही है। भविष्य क्या होगा, कुछ कहा नहीं जा सकता। जब सूरीनाम में क्रियोल राजनीतिक दल का आधिपत्य जमा तो श्रानांग तोंगों (क्रियोलों की भाषा) को सूरीनाम की औपचारिक भाषा बनाने की बातें चलीं। भारतवंशी यह नहीं चाहते थे कि उनकी भाषा को दूसरा स्तर मिले। छठे दशक में श्री निवासी और डॉ॰ अधीन ने सरनामी हिन्दी की हिमायत की थी। सरनामी का अभियान लायडन विश्वविद्यालय में मेरे ही विद्यार्थियों ने आरंभ किया था। श्रीमती शीला साहतू पहली

छात्रा थी जिन्होंने सरनामी व्याकरण लिखा था। उनके कोई 10 वर्ष बाद (1984) में श्री मोती माढ़े ने दूसरा व्याकरण लिखा। बाद में श्री कृष्ण बैजनाथ (जो आजकल भारत में सूरीनाम के राजदूत हैं) ने सूरीनामी साहित्य पर, श्री सूर्य प्रसाद बीरे ने विवाह मंडप पर और श्री हरी राम भरन ने हिन्दू लोक धर्म पर 'थीसिसें' लिखीं। दूसरे विद्यार्थी थे श्रीमती चित्रागयादीन, श्री रोबिन बलदेव सिंह, श्री राही रामदास। डॉ॰ जीतनारायण बलदेव सिंह एक तरह से सरनामीकरण के चालक थे जिन्होंने श्री ब्रिज महाबीर और श्री नौशाद बुद्ध के साथ 'सरनामी' पत्रिका निकाली और कई पुस्तकों के साथ अपने पैसे से रिकार्ड भी निकाला। सूरीनाम के दूसरे राष्ट्रकवि श्री निवासी ने दोनों भाषाओं में लिखा हिन्दी और सरनामी में उनकी हिन्दी कविता में उन्होंने भारतीय आत्मीयता की भावनाएं भर दी।

1. **सूरीनाम**

   यह देश
   मैंने चुना
   जिसमें बोया
   जीवन अपना....

2. **अकुलाहट**

   पिता जी!
   बप्पा!
   पा!
   काहे के यहां से चल गयल,
   काहे के पिताजी इतनी दूर
   चिट्ठी तोर मैया पाती नहीं,
   चिट्ठी, बिल्कुल न देखला पा,
   का हे के यहां.....

<u>जनसंचार माध्यम, फिल्म और पत्रिकायें।</u>

सन् 1970 के दशक में "मिलन" नाम की संस्था का आरंभ हुआ। यह भी श्री रामनाथ की योजना थी। एकता के लिये लोगों का मिलना आवश्यक है और इस मिलाप में वे अपने गुण और दोष दोनों सामने रख सकते हैं। संस्कृतियों का मेल, रीति–रिवाजों का मेल और रहन–सहन, खान–पान और भाव–भंगिमा के मेल इस मिलन के द्वारा तीन दिन तक प्रस्तुत होते हैं। इस वर्ष मिलन में कोई 10000 दर्शक आये थे। आजकल श्री छोटू इसके कर्ता–धर्ता हैं। अब इसमें मॉरीशस, त्रिनिडाड और भारत से भी सांस्कृतिक मंडालियां आने लगी है।

वैसे तो बड़े नगरों में रेडियो और आप्रवासी टी.वी. पर प्रवासी भारतीयों की खुशी और दुख की सूचना देना होता है। भारतीय फिल्मी संगीत, स्वामियों के प्रवचन, फिल्मी गायकों

की कंर्सट के कार्यक्रम, भारत और सूरीनाम के समाचार और हॉलेण्ड की खबरें आदि से हिन्दी में प्रवासी भारतीयों को सूचना दी जाती है। प्रवासी भारतीयों ने ओड़ीसा बाढ़ ग्रस्त लोगों की सहायता में भी इस माध्यम का उपयोग किया था और कोई 40000 इयोरों एकत्रित करके भारत भेजे थे।

ओम एक दूसरा हिन्दू ब्रोडकास्टिंग कॉरपोरेशन है जो प्रवासी भारतीयों के अकथ परिश्रम का नतीजा है। अगले वर्ष ओम 10 वर्ष पूरा करेगा। एक बात बताना चाहूंगा कि हॉलेण्ड में शुरू से ही एक अजीबोगरीब सरकारी नीति बनी रही है। हर धर्म को विशेष स्थान और जनसंचार माध्यम में अवसर दिया है। डच लोगों का विश्वास है कि एक राष्ट्र की नींव को सुदृढ़ बनाने के लिये यह आवश्यक है कि लोग अपने धर्म को न भूलें बल्कि उसके द्वारा सामाजिक मूल्यों के सहारे जिये। इसीलिए हॉलेण्ड में आपको भिन्न धर्मों के समाचार पत्र, रेडियो और टी.वी. स्टेशन मिलेंगे। 'ओम' के बनाने में तीन राष्ट्रीय संस्थाएं तो थीं पर योगदान में श्री रामनाथ (जो आजकल सभापति हैं), श्री रामलाल (पूर्व सभापति) श्री राममरन मिश्र, श्री अमरीश तिवारी और श्री धर्म मिसिर हैं। प्रोग्राम कमेटी के डॉ॰ गौतम और संस्थाओं की सभा के श्री रामोतार का योग भी रहा है। आज 'ओम' पड़ौसी देशों में भी काफी मशहूर है। लोग मन से कार्यक्रम टी.वी. पर देखते हैं और रेडियो सुनते हैं। 'ओम' कार्यालय के निदेशक श्री रूप चन्द्र टी.वी. के मुख्य श्री चन्दर मथुरा और रेडियो के मुख्य श्री विक्रम लाला बहादुर सिंह के अकथ परिश्रम से आज 'ओम' का स्तर किसी अन्य योरोपीय टी.वी. स्टेशन से कम नहीं हैं। 'ओम' ने प्रवासियों पर बहुत फिल्में बनाई हैं जैसे फिजी, मारीशस, साउथ अफ्रीका, त्रिनिडाड, सूरीनाम, गयाना, जमाइका प्रवासी भारतीयों पर वेद, महाभारत, गीता, रामायण, उपनिषद धर्म ग्रंथों पर राम, कृष्ण, गणेश और संतो पर ओर प्रवासी भारतीयों की समस्याओं पर जो वे हॉलेण्ड के पश्चिमीकरण को झेल रहे हैं।

प्रवासी भारतीयों ने आज बहुत–सी समस्याओं का समाधान कर लिया है। 1970 की पुरानी स्थिति जब वे 'न तीन में और न तेरह' में थे, बदल चुकी है। उन्होंने अच्छी तरह से देशकाल, ओर स्थिति के अनुसार हॉलेण्ड में अपने को ढाल लिया है। डच भी उन्हें अब भारतीय डच की संज्ञा देते हैं। उनके आदर्श 'अपन भाषा', 'अपन धर्म', 'अपन संस्कृति', 'अपन लोग' और 'अपन मुल्क' अब सार्थक हो गये हैं। भाषा तो हिन्दी और सरनामी परम्परागत बनी रही पर यहाँ की डच भाषा के साथ पड़ौसी देशों की भाषाएं भी सीख रहे हैं। धर्म की परिभाषा उनके लिए मानव धर्म ही है रास्ते दूसरे हो सकते हैं पर सत्य एक है और इसे नकारा नहीं जा सकता। हॉलेण्ड की नीति ने एक तरह से भारतीय संस्कृति की सुरक्षा में सहयोग दिया है इसका मुख्य उदाहरण 'मिलन' और 'ओम' हैं। 'अपन लोग' में अब केवल भारतीय ही नहीं अपितु हॉलेण्ड में बसे सभी वर्गों के लोग हैं। हाँ, प्रवासी भारतीय अब अपने को 'हिन्दुस्तानी डच कहते हैं।' 'अपन मुल्क' अब हॉलेण्ड है। जो बच्चे यहाँ पैदा हुए है उनके लिए भारत धर्म भूमि, सूरीनाम आजा–आजी की भूमि और हॉलेण्ड मातृभूमि बन

गई है। कभी–कभी यह भी कहते सुना है कि भारत आजा–आजी के पूर्वजों की धरती है। प्रवासी भारतीय अब अन्तर्राष्ट्रीय हो गये हैं शायद यह कहना कि "सभी भूमि गोपाल की या में का भेद, इन पर लागू होती है। भारतीय आत्मीयता के कारण भारत और सुरिनाम का दर्द इनकी भावनाओं में रम जाता है। भारत से आये हुए भारतीयों से इन्हें कोई दुश्मनी नहीं है और जब भी अवसर आया है, उन्हें सहायता दी है पर भारतीय दूर होते जा रहे हैं। शायद भारतीय अपने को ज्यादा पश्चिमीकरण में पाते हैं जबकि प्रवासी भारतीय भारतीयकरण में। अभी कुछ वर्षों से द हेग में 'बोलीवुड फिल्म फेस्टिवल' हो रहा है और ये कोई 10–15 दिन चलता है कोई 50–60000 प्रवासी भारतीय दर्शक और डच ही आते हैं। किंतु भारतीय नहीं। भारतीयों को अपनी दृष्टि में परिवर्तन लाना होगा और प्रवासी भारतीयों के साथ मिल–जुल कर रहना होगा क्योंकि दोनों ही हॉलेण्ड में बाहर से आये हैं। कबीर ने ठीक ही तो कहा है–

जात पांत पूंछे नहीं कोई
हरि को भजे सो हरि को होई।

□□□

अलग ही संसार है प्रवासी भारतीयों का

● मनोहर पुरी

भरा–पूरा भारतीय मन हो और देश–विदेश की अनेकों यात्राएं करने का संयोग–अवसर भी तो स्वदेश प्रेम के अन्यतम उदाहरण सामने आते हैं। इस संस्मरणपरक आलेख में, विदेशों को अपनी कर्मस्थली और आश्रय बना लेने वाले, संघर्षकामी भारतीयों के सुरों और संस्कारों की विश्वव्यापी छटाएँ देखने को मिलती हैं। इस अकेले आलेख में मानो प्रवासी भारतीयों का भूत, वर्तमान और भविष्य झांकता है।

यह एक सर्वमान्य वास्तविकता है कि भारतीय विश्व के किसी भी स्थान पर किसी दुर्भावना के साथ नहीं गए। वे जहां भी गए अपने साथ सद्‌भावना और मित्रता ही ले कर गए और वहां पर उन्होंने सुख और समृद्धि में वृद्धि ही की। भारतीय जहां भी गए तन मन धन से वहीं के हो कर रह गए। उन्होंने अपनी पूरी क्षमता से उन देशों की श्री वृद्धि में पूरा–पूरा सहयोग दिया। जिस प्रकार कोई पौधा जिस भी धरती पर फलता–फूलता है उसी को हरा–भरा बना देता है उसी प्रकार भारतीय जहां भी गए वहां के विकास में जुट गए। जैसे पौधे की अपनी प्रजाति बनी रहती है और सदैव यह कहा जाता है कि अमुक पौधा अमुक देश से आया है, वैसे ही भारतीयों ने उन देशों को पूरी तरह से अपनाया जहां के वह निवासी बने। परन्तु उन्होंने अपनी जड़ों को भारत से काट कर अलग नहीं किया। दिल के एक कोने में यह बात हमेशा बनी रही कि उनका मूल भारत में ही है। उन्होंने अपनी सभ्यता और संस्कृति को नहीं छोड़ा। कभी–कभी तो उन्हें इसके लिए बड़े–बड़े त्याग भी करने पड़े।

भारतीय केवल श्रमिकों के रूप में ही विदेशों में नहीं गए बल्कि व्यापार करने के उद्देश्य से भी उन्होंने अनेक देशों में प्रवास किया। जहां भी वह गए जिस किसी रूप में भी गए, उन्हें

अपनी प्रगति के लिए संर्घष करना पड़ा और उन्होंने अपने संघर्ष से अपनी मंजिल प्राप्त की, उन्नति के उच्चतम शिखरों को छुआ। इस सारी प्रक्रिया में उन्होंने अपनी सभ्यता और संस्कृति के महान मूल्यों को बिल्कुल विस्मृत नहीं किया। उन्होंने अपने अपनाये गए देश और भारत के मध्य एक सेतु का काम भी किया। यही कारण है कि जहां–जहां भी भारतीय अधिक संख्या में रहते हैं उन देशों के साथ भारत के घनिष्ट एवं आत्मीय सम्बन्ध हैं। इस प्रकार भारत की विदेश नीति को दिशा देने में उन्होंने बहुत अहम भूमिका का निर्वाह किया है।

विश्व के लगभग 136 देशों में भारतवंशी निवास करते हैं और इनकी संख्या का अनुमान लगभग दो करोड़ है। भारतवंशी बड़ी मात्रा में अफ्रीका और कैरेबियन देशों में बसे हुए हैं। लगभग हर तरह के लोग भारत से गए हैं। इनमें अकुशल और कुशल श्रमिक हैं तो कारीगर और औद्योगिक क्षेत्र में काम करने वाले भी हैं। डाक्टर और इंजीनियर हैं तो कम्प्यूटर विशेषज्ञ भी हैं। इस समय खाड़ी के देशों में बड़ी मात्रा में अकुशल और प्रशिक्षित श्रमिक काम कर रहे हैं। उनके द्वारा भारत में भेजी जाने वाली विदेशी मुद्रा से ही आज हमारे पास विदेशी मुद्रा का बड़ा भंड़ार है। खाड़ी के देशों का भवन निर्माण का काम प्रायः उन्हीं के परिश्रम से हो रहा है। साथ ही वे लोग इन स्थानों पर आर्थिक विकास के मूल भूत ढांचे के निर्माण में पूरी तरह से जुटे हुए हैं। ब्रिटेन की पूरी स्वास्थ्य सेवाएं भारतीय डाक्टरों के कंधों पर हैं तो अमरीका का सम्पूर्ण कम्प्यूटर उद्योग उन्हीं के बल पर है। भारतीय व्यापारियों की क्षमता का मुकाबला तो विश्व का अन्य कोई देश कर ही नहीं सकता। जहां–जहां भारतीय व्यापारी गए उन्होंने अपनी सफलता के झंडे गाड़े हैं। कई देशों में भारतीय कुली बन कर गए थे परन्तु आज उनके वंशज वहां के प्रशासन के कर्त्ता धर्त्ता हैं। एक समय ऐसा था कि विश्व के तीन देशों के प्रधानमंत्री भारतीय मूल के लोग थे। तीन राष्ट्राध्यक्ष थे और पांच अध्यक्ष। मारीशस की स्वतंत्रता के कर्णधार शिवसागर रामगुलाम वहां के प्रथम प्रधानमंत्री बने। बाद में वहां के गवर्नर भी रहे। उनके सुपुत्र डॉ॰ नवीन राम गुलाम ने भी प्रधानमंत्री के पद को सुशोभित किया। अनिरुद्ध जगन्नाथ वर्षों से वहां के प्रधानमंत्री हैं। स्वतंत्रता प्राप्ति से आज तक वहां पर भारतवंशियों का ही बोलबाला है। मारीशस में ही कासिम उत्तीम राष्ट्रपति रहे। वहां की संसद के स्पीकर रमेश जीव लाल ने मारीशस की राजनीति में बहुत योगदान किया है। साहित्यिक विश्व में हिन्दी की पताका फहराने वाले अभिमन्यु अनत का नाम आज विश्व के हर हिन्दी प्रेमी की जुबान पर है। विश्व हिन्दी सम्मेलनों में मारीशस की भागीदारी देखते ही बनती है।

एक अनुमान के अनुसार इस समय विश्व के विभिन्न देशों की संसदों में भारतवंशियों की संख्या तीन सौ के आसपास है। इनमें से सत्तर के लगभग मंत्री हैं। छेदी जगन गुयाना के प्रथम राष्ट्रपति बने। विश्व की राजनीति में उनका योगदान भी उल्लेखनीय है। इसी प्रकार त्रिनिडाड एवं टुबैगो के वासुदेव पांडे और फीजी के महेन्द्र पाल चौधरी ने अपने–अपने देशों की राजनीति में शिखर तक पहुंचने में सफलता पाई और वहां के प्रधानमंत्री बने। त्रिनिडाड और टुबैगो की कमलर प्रसाद बिसेसर, रिजा मोहम्मद, मोरगन जाव और चन्द्रेश

शर्मा ने भी राजनीति में नाम कमाया है। शिक्षा एवं सामाजिक गतिविधियों में वहां के सत पाल महाराज के योगदान को भुलाया नहीं जा सकता।

दक्षिण अफ्रीका में अनूप के. बीशम, दासमॉड पारेयची, एच.एम. नीराहू डी, गोविन्दर और इला गांधी निरन्तर राजनीति में सक्रिय रहे हैं। शिशुपाल रामभरोस सामाजिक क्षेत्र में कार्य कर रहें हैं। रणजीत राम नारायण की गिनती आज वहां के करोड़पतियों में होती है। इनकी माता ने लकड़ियां काट–काट कर इनका भरण–पोषण किया था। स्वामी कृष्णनंद ने प्रवासी भारतीयों के मध्य अपने द्वारा स्थापित ह्यूमन सर्विस ट्रस्ट के माध्यम से इक्कीस देशों में समाज सेवा के ऐसे प्रकल्प चलाए कि किसी को यह आभास तक नहीं हुआ कि वे प्रवासी भारतीय नहीं थे। इस क्षेत्र में कार्य करते हुए उन्होंने अफ्रीका में अपने जीवन के चालीस वर्ष लगा दिए। धार्मिक क्षेत्र में आर्यसमाज के प्रचार में मारीशस के मोहन लाल मोहित ने पूरी युवावस्था लगा दी। आज एक सौ वर्ष की आयु में भी वे सक्रिय हैं।

श्रीमती इन्द्रावती एम. देजवालप्रसाद सुरीनाम की स्पीकर बनीं। सुरीनाम के श्री लक्ष्मण ने निरन्तर पच्चीस वर्ष तक संसद के अध्यक्ष पद को सुशोभित करके एक रिकार्ड बनाया है। फिजी मे जयराम रेड्डी ने भी अविस्मरणीय कार्य किया है। ग्याना में भारत जगदेव राष्ट्रपति पद पर आसीन रहे। ग्याना में दूधनाथ सिंह ने मुख्य निर्वाचन आयुक्त के रूप में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। कुमारन रामदास और रिपुदमन प्रसाद ने मंत्री के रूप में तथा देरेक सी.जगन ने स्पीकर के रूप में कार्य किया। जमैका में बैंजामिन क्लेअर मंत्री और ओ.डी. रामतल्ली सांसद के रूप में प्रसिद्ध हुए। जिम्बाबवे, जांबिया, केन्या, तंजानिया, मोजम्बिक ओर उगांडा में भारतवंशी निरन्तर राजनीति के शिखर पर रहे और मंत्री अथवा सांसदों के रूप में अपनी आवाज को अपने–अपने देश की संसदों में उठा रहे हैं। सिंगापुर में राष्ट्रपति के रूप में एस.आर. नाथन ने तो वहां की काया ही पलट दी है। नेपाल, मलेशिया और श्रीलंका में भारतवंशियों की भूमिका को सर्वत्र सराहा ही जाता है।

कनाडा के ब्रिटिश कोलम्बिया प्रान्त के प्रथम प्रधानमंत्री पंजाब से गए उज्जल दौसांज बने। गुरुबख्श सिंह मल्ही, हरबंस सिंह धलीवाल और डॉ॰ कीथ मार्टिन का कनाडा की राजनीति में अपना स्थान है। दिलीप सिंह और सतवीर चौधरी ने भी अमरीका की राजनीति में अपने लिए स्थान बनाया है। लार्ड नवनीत ढोलकिया जब ब्रिटेन की लिबरल डेमोक्रेट्स के प्रधान बने तो वह पहले ऐसे एशियाई थे जिन्होंने किसी प्रमुख राष्ट्रीय दल में ऐसा पद प्राप्त किया था। लार्ड स्वराज पाल, कैथ वाज, पियारा सिंह खाबरा, लेड़ी शीला फैचर और लेड़ी उषा पराशर ने इंग्लैंड के राजनैतिक और सामाजिक क्षेत्रों में अलग पहचान बनाई है। डॉ॰ हर गोविन्द खुराना, अमर्त्य सेन और नायपाल ने नोबल पुरस्कार प्राप्त करके भारतवंशियों का मस्तक ऊंचा किया है।

भारत के लगभग हर क्षेत्र से लोग बाहर गए हैं। हर वर्ग और हर श्रेणी के लोगों ने विदेशों में प्रवास किया है। सभी लोग किसी एक समय में ही बाहर नहीं गए बल्कि

अलग–अलग समय अलग–अलग परिस्थियों में गए हैं। भारतीय सभ्यता और संस्कृति का विशेष गुण अनेकता में एकता वहां भी अक्षुण्ण रखा गया है। भारतवंशियों की परस्पर एक दूसरे से जुड़े रहने की भावना ने उनके मूल्यों को बचा कर रखा है। इसका एक अन्य कारण यह भी है कि भारतवंशी जहां भी गए उन्हें किसी न किसी प्रकार से स्थानीय लोगों के साथ प्रतिस्पर्धा करनी ही पड़ी। इसके लिए किए जाने वाले संघर्ष में सफल होने के लिए यह आवश्यक था कि वे आपस में एकजुटता रखते। इस परीक्षा में वे पूरी तरह से सफल हुए।

इसका एक उदाहरण मुझे अफ्रीका में देखने को मिला। मैं केन्या से दक्षिण अफ्रीका होते हुए मोजाम्बिक जाने वाला था। दक्षिण अफ्रीका में मुझे मेरे एक मित्र मिलने वाले थे जिनके साथ मुझे मोजाम्बिक जाना था। किसी कारणवश हमें यह मार्ग बदलने के लिए विवश होना पड़ा। जब मैं नैरोबी में ही था तो मुझे सन्देश मिला कि मैं जाम्बिया और बोत्सवाना होते हुए मोजाम्बिक पहुंचूं। फोन पर मुझे कहा गया कि कोई सज्जन जसू भाई पटेल मुझे हवाई अड्डे पर मिल जायेंगे। वहां से आगे जाने के टिकट इत्यादि का प्रबंध हो जायेगा। मैं बिना किसी झिझक के जाम्बिया की राजधानी लुसाका पहुंच गया। जसू भाई न केवल मुझे हवाई अड्डे पर लेने आए बल्कि उन्होंने आग्रहपूर्वक मुझे अपने घर ठहरने के लिए विवश भी किया। क्योंकि आगे का कार्यक्रम आने में कुछ विलम्ब हुआ, मैं बहुत ही आराम से उनके घर में अतिथि बन कर रहा। जसू भाई ने मुझे बोत्सवाना का टिकट दे कर हवाई जहाज में बिठा दिया। बोत्सवाना की राजधानी गैबरौने में मुझे जो सज्जन मिलने वाले थे उसका नाम और दो टेलीफोन नम्बर मुझे दे दिए। मुझे बताया गया कि श्री कान्ति भाई आपको लेने हवाई अड्डे पर आयेंगे और आपको मोजाम्बिक की रेल गाड़ी में बिठा देंगे। बिना किसी संशय के मैं उस छोटे से वायुयान में सवार हो गया जो सप्ताह में केवल एक या दो बार बोत्सवाना जाता था और जिसकी क्षमता मात्र बीस–पच्चीस यात्रियों को ले जाने की ही थी। जब मैं गैबरोने के हवाई अड्डे पर उतरा तो अपनी आंखों पर विश्वास ही नहीं कर पाया। इतना छोटा–सा कोई हवाई अड्डा भी हो सकता है यह बात मेरे मस्तिष्क में कभी आ ही नहीं सकती थी। यह अन्तर्राष्ट्रीय हवाई अड्डा था। भारत के किसी दूरस्थ छोटे–से छोटे हवाई अड्डे से भी छोटा। जिस हवाई पट्टी पर हमारा जहाज उतरा, वह स्थान एक इकहरी लोहे की तार से घिरा हुआ था ताकि हवाई पट्टी पर कोई पशु न आ जाये। हवाई अड्डे का भवन मात्र दो कमरे का था। एक गोदाम सरीखा और दूसरा स्वागत कक्ष। यही आगमन कक्ष था और यही प्रस्थान कक्ष। दूसरे कक्ष में एक कर्मचारी बैठा था। यही व्यक्ति वहां इंचार्ज, वीसा अधिकारी और सुरक्षाकर्मी भी था।

जब तक वह हवाई जहाज के कप्तान के कागजात इत्यादि की कार्यवाही पूरी करता हम लोगों को वहां पर रखी रबर की मोहर से अपने–अपने पासपोर्ट पर स्वयं ही वीजा लगाने के लिए कहा गया। बाद में उस कर्मचारी ने आ कर सभी पारपत्रों पर हस्ताक्षर कर दिए। बाहर एक बस खड़ी थी। मेरे अतिरिक्त सभी यात्री उसमें बैठ गए और बस चली गई। ज्यों ही

उस कर्मचारी की दृष्टि मुझ पर पड़ी वह चौंक गया। उसे अंग्रेजी नहीं आती थी फिर भी उसने अपने ढंग से यह पूछने का प्रयास किया कि मैं उस बस में क्यों नहीं गया जिसकी उडाई हुई धूल निरन्तर दूर होती जा रही थी। दूर–दूर तक कोई मकान अथवा आबादी का नामों निशान दिखाई नहीं दे रहा था। केवल एक सुनसान सड़क और यह इमारत जीवन के चिह्न के रूप में दिखाई दे रहे थे। मैंने उसे समझाने का प्रयास किया कि कोई मुझे लेने के लिए आने वाला है और मैं उसकी प्रतीक्षा कर रहा हूं। उसने वहां लगे टेलीफोन की ओर संकेत करते हुए मुझे सुझाया कि मैं टेलीफोन करके आने वाले की स्थिति का पता कर लूं।

इतना संकेत करने के पश्चात् उसने अपना सामान संभालना शुरू कर दिया। जैसे कोई दुकानदार अपनी दुकान बढ़ाता है। शायद अब उसे वहां दो दिन बाद आना था। मैं सोच रहा था कि आखिर यह यहां से कैसे जायेगा। बाहर कोई गाड़ी आ रही है अथवा नहीं, यह देखने के लिए मैं कभी बाहर आता और कभी अन्दर जाता। मेरी घबराहट बढ़ने लगी थी। भवन के बाहर एक साईकिल खड़ी थी जिसका अगला पहिया छोटा और पिछला पहिया बड़ा था। मैं समझ गया कि यही उसकी सवारी है। शायद वह वहां से बीस–पच्चीस किलोमीटर दूर जंगलों में बसी किसी बस्ती में रहता होगा? मुझे समझ नहीं आ रहा था कि यदि यह चला गया तो मेरा क्या होगा। अब मुझे वहां खड़े होने में भी डर–सा लगने लगा था। मैं जानता था कि यह कल्हरी के रेगिस्तान वाला इलाका है। यहां पर जंगली जानवरों की भरमार है। ऐसी हालत में कुछ मिनट भी वहां खड़े रहने का साहस मैं नहीं जुटा पा रहा था।

वह व्यक्ति धीरे–धीरे अपना छोटा–मोटा सामान ला कर अपनी साईकिल पर टांग रहा था। साफ लग रहा था कि वह मेरे ही कारण वहां पर था। सोचता होगा कि मुझे लेने कोई आये तो वह भी अपने घर की ओर प्रस्थान करे। धीरे–धीरे शाम घिरने लगी थी। मैं बार–बार टेलीफोन करता जा रहा था। एक नम्बर पर लगातार घंटी बजती थी जबकि दूसरे नम्बर पर कोई प्रतिक्रिया ही नहीं होती थी। ज्यों–ज्यों समय बीत रहा था मेरी हालत खराब होती जा रही थी। मैंने मन ही मन निश्चय किया कि यदि कोई नहीं आयेगा तो किसी तरह से इसी व्यक्ति के साथ यहां से निकलने की योजना बनानी होगी। परन्तु कैसे, यह मैं समझ नहीं पा रहा था।

तभी दूर कहीं धूल उड़ती दिखाई दी। मेरी जान में जान आई। उसके चेहरे के तनाव में आने वाली कमी को मैंने लक्षित किया। यद्यपि मैं नहीं जानता था कि आने वाला व्यक्ति मुझे ही लेने आ रहा है पर इतना विश्वास था कि जो कोई भी होगा उसके साथ यहां से निकलना तो संभव हो ही सकेगा। वैसे भी वहां किसी दूसरे व्यक्ति के आने की कोई आशा नहीं थी क्योंकि यह सड़क हवाई अड्डे के लिए ही बनी थी और यहीं समाप्त हो जाती थी। खैर! गाड़ी समीप आई और उसमें से एक भारतीय चेहरे को झांकता देख कर मेरी जान में जान आई। उस व्यक्ति ने भी ताला बंद करके अपनी साईकिल उठा ली और मुझे विदा

कहने की मुद्रा में खड़ा हो गया। आने वाले व्यक्ति ने बिना किसी भूमिका के कहा मिस्टर पुरी! और मेरा सूटकेस उठा कर कार में रख दिया। मेरे गाड़ी में बैठते ही उसे तेजी से वापिस घुमा दिया।

मार्ग में उसने अपना परिचय देते हुए बताया कि मैं बोत्सवाना का मुख्य न्यायाधीश हूं और आपको लेने के लिए डेढ़ सौ किलोमीटर कार चला कर आया हूं। क्योंकि इन दिनों वहां पर कुछ आतंकवादी गतिविधियां हो गई थीं फलतः मार्ग में बार–बार होने वाली कारों की जांच के कारण उसे आने में विलम्ब हुआ। इसके लिए वह बार–बार मुझसे क्षमा मांगते रहे। उनकी आयु और उनके पद को जानने के बाद मुझे स्वयं शर्म आ रही थी। मुझे सबसे अधिक अचंभा इस बात पर हुआ कि वह मुझ से बार–बार पूछते थे कि यह जसू भाई पटेल कौन हैं। उन्होंने कहा कि वह जाम्बिया में इस नाम के किसी व्यक्ति को नहीं जानते। मैं उन्हें जसू भाई के विषय में अधिक से अधिक जानकारी देने का प्रयास कर रहा था परन्तु उन्हें अन्त तक नहीं समझा पाया कि आखिर वह व्यक्ति कौन है। अपनी जिज्ञासा को शान्त करने के लिए मैंने पूछा कि यदि आप उन्हें नहीं जानते तो आप मुझे लेने क्यों आए। उन्होंने बताया कि उन्हें कल ही मेरे आने के विषय में जसू भाई का भेजा हुआ तार मिला था। तार मिलने के बाद मुझे तो आना ही था क्योंकि हम सभी भारतीयों का यह निर्णय है कि यदि इस तरह का कोई भी सन्देश किसी को प्राप्त होता है तो उसे उसके अनुसार काम करना ही है। मैंने पूछा कि उन्होंने आप को ही क्यों चुना। वह बोले बहुत ही आसान काम है। जो भी पहला भारतीय नाम उन्हें टेलीफोन डायरेक्ट्री में दिखा होगा उसी का पता देख कर उन्होंने तार कर दी होगी। कांति भाई ने बताया कि आप भी यदि कहीं किसी ऐसी ही स्थिति में फंस जाएं तो कम से कम पूर्वी और दक्षिणी अफ्रीका के विषय में तो मैं जानता हूं कि आप जहां कहीं भी हों, जो भारतीय नाम आपको ज्ञात हो उसे फोन कर दें। जो पहला वाक्य आप सुनेगें वह होगा भाई आप कहां पर हैं? वहीं रहिए हम आपको लेने के लिए आते हैं। उन्हें इतना भर बताने की आवश्यकता है कि आप भारत से आये हैं और यहां आप किसी को नहीं जानते। अब मेरी हालत देखने वाली थी। मुझे कुछ संकोच में पड़ा देख कर उन्होंने कहा, आप बिल्कुल चिन्ता न करें। तार के अनुसार मुझे आपको रात की गाड़ी में बिठाना है। अभी बहुत समय है।

मैंने पूछा कि मेरे पास आपके दो फोन नम्बर थे परन्तु दोनों पर किसी से बात नहीं हो पाई। ऐसा क्यों? उन्होंने बताया कि मैंने कल ही घर बदला है इसलिए एक फोन कट गया है। क्योंकि मैं घर पर अकेला था और आपको लाने के लिए चल चुका था इसलिए दूसरे फोन पर घन्टी बजती रही होगी। क्योंकि परिवार के सभी लोग भारत गए हुए हैं इसलिए आपको एक दूसरे स्थान पर ले कर चल रहा हूं जहां पर गैबरेने के सभी हिन्दू एकत्र हुए होंगे क्योंकि वहां पर आज सांई भजन संध्या का आयोजन है।

कुछ समय बाद हम लोग एक भव्य मकान में पहुंच गए। वहां बहुत चहल–पहल थी। अभी भजन का कार्यक्रम समाप्त ही हुआ था और चाय–नाश्ता चल रहा था। मेरा अनेक

लोगों के साथ परिचय कराया गया। कुछ खिलापिला कर आराम करने की व्यवस्था कर दी गई। रात्रि को कांति भाई मुझे रेल में बिठाने आये। रेल का टिकट खरीदने के पश्चात उन्होंने मुझे कुछ 'पुल्ला' (बोत्सवाना की मुद्रा) देते हुए कहा, इसे अपने पास रखें, संकोच न करें और गलती से भी रेल में डालर भुनाने का प्रयास न करें। जहां तक संभव हो, रात्रि में अपने केबिन का दरवाजा भी न खोलें। बिल्कुल जैसे घर परिवार के बड़े लोग अपने बच्चों को यात्रा पर भेजने से पहले हिदायतें देते हैं, कुछ वैसे ही उन्होंने मुझे विदा किया। उन में से बचे कुछ पुल्ला आज भी मेरी अलमारी में उनके स्नेह के प्रतीक रूप में मेरे पास सुरक्षित हैं।

भारत लौटने से पहले मैं जब पुनः जाम्बिया गया तो मैंने जसू भाई से पूछा कि आखिर आप ने यूं ही तार कैसे कर दिया, तो उन्होंने बताया कि इसमें कुछ भी अस्वाभाविक नहीं है। अन्य देशों के लोग भी हमें ऐसे ही सन्देश भिजवाते रहते हैं। मैंने कहा, यदि वह नहीं आते तो। उनका उत्तर था ऐसा तो हो ही नहीं सकता। इतना ही नहीं, उन्होंने बताया कि यदि इस तरह के मामलों में व्यय होने वाली राशि कोई भारी राशि नहीं होती तो हम लोग उसे आपस में देते–लेते भी नहीं। उन्होंने समझाया कि आपकी रेल की टिकट के विषय में उन्होंने कुछ नहीं लिखा। हां, यदि हवाई यात्रा होती तो हम उन्हें पैसे भिजवा देते। भारतीयों की इस एकता की अन्तर्धारा को देख कर मैं अभिभूत रह गया था। उसके बाद तो ऐसे कितने ही किस्से देखने और सुनने में आए।

भले ही इतनी गहरी परस्पर समझ उन भारतीयों में देखने में नहीं आई जो अमरीका अथवा यूरोप में रहते हैं परन्तु उनके भी आपसी रिश्ते काफी गहरे जुड़े हुए हैं। सूरीनाम, मारीशस और ग्याना अथवा त्रिनिडाड और टुबैगो में भी भारतीय मूल के लोग भारत से आने वाले लोगों को सिर आंखों पर बिठाते हैं और भारत की किसी भी अस्मिता के साथ वे अपने अस्मिता को जोड़ लेते हैं। भले ही नई पीढ़ियां भारत को अपनी मातृभूमि न मानती हों परन्तु इसे वे अपने पूर्वजों की मातृ भूमि मानते ही हैं और अपनी भी पुण्य भूमि स्वीकारते हैं।

भारतवंशियों ने अपनी विदेश यात्राएं अबाध गति से की हैं। कभी वे बौद्ध काल से भी पहले बाली और सुमात्रा अथवा श्रीलंका की ओर गए तो कभी बौद्ध काल में चीन, वियतनाम, थाईलैन्ड और कम्बोड़िया की ओर बढ़ गए। कभी विजातियों के अत्याचारों से त्रस्त हो कर मध्य यूरोप की ओर प्रस्थान कर गए और रोंमा जिप्सियों के रूप में आज भी इस देश की मिट्टी को मन में बसाए हुए हैं। कभी उन्हें गिरमिटिया मजदूर बना कर दूर–दूर के द्वीपों में ले जाया गया तो कभी वे स्वयं अपनी बौद्धिक कुशलता की छाप छोड़ने के लिए अमरीका और यूरोप के देशों में जा पहुंचे। कुछ ने इसे बौद्धिकता का पलायन कहा तो कुछ ने विदेशों में बसने वाली हमारी जमा–पूंजी। मुख्य बात यह है कि विश्व इतिहास का कोई दौर ऐसा नहीं रहा जब भारतीयों ने दुनिया के भिन्न–भिन्न देशों की यात्राएं नहीं कीं। समय–समय पर अनेक भारतीय उन स्थानों पर बसते गए जहां उनका मन रच–बस गया अथवा किसी

विवशता से उन्हें वहां रहना पड़ा। जहां भी भारतीय रहा वहां की धरती पर उसने अपनी छाप छोड़ी है और अपने आपको अपनी जड़ों से कभी भी, कहीं भी अलग नहीं किया। कहा भी गया है कि आप भारत से भारतीयों को निकाल सकते हैं परन्तु भारतीय से भारत को नहीं निकाल सकते।

इस सन्दर्भ में मुझे एक घटना का स्मरण हो आता है। अपनी एक यूरोप की यात्रा के दौरान मैं स्वर्गीय हर मोहन लाल जी एवं अमरीका निवासी अंजलि पांड्या के साथ था। मैं श्रीमती अंजलि पांड्या को पेरिस का प्रसिद्ध आईफिल टावर दिखाने के लिए ले गया। अंजलि जी पहली बार पेरिस आयी थीं जबकि मैं कई बार पेरिस की यात्रा कर चुका था। हम लोग टावर के पास पहुंचे ही थे कि एक युवा लड़की भागती हुई हमारी ओर आई। उसने बहुत उत्साह से मेरा हाथ पकड़ लिया और बोली इंडियन! आई एम आलसो इंडियन। रोमा जिप्सी। हाऊ इज इंडिया। टेल मी एबाऊट इंडिया। यू माई ब्रदर। वन डे आई विल सी इंडिया। इतना कह कर वह मुझ से लिपट गई। उसकी आंखें भर आई थीं। उसने बताया कि कई पीढ़ियों से हम लोग अपने देश नहीं गए। यूं ही इधर–उधर भटकते रहते हैं। यहां हमारा कोई नहीं है। पर हम भारतीय हैं। हम भारत को हमेशा याद करते हैं। पर क्या भारत हमें याद करता है? भारत के ऐसे पच्चीस लाख लोग आज भी बिना किसी नागरिकता से यहां से वहां बंजारों की तरह से घूमते रहते हैं। आज भी वे अपने रीति–रिवाजों को बचाए हुए हैं। आज भी उनकी भाषा में हमारी भाषाओं के शब्द मौजूद हैं। आज भी उनमें हमारे रिश्तों की गर्माहट है। समय और परिस्थितियों से मजबूर हो कर उन्होंने अलग–अलग धर्म अपना लिए हैं परन्तु वे आज भी अनेक हिन्दू धर्म के कर्मकांडों का पालन करते हैं। भारत माता के इन बिछुडे हुए बच्चों का क्या हमें कोई ध्यान नहीं करना चाहिए। इतनी सारी बातें एक साथ मेरे मस्तिष्क में घूम गई। अंजलि भी चुपचाप यह देख रही थी। उसके सिर पर हाथ फेरते हुए बोली, यस यू मस्ट कम टू इंडिया। इतना सुनते ही उसके चेहरे पर मुस्कान फैल गई और वह जैसे आई थी वैसे ही चौकड़ी भरती हुई हमें बाई–बाई कहती हुए भाग गई।

जिम्बाबवे में मुझे एक ऐसे सज्जन रमण–भाई मिले जिनके दादा को सूरत की एक सड़क से उठा कर केन्या जाने वाले एक छोटे–से जहाज में जबरदस्ती बिठा दिया गया था। उन्होंने बताया कि उन दिनों जब जहाज भारत से वापिस लौटते थे तो उनमें संतुलन बनाए रखने के लिए ऐसे ही भारतीयों को छाता दे कर बिठा दिया जाता था। बाद में जिस किसी बन्दरगाह पर अधिक सामान लादा जाता वहीं उन्हें उतार दिया जाता। उन्होंने बताया कि उस समय मेरे दादा जी की आयु लगभग बारह–तेरह वर्ष की रही होगी। उन्हें केन्या के मोम्बासा बन्दरगाह पर उतार दिया गया। इतनी छोटी आयु में कुछ समझ ही नहीं आ रहा था कि क्या करें, कहां जाएं। किसी तरह वहां पर रहने वाले एक भारतीय व्यापारी के यहां उन्हें आश्रय मिल गया। वहां रहते हुए उन्हें पता लगा कि जिम्बाबवे, जो उस समय रोडेशिया के नाम से जाना जाता था, में सूरत का कोई व्यापारी रहता है। उन्होंने सोचा कि यदि मैं

किसी तरह से रोडेशिया पहुंच जाऊं तो शायद उसकी सहायता से भारत में अपने घर वालों से सम्पर्क हो सके। डर के मारे अकेले जाने का साहस नहीं था। अन्य कोई साधन दिखाई नहीं दे रहा था। एक दिन वह अकेले ही केन्या से निकल पड़े। उन्हें बताया गया था कि वह रेलवे लाइन सीधे रोडेशिया जाती है। उस बालक ने रेल की पटरी के किनारे–किनारे यात्रा प्रारम्भ की। पकड़े जाने के डर से दिन में चलना संभव नहीं था। फलतः वह दिन को किसी पेड़ पर चढ़ कर छिप जाता और रात को उतर कर रेल की पटरी पर आगे की यात्रा करता। अफ्रीका का यह क्षेत्र आज भी घने जंगलों और हिंसक वन्य प्राणियों से भरा हुआ है। ऐसे क्षेत्र में कैसे वह जीवित रहा होगा और कैसे उसने यात्रा की होगी इसकी कल्पना कर के आज भी रोंगटे खड़े हो जाते हैं।

रोडेशिया पहुंच कर उसने उस व्यापारी से सम्पर्क किया। उसने बालक को अपनी फर्म में बही–खाता लिखने के लिए नियुक्त कर लिया। किसी तरह से उसके घर पर सूचना दी गई। बाद में यह बालक रोडेशिया में बने पहले हिन्दू संगठन का अध्यक्ष बना और रोडेशिया के सबसे अधिक धनी परिवारों में गिना गया। रोडेशिया ही नहीं पूरे दक्षिणी अफ्रीकी देशों में रहने वाले भारतीयों को उसने एक सूत्र में बांध कर रखा। वहीं एक अन्य सज्जन प्रह्लाद नारेन से मिलने का अवसर मिला जो अपने ही बूते पर वहां के एक सुन्दर शहर क्यूकवे की आधी से अधिक सम्पत्ति के मालिक थे।

मारीशस, फीजी, ग्याना, त्रिनिडाड और टुबैगो में भारतीय मूल के लोगों ने जो संघर्ष किया और बाद में वहां पर अपनी प्रतिभाओं के झंड़े गाड़े यह सब को ज्ञात है, परन्तु छोटे–छोटे स्थानों पर अकेले ही दम पर अपनी आस्थाओं की ज्योति जलाए रखी ऐसी विभूतियों को प्रकाश में लाना बहुत ही आवश्यक है। इस दिशा में हम जितनी जल्दी कुछ करेंगे उतना ही अच्छा होगा। इस सबंध में अनेक संस्मरण हैं और अनेक गाथाएं हैं। सब को इस लेख में लिख पाना न तो संभव है और न ही आवश्यक। इतना अवश्य है कि इस दिशा में बहुत काम करने की आवश्यकता है। भारत सरकार ने प्रवासी भारतीयों के लिए विदेश मंत्रालय में एक पृथक विभाग का गठन करके स्वागत योग्य कार्य किया है। आशा है यह विभाग इस दिशा में हर प्रकार से सार्थक पहल करेगा।

□□□

शर्तबंद भारतीय श्रमिकों के संघर्ष में गांधीजी का योगदान

● डॉ॰ सुरेश ऋतुपर्ण

9 जनवरी का दिन आज आप्रवासी भारतीयों के दिवस के रूप में स्थापित हो चुका है। इस तिथि का महत्त्व इस ऐतिहासिक तथ्य में नीहित है कि इसी दिन महात्मा गाँधी साउथ अफ्रीका को छोड़कर, उसकी मातृभूमि से जुड़कर कार्य करने के लिए स्वदेश लौटे थे। मारीशस प्रवास के अल्प खंड में उन्होंने वहां के मजदूरों के लिए क्या महत्त्वपूर्ण कर दिखाया—इसी को स्मृतिपूर्णता दे रहे हैं डॉ॰ सुरेश ऋतुपर्ण अपने इस आलेख में।

भारत में ब्रिटिश राज के दौरान ऐसे अन्य अनेक देश थे जो ब्रिटिश उपनिवेश थे तथा जिनकी समृद्धि के लिए सरकार निरन्तर सक्रिय रहती थी, दास प्रथा की समाप्ति के बाद जब इन ब्रिटिश उपनिवेशों में श्रमिकों का अकाल पड़ गया तो भारत स्थित ब्रिटिश सरकार ने शर्तबंदी श्रमिक प्रथा आरम्भ की तथा भारतीय श्रमिकों को सर्वप्रथम मॉरीशस द्वीप पर भेजना शुरू किया। कालान्तर में इस प्रथा का विस्तार गयाना, त्रिनीडाड, सूरीनाम तथा फीजी जैसे देशों तक हो गया।

इस क्रम में मॉरीशस पहला देश है जहाँ शर्तबंदी प्रथा के अन्तर्गत सन् 1834 में भारतीय श्रमिकों को गन्ने के खेतों में काम करने के लिए भेजा गया। उनके आने से जहाँ एक ओर दास प्रथा की समाप्ति के कारण संकट में पड़े चीनी उद्योग को नवजीवन प्राप्त हुआ तो वहीं धोखे से भेजे गये गरीब, अनपढ़, भोले–भाले भारतीय श्रमिकों के जीवन में एक ऐसे काले युग की शुरुआत हुई जिसका अन्त होने में पूरी एक शताब्दी लग गयी।

वस्तुतः यह एक ऐसी अमानवीय व्यवस्था थी जिसमें एक भारतीय श्रमिक, जिसे 'गिरमिटिया' या 'कुली' नाम से भी पुकारा जाता था, पाँच वर्ष के लिए कड़ा श्रम करने के

लिए विवश था। यह एक दूसरी तरह की गुलामी थी जो गुलामी प्रथा की समाप्ति के साथ ही शुरू हो गयी थी तथा उतनी ही अमानवीय भी थी।

लेकिन अशिक्षा, राजनैतिक सूझबूझ की कमी तथा संगठन के अभाव के कारण वर्षों तक ये श्रमिक इस अन्यायपूर्ण व्यवस्था की चक्की के बीच पिसते रहे। उनकी दारुण वेदना को समझनेवाला और उसे दुनिया के सामने रखने वाला कोई नहीं था।

ऐसे ही अनेक वर्ष बीत गये और तभी एक अजीब से ऐतिहासिक संयोग के फलस्वरूप साउथ अफ्रीका से भारत जाते हुए भारत के नवयुवक बैरिस्टर, मोहनदास करमचंद गांधी 29 अक्टूबर से 15 नवंबर तक मॉरीशस में रुके तो यहाँ के प्रवासी भारतीयों के जीवन में नवचेतना का एक नया अध्याय शुरू हो गया। अपने इस संक्षिप्त प्रवास के दौरान गांधी जी ने अनेक स्थलों की यात्रा की, भारतीय श्रमिकों की दुर्दशा की कहानियाँ सुनीं, उनकी कठिन परिस्थितियों को स्वयं अपनी आँखों से देखा।

गांधी जी के लिए यह एकदम नयी बात न थी। इससे पूर्व वे साउथ अफ्रीका में भारतीय शर्तबंद श्रमिकों की दशा देख चुके थे। रंग–भेद और नस्ल–भेद की अमानुषिक यातना स्वयं भोग चुके थे। अतः मॉरीशस के इन खेतीहर मज़दूरों की मनोदशा और उनकी त्रासदी को वे भली–भाँति समझ कर आत्मसात कर सके थे।

मॉरीशस प्रवास के दौरान वे अनेक स्थानों पर गये तथा जन सभाओं और स्वागत–समारोहों में बोले भी। उन्होंने भारतीय श्रमिकों के सामने दो बातें मुख्य रूप से कहीं–

1) संगठित होकर अपनी राजनैतिक शक्ति बढ़ाओ तथा

2) अपनी सन्तानों को शिक्षित बनाओ।

वस्तुतः ये वे दो मूल मंत्र थे जिन्होंने मॉरीशस के भारतीय श्रमिक समुदाय को नयी दिशा दी तथा आगामी संघर्ष की पृष्ठभूमि तैयार कर दी।

उधर धीरे–धीरे भारत में इन गिरमिटियों के ऊपर होने वाले अत्याचारों की खबरें पहुँचने लगी थी। दक्षिण अफ्रीका में गांधी जी के संघर्ष और सत्याग्रह के कारण रंगभेद और नस्लभेद के अभिशाप से भारत ही नहीं वरन् विश्व समुदाय परिचित होने लगा था। बीसवीं शताब्दी के प्रथम दशक में फीजी से लौटकर आए एक गिरमिटिया श्रमिक पंडित तोताराम सनाढ्य की आत्मकथात्मक पुस्तक "फीजी में मेरे इक्कीस वर्ष" छपी जिसे श्री बनारसीदास चतुर्वेदी ने प्रकाशित करवाया था। इस पुस्तक के प्रकाशन ने गिरमिट प्रथा के अभिशाप की दारुण कथा को पूरे भारत में पहुँचा दिया। इस पुस्तक की प्रेरणा और प्रभाव के फलस्वरूप अनेक साहित्यकारों ने इस समस्या पर रचनाएँ प्रस्तुत कीं। राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त ने 'किसान' नाम का खण्ड–काव्य रचा। प्रेमचन्द की कहानी 'परदेशी' प्रकाशित हुई। दिनकरजी ने भी कविताएँ लिखीं। इस पुस्तक का अनुवाद बांग्ला, गुजराती, मराठी आदि भाषाओं में भी प्रकाशित हुआ। इसको विषय बनाकर कई नाटक भी लिखे गये। समग्रतः कहा जा

सकता है कि इस एक अकेली पुस्तक ने शर्तबंद कुली प्रथा के विरुद्ध तीव्र प्रतिक्रिया और जागरण पैदा कर दिया।

वस्तुत: फीजी के श्रमिकों पर किए गये अत्याचारों की खबरों ने शर्तबंदी प्रथा के विरोध में जनमत बनाने में बड़ी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई थी। सन् 1910 में रेवरैण्ड जे. डब्ल्यू बार्टन ने एक पुस्तक प्रकाशित की–'दि फीजी ऑफ़ टुडे'। उन्होंने इस पुस्तक में लिखा कि शर्तबंदी प्रथा मानवीय गुणों से वंचित और नितांत अपमानजनक प्रथा है। इसी प्रकार, मेथडिस्ट मिशनरी कुमारी हन्ना डडले के पत्रों का सार मार्च, 1913 के 'माडर्न रिव्यू' में छपा, भारतीय स्त्रियों की भर्ती जिस प्रकार की जाती है और जिस प्रकार वे फीजी के कृषि क्षेत्रों में रहती हैं, इसकी हृदय–विदारक दास्तान उनके पत्रों के सार में निहित थी।

दक्षिण अफ्रीका में गांधी जी द्वारा किए गये कार्यों की अनुगूँज से भारत तथा विश्व–समुदाय भारतीय श्रमिकों के प्रति किए जा रहे अत्याचारों से परिचित हो चला था। फीजी में भारतीय शर्तबंद कुलियों पर किए जा रहे अत्याचारों तथा आत्महत्याओं की बढ़ोतरी से भारतीय नेता विकल होने लगे थे।

अपने संक्षिप्त से मॉरीशस प्रवास के बाद भारत लौटने पर मोहनदास करमचन्द गांधी ने अपनी एक रिपोर्ट भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस को सौंपी थी तथा उनकी रिपोर्ट के आधार पर सन् 1907 में मणिलाल डाक्टर का मॉरीशस आगमन होता है। बाद में वे फीजी की यात्रा पर भी जाते हैं।

भारत के महान् जन नेता गोपालकृष्ण गोखले ने भी इस समस्या की विकरालता को समझा तथा शाही विधान परिषद् से इसे दूर करने की अपील की। फलत: सन् 1911 में भारतीय सरकार ने नेटॉल जाने वाले कुलियों पर रोक लगा दी।

सन् 1912 में गोपालकृष्ण गोखले ने उक्त परिषद् में इस प्रश्न को फिर उठाया और अपने अविस्मरणीय भाषण में उन्होंने इस प्रथा की घोर आलोचना करते हुए, तर्क दिए कि यह प्रथा अमानवीय है, धोखे और शक्ति के अनावश्यक प्रयोग पर आधारित है। यह नियम पूर्णत: अनैतिक और भारतीयों के लिए अपमानजनक है। परिषद् के समस्त भारतीय सदस्यों ने इस प्रस्ताव का समर्थन किया लेकिन सरकारी बहुमत के कारण यह प्रस्ताव पारित न हो सका।

गोखले जी का यह प्रस्ताव भले ही पारित न हो सका लेकिन अब तक भारतीय प्रवासी श्रमिकों की समस्या, मानवीय समस्या के साथ–साथ राष्ट्रीय प्रतिष्ठा का प्रश्न भी बन चुकी थी। यह गोखले जी की बड़ी विजय थी। ध्यान रखने की बात यह है कि गांधी जी इस समय भारत में नहीं, वरन् साउथ अफ्रीका में कार्यरत थे।

सन् 1914 में साउथ अफ्रीका में भारतीय लोगों के अधिकारों के लिए संघर्षरत मोहनदास करमचन्द गांधी तथा एच. एस. पोलक की सहायता करने के लिए गोखले जी ने

एक अंग्रेज़ मिशनरी डब्ल्यू डब्ल्यू पियर्सन के साथ रेवरेण्ड सी. एफ. एण्ड्रूज़ को दक्षिण अफ्रीका भेजा।

इस प्रकार देखें तो सन् 1901 में मोहनदास करमचन्द गांधी जी की मॉरीशस यात्रा के बाद से शर्तबंद भारतीय श्रमिकों की समस्या पूरे भारत की प्रतिष्ठा का प्रश्न बन चुकी थी।

सन् 1915 में मोहनदास करमचन्द गांधी भारत लौटते हैं और इसी वर्ष गोपालकृष्ण गोखले की मृत्यु हो जाती है। गोखले जी की अन्तिम इच्छाओं में से एक इच्छा यह भी थी कि घृणित शर्तबन्दी प्रथा समाप्त हो। सी. एफ. एण्ड्रूज़ ने इस दिशा में अपने कार्य जारी रखे तथा फीजी की कई बार यात्राएँ भी कीं।

इस प्रकार बढ़ते राजनैतिक दबावों के फलस्वरूप 15 अक्टूबर, 1915 को तत्कालीन वायसराय लॉर्ड हार्डिंग्ज ने प्रांतीय सरकारों से सलाह करके एक परिपत्र लन्दन भेजा जिसमें उन्होंने इस घृणित नियम को समाप्त करने की सिफारिश की। ब्रिटिश सरकार ने इस प्रस्ताव को मान लिया पर नये नियमों के निर्धारण के लिए पाँच वर्ष के अतिरिक्त समय की व्यवस्था भी कर दी गयी। इस तरह सिद्धांत रूप में सन् 1916 में यह प्रथा समाप्त हो गयी किन्तु प्रत्यक्ष–अप्रत्यक्ष रूप से इसे आगे भी जारी रखा जाता रहा।

फलत: 9 जनवरी, 1917 को इलाहाबाद में पं. मोतीलाल नेहरू की अध्यक्षता में प्रतिज्ञाबद्ध श्रम नियम चालू रखने के विरुद्ध आंदोलन आरम्भ करने के लिए एक बड़ा प्रदर्शन किया गया। रेवरैण्ड सी. एफ. एण्ड्रूज़ इसमें उपस्थित न हो सके लेकिन श्रीपोलक ने उनके परिपत्र को पढ़ा जिसमें फीजी के शर्तबंद श्रमिकों की स्त्रियों के दु:खपूर्ण जीवन का वर्णन था। श्रीमती सरोजनी नायडू ने भारत के पुरुषों से उपनिवेशों में भारतीय स्त्रीत्व के अपमान को रोकने के प्रयास करने का अनुरोध किया।

श्री एण्ड्रूज़ के परिपत्र का अनेक भारतीय भाषाओं में अनुवाद कराया गया तथा उसकी हजारों प्रतियाँ प्रयाग के माघ मेले में वितरित की गयीं ताकि सामान्य जनता धोखे से भर्ती करने वाले आरकाटियों के जाल में न फँसे।

इन सब परिस्थितियों को देखते हुए गांधी जी ने निर्णय लिया कि यह विषय सत्याग्रह के लिए उपयुक्त है और घोषित किया कि जब तक इस पद्धति का अंत नहीं होगा जहाजों के समक्ष धरना दिया जायेगा। अन्तत: 12 मार्च सन् 1917 में भारत की ब्रिटिश सरकार ने उपनिवेशों के लिए प्रतिज्ञाबद्ध श्रमिकों की भर्ती पर रोक लगा दी और इस प्रकार गोखले जी का सपना और उनकी अन्तिम इच्छा उनकी मृत्यु के लगभग दो वर्ष बाद पूरी हुई।

समग्रत: शर्तबंध भारतीय श्रमिकों के संघर्ष में गांधीजी के योगदान को दो रूपों में समझा जा सकता है–

1) प्रत्यक्ष योगदान के रूप हम उनके साउथ अफ्रीका के संघर्ष, मॉरीशस–यात्रा के समय मॉरीशस के गिरमिटियों को दिया गया संदेश, मणिलाल डाक्टर तथा उन जैसे कुछ अन्य लोगों को गिरमिटियों की मदद के लिए मॉरीशस तथा फीजी जैसे

उपनिवेशों में भेजना, भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के अन्तर्गत प्रवासी भारतीयों के प्रकोष्ठ का निर्माण आदि कार्य लिए जा सकते हैं।

2) अप्रत्यक्ष योगदान के रूप में हम भारत की आजादी की लड़ाई को ले सकते हैं। वस्तुतः महात्मा गांधी जी का मुख्य लक्ष्य भारत की स्वतंत्रता थी। वे मानते थे कि यदि भारत स्वतंत्र हो जाता है तो उपनिवेशवादी नीतियों का भी स्वाभाविक अंत अपने आप हो जायेगा।

इसी तरह वे यह भी जानते थे कि यदि भारत को स्वराज्य मिल जाता है तो इसके फलस्वरूप अन्य अनेक देश भी शीघ्र ही गुलामी के शिकंजे से मुक्त हो सकेंगे और तब रंगभेद, नस्लवाद और शर्तबंदी श्रमिक प्रथा जैसी अनेक घृणित प्रवृतियाँ अपने आप समाप्त हो जायेंगी।

अतः यह कहा जा सकता है कि महात्मा गांधी शर्तबंदी प्रथा के विरुद्ध कार्य करने वाले अन्य अनेक लोगों को प्रेरणा, मार्गदर्शन और अपना सक्रिय समर्थन देते रहे। उनके सद्प्रयासों से इस घृणित परम्परा की समाप्ति हो सकी तथा इसमें उन्हें मणिलाल डाक्टर, सी. एफ. एण्ड्रूज़, पोलक, पियरसन, बनारसीदास चतुर्वेदी एवं तोताराम सनाढ्य जैसे महान् व्यक्तियों का पूर्ण सहयोग प्राप्त हुआ। आज निश्चय ही सभी प्रवासी भारतीयों की संतानें महात्मा गांधी के इस महान योगदान के प्रति नतमस्तक होंगीं जिनके प्रयासों के कारण उनके पुरखों को कोड़ों की मार से मुक्ति मिली और अपने-अपने देशों में वे खुले आसमान के नीचे साँस लेने को मुक्त हो सके तथा जनतांत्रिक पद्धति को अपनाकर अपने-अपने भाग्य के विधाता बन सके।

□□□

भारतीय संस्कृति में रचा-बसा है कमल

● ओम प्रकाश कादयान

भारतीय वांग्मय में कमल का विशेष महत्त्व है। राष्ट्रीय पुष्प कमल को पंकज, जलज, अम्बुज, अरविन्द, पुष्कर, पुण्डरीक, पाटक, पदम, उत्पल, राजीव, सरोज, नलिन, वारिज, अब्ज, इन्दीवर, शतदल, सरसिज, पादप आदि अनेक नामों से पुकारा जाता है। इसे अंग्रेजी में लोटस, फारसी में नीलोफर व चीनी में वाटरलीली कहते हैं। कवियों का तो यह पुष्प अति प्रिय रहा है। कालिदास की रचना में शकुन्तला काम ज्वर से पीड़ित हो गई तो उसकी सखियों ने कमल–पुष्प की शैया बिछा दी तथा कमल पात्र से हवा करने लगी कि ज्वर कम हो जाए।

कमल हमारा राष्ट्रीय पुष्प है। कमल का महत्त्व हमारा राष्ट्रीय पुष्प होने तक या मात्र सुन्दरता तक ही सीमित नहीं है, बल्कि वैज्ञानिक उपयोगिता हो, रीति–रिवाज या हमारी संस्कृति की बात हो, कमल का महत्त्व किसी भी तरह से गौण नहीं है। कमल भारतीय संस्कृति का मुख्य प्रतीक है। कमल को हम सारे प्रतीकों का राजा भी कह सकते हैं। कमल प्रेम से खिला हुआ, पवित्रता से सजा हुआ, त्याग से प्रज्ज्वलितं, माधुर्य से परिपूर्ण, ज्ञान से समलंकृत, उत्साह से स्फूर्त, आशा से सुशोभित, आनंद से भरपूर है। एक कथन के अनुसार ईश्वर के सारे अवयवों को हम कमल की उपमा देते हैं। कमल–नयन, कमल–वदन, उर–कमल आदि कहने में कौन–सी मधुरता है? कमल में अलिप्तता का गुण है। पानी में रहकर भी वह पानी से ऊपर रहता है। कीचड़ में रहकर कीचड़ से ऊपर खिलता है, किन्तु अपनी देह पर कीचड़ नहीं लगने देता। कमल अनासक्त है। ईश्वर भी सारा व्यवहार अनासक्त रहकर चलाता है।

कमल बुराई में भी अच्छाई ग्रहण कर अपना विकास करता है। वह कीचड़ में से रमणीयता ग्रहण करता है, गन्दगी को छोड़ देता है। वह रात–दिन तपस्या करके अपना हृदय मकरंद से भर देता है। कमल का मुंह सूर्य की ओर रहता है। प्रकाश को देखकर वह खिल उठता है। प्रकाश खत्म होते ही वह अपनी पंखुड़ियाँ बन्द कर लेता है। उसके खिलने का आधार प्रकाश है। ऐसा लगता है जैसे प्रकाश ही उसके प्राण हों। भारतीय संस्कृति भी प्रकाश की उपासक है। 'तमसो मा ज्योतिर्गमय' भारतीय संस्कृति की आरती है।

आपने कभी देखा होगा कि कमल पर बहुत–सी पंखुड़ियाँ होती हैं। इसी तरह भारतीय संस्कृति में भी असंख्य पंखुड़ियाँ हैं। सैकड़ों जातियां, अनेक वंश, अनेक धर्म, अनेक पंथ–सभी का सार ग्रहण करके भारतीय संस्कृति आगे बढ़ती है। वह एक–एक करके नई पंखुड़ियाँ जोड़ती रहती है। कमल की भी जैसे विभिन्न संस्कृतियों की सैकड़ों पंखुड़ियाँ हों। खिले हुए कमल पुष्प के गीत गाते हुए सैकड़ों भ्रमर उस पर मंडराते हैं, किन्तु कमल उनकी ओर ध्यान नहीं देता। भारतीय संस्कृति हमें कहती है कि कर्म करो, दूसरों की निन्दा छोड़कर अपने लक्ष्य की ओर ध्यान दो। अपने कर्म में तल्लीन होने पर कीर्ति अपने–आप दौड़ी चली आएगी। कमल भी हमें यही सब कहता है जो हमारी संस्कृति हमें कह रही है। कमल कर्मयोगी है, साधना में लीन रहता है। मकरन्द बांटता है। कीचड़ में रहकर बेदाग रहने की प्रेरणा देता है। जैसा कमल गट्टे निकालने के बाद फल का स्वरूप रह जाता है। उल्लेखनीय है कि सृष्टि का विस्तार भी बन्द कमल/पुण्डीर के रूप में ही होता है। हमारा व्यक्तित्व कैसा हो, उसके लिए भी 'पुष्कर पर्ण (कमल) पलाशकम्' ही कहा जाता है। कमल की तरह जीओ। पानी में ही रहो, किन्तु पानी से स्वयं को अलग भी रखो। यह निर्लिप्त भाव का सूचक भी है।

हमारी सृष्टि के रचयिता और पोषक सभी देव कमल से जुड़े हैं। अनेक देवी–देवताओं का तो आसन ही कमल है। अनेक के हाथों में अस्त्र–शस्त्र के अलावा कमल भी देखा जा सकता है। अभी तक कोई भी अन्य पुष्प किसी देवी–देवता के आसन रूप में दिखाई नहीं दिया, न ही किसी के हाथ में। डॉ. गुलाब के अनुसार ब्रह्मा, विष्णु, सरस्वती, गणपति आदि सभी देवता सृष्टि विकास के देवता हैं। सभी का कमल से संबंध है। ये अक्षर सृष्टि के अंग हैं। अक्षर सृष्टि ही प्राण का विस्तार अक्षर से ही होता है। यूं तो अक्षर सृष्टि भी अव्यय से होती है, किन्तु वहां तक हमारी पकड़ ही नहीं है। इसीलिए ब्रह्मा, विष्णु, महेश आदि अक्षर के अंग होते हुए भी हमारे लिए ईश्वर श्रेणी में आते हैं। अक्षर पुरुष की पांच कलाएं होती हैं–ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्र, अग्नि और सोम। ब्रह्मा, विष्णु और इन्द्र ही अग्नि और सोम के योग से देने वाली है। इनके दोनों हाथों में कमल हैं। विष्णु के साथ क्षीर सागर में इनका वास है। जो कुछ ब्रह्माण्ड में होता है, वही सब कुछ, उसी तरह हमारे शरीर में भी घटित होता है। अतः हमारा शरीर ब्रह्माण्ड की ही प्रतिकृति दिखाई पड़ता है। एक हमारा स्थूल शरीर है, एक सूक्ष्म शरीर ही हमारे स्थूल और कारण शरीर को भी जोड़े रहता है। यह सारा कार्य हमारी षट्चक्र व्यवस्था के माध्यम से होता है। इन्हीं के माध्यम से बाहरी प्राणों से अन्न ग्रहण किया

जाता है और इन्हीं के माध्यम से विसर्जन होता है। इन चक्रों का स्वरूप भी कमल दल के रूप में ही दिखाई पड़ता है। मूलाधार–चार दल कमल, स्वाधिष्ठान–छः दल कमल, मणिपुर–दस दल कमल, अनाहत 12 दल कमल, विशुद्धि–16 दल कमल, आज्ञा–दो दल कमल और सहस्त्रार एक सौ (असंख्य) दल कमल हैं। सबसे ऊपर सहस्त्र दल कमल की स्थिति है। आज तो इन चक्रों के चित्र भी उपलब्ध हैं। इनकी कार्यप्रणाली और प्रभावों को भी जान लिया गया है। इनके अध्ययन से एक बात यह भी सामने आई कि इन चक्रों के केन्द्रों की बनावट भी कमल फल की तरह ही होती है।

कमल लक्ष्मी का प्रिय रहा है। कमल की अधिष्ठात्री देवी भी 'कमला' के नाम से ही जानी जाती है। यूं तो लक्ष्मी के भी अनेक स्वरूप हैं, किन्तु दीपावली पर कमला की ही पूजा–अर्चना की जाती है। कमल और लक्ष्मी को लेकर हमारे धार्मिक ग्रन्थों में बहुत कुछ लिखा गया है। कमल की देवी लक्ष्मी का सर्वप्रथम उल्लेख ऋग्वेद की एक संहिता की ऋचा में मिलता है। उसके अनुसार लक्ष्मी हुई कमल पर पड़ी है तथा कमल पुष्पों की मालाएं पहने हैं। एक बार इन्द्र ने कहा था, "सम्पूर्ण लोकों की जननी, विकसित कमल सदृश्य नेत्रों वाली भगवान् विष्णु के वक्षःस्थल में विराजमान कमलोद् भवा श्री लक्ष्मी देवी! मैं नमस्कार करता हूँ। कमल–पुष्प ही जिसका निवास स्थान है, कमल ही जिनके कर–कमलों से शोभायमान है तथा कमल दल के समान ही जिनके नैन हैं, उस कमलामुखी व कमलनाभप्रिय श्री कमल देवी की मैं वन्दना करता हूँ"।

'श्री विष्णु पुराण' में वर्णन है कि अमृत प्राप्ति के लिए जब क्षीर सागर का मंथन किया जा रहा था तब अन्य दिव्य वस्तुओं के साथ कमल का जन्म हुआ, उसी पर आसीन थी लक्ष्मी देवी।

"ततः स्फुरत्कान्तिमयी विकासिकमले स्थिता

श्रीर्देवी पयसरतस्मादुभ्दूता धृतपाड़कजा।" (श्री विष्णु पुराण)

बाद में लक्ष्मी ने भगवान् के गले में कमलों की माला पहना दी जिसके चारों ओर मस्त मधुकर मंडरा रहे थे। फिर लज्जा भरी मुस्कान व प्रेमभाव में विलीन हो उनको देखती हुई भगवान् के पास खड़ी हो गई।

'श्री सूक्ति' ग्रन्थ में लक्ष्मी को पद्मवर्णा, पद्ममालिनी कहा गया है। 'श्री विष्णु पुराण' में कमलहस्ता, कमलाभा व कमलवसना नामों से पुकारा है। पद्मानाभ (विष्णु) की नाभि से निकले कमल पर ब्रह्मा का वास है। भगवान विष्णु तथा लक्ष्मी का प्रिय पुष्प तो कमल रहा ही है। संगीत व शिक्षा की देवी सरस्वती माँ का प्रिय भी कमल रहा है। श्वेत कमल सरस्वती का आसन है–

'श्वेत कमलासना भा पातु सरस्वती भगवती विशेष जायादमा।'

सरस्वती श्वेत कमल पर और लक्ष्मी श्वेत–रक्त कमल पर आरूढ़ रहती हैं। गणपति की भी दस भुजाओं में से एक में कमल है।

भारतीय वांग्मय में कमल का विशेष महत्त्व है। राष्ट्रीय पुष्प कमल को पंकज, जलज, अम्बुज, अरविन्द, पुष्कर, पुण्डरीक, पाटक, पदम, उत्पल, राजीव, सरोज, नलिन, वारिज, अब्ज, इन्दीवर, शतदल, सरसिज, पादप आदि अनेक नामों से पुकारा जाता है। इसे अंग्रेजी में लोटस, फारसी में नीलोफर व चीनी में वाटरलीली कहते हैं। कवियों का तो यह पुष्प अति प्रिय रहा है। कालिदास की रचना में शकुन्तला काम ज्वर से पीड़ित हो गई तो उसकी सखियों ने कमल–पुष्प की शैया बिछा दी तथा कमल पात्र से हवा करने लगी कि ज्वर कम हो जाए। कालिदास ने अपनी रचनाओं में कमल को अनेक जगह चित्रित किया है। बिहारी ने कमल को अनुराग–शृंगार का प्रतीक माना है। रामधारी सिंह दिनकर, मैथिलीशरण गुप्त, सुमित्रानन्दन पन्त, सूरदास, तुलसीदास व मीराबाई आदि कवियों ने भी कमल को अपनी रचनाओं में विशेष स्थान दिया है। नागार्जुन ने झीलों में खिले कमल के फूलों पर गिरती हुई इन्द्रधनुषी छोटी–छोटी बूँदों के गिरने का सुन्दर चित्रण किया है। रामायण व महाभारत में भी यह पुष्प वर्णित है। कवियों ने इसे कोमलता, शुचिता, सौन्दर्य, दिव्यता, मादकता, निर्मलता, श्रद्धा व पूजा का प्रतीक माना है। वेदों से लेकर सभी प्रमुख रचनाएं कमल के सौन्दर्य वर्णन से भरी पड़ी हैं।

हिन्दूकाल की स्थापत्य कला में भी कमल को खूब उकेरा गया है। हमारे देवी–देवताओं के आसन अधिकतर कमल ही होते हैं। खजुराहो व भरहुत के शिल्प में मृणाल सहित कमल के फूल हाथ में लिए सुन्दरियों की अनेक मूर्तियाँ हैं। अजन्ता के शिल्प में भी कमल कई जगह उकेरा है। सिन्धु घाटी की खुदाई में एक ऐसी प्रतिमा मिली है जो निर्वस्त्र है तथा बालों में कमल का फूल सजाये हुए है। कला के क्षेत्र में सर्वप्रथम कमल इसी प्रतिमा में उकेरा माना जाता है। यह प्रतिमा ईसा से 3000 वर्ष पूर्व की मानी जाती है।

बौद्धों ने करीब 2000 वर्ष पूर्व कमल को ही धार्मिक प्रतीक के रूप में अपनाया था। बौद्ध धर्म के साथ ही कमल एशिया के कोने–कोने में फैल गया। चीन की संस्कृति में कमल के लिए एक महत्त्वपूर्ण स्थान है। जैन धर्म के 24 तीर्थों में पद्मासीन यानि पद्म (कमल) पर आसीन दिखाया गया है। एशिया के देशों की विभिन्न संस्कृतियों के बीच एक अच्छा सामंजस्य स्थापित करने में कमल का जितना योगदान है, उतना और फूलों का नहीं। स्वतन्त्रता संग्राम में भी कमल की विशेष भूमिका रही है। 1857 से पूर्व एक क्रान्तिकारी संगठन के सिपाहियों के लिए लाल कमल विशेष चिह्न के रूप में था। चित्रकारों व भित्तिचित्रकारों ने भी इसे खूब चित्रित किया है। लोक कथाओं में कमल का विशेष महत्व है।

□□□

कञ्चन मृग

● पंकज परिमल

स्वर्ण मृग के पीछे लगी दौड़ को केवल रामकथा के महत्वपूर्ण क्षेपक का स्थान प्राप्त नहीं है बल्कि वह माया के पीछे के मोह को विखंडित करने की भारतीय सांस्कृतिक मनीषा का विनम्र अनुरोध भी है। यदि भारतवंशियों के विदेशों में जाने, वहां के स्रोतों से अकूत धन कमाने पर भी स्वदेश–अपनी जड़ों में लौटने की लालसा दीखती है तो उसके पीछे वह हमारा निरा भारतीय मन ही है। इस आलेख में कथा के बहाने एक पूरा दर्शन भी समाहित हुआ प्रतीत होता है।

राम को कंचन मृग के पीछे जाना ही पड़ा। राम सीता पर मुग्ध थे, सीता राम पर। सीता, जो राम का साथ पाने के लिए कंचनमहलों को छोड़ आयी थी, सारे सुख, सारे ऐश्वर्य, सारे भोगों को तिलाञ्जलि दे आयी थी, रूखा–सूखा जो मिल गया, कन्दमूल और फल में तृप्त होकर अपने राम के सामीप्य में आनंदित थी, उसके उस विरल आनंद के उस दुर्लभ क्षण में कब कञ्चन मृग प्रवेश कर गया? कब वे देव–दुर्लभ भोग, जिनसे विरत होकर वह अपने राम के साथ इस विरल–एकांत में आ गई थी, उसके उस कमज़ोर त्याग पर अट्टहास करते हुए आ गए ... मृग ही नहीं, सोने का मृग, हिरण्मय हिरण, मृण्मयी को, मिट्टी की, म्रियमाण मिट्टी की, भूमि की बेटी को मुग्ध करने लगा, ऐसा मुग्ध करने लगा कि वह हिरण्यमय पुरुष को भी हिरण को प्राप्त करने का साधन मात्र समझ बैठी। जो कभी साध्य था, आज वह साधन बन गया। आज वह उस राम से कहती है, तुम मेरे लिए उस स्वर्ण मृग को ला दो–भूल गई कि ऐसा कहकर वह साध्य को साधन बना रही है। साध्य का सम्मान अपने राम से छीनकर स्वर्णमृग को दे रही है।

सीता मृग मांगती तो दूसरी बात थी। वह मृण्मयी थी। मृण में विचरने वाले मृग के प्रति उसकी सहज आकांक्षा हो सकती थी–पर उसने हिरण्यमय हिरण माँगा–दिव्य, दीप्त, सुवर्ण,

अपार्थिव, अपूर्वदृष्ट, अलम्य मृग। उसने अपने हिरण्यगर्भ को हिरण के पीछे दौड़ा दिया... लेकर ही आना। राम के कानों में गूँजता रहा प्राणप्रिया का यह अनुरोध–लेकर ही आना....और वे सोने के मृग की मरीचिका में उलझकर गहरे वन में प्रवेश कर गए। अपनी सीता से दूर चले गए और सीता ने राम से स्वयं को अनजाने में दूर कर लिया।

राजमहल हो या पर्णकुटी....मृग के प्रवेश का निषेध कहीं नहीं है। भौतिक प्रलोभन हर जगह चले आते हैं। वे भौतिक रहें तो गनीमत, वे हिरण्यमय होकर आते हैं, दिव्य बनकर आते हैं और हमारी दृष्टि को बाँध देते हैं। वे सम्मोहन करते हैं, उच्चाटन फैलाते हैं और अपनी मोहक छवि का विस्तार करके हमारे किन दुर्लभ क्षणों में हमारा मारण तक कर डालते हैं, पता ही नहीं लगता। मृग हैं तो स्थिरता उनका स्वभाव नहीं....वे हमारे परितः भटकते रहते हैं–कभी पास आते हैं, कभी दूर जाते हैं, कभी मुग्ध करके हमारा आमंत्रण करते हैं, कभी वशीकरण, तब तक, जब तक कि हम मृग–तृष्णा में मृग–मरीचिका में बँधे हुए भटकना नहीं शुरू कर देते।

कंचन मृग होता नहीं, कंचनमृग लगता है। वह साधारण–सा भौतिक मृग हिरण्यमय बनकर दिखाई देता है, इसलिए अधिक मुग्ध करता है। साधारण में जब विशेषता की छाया आरोपित कर दी जाए तो वह अधिक मोहित करता है। विशेषता जहाँ आ गई, वहाँ ह्रास हुआ समझो...साधारणं तु वृद्धि, विशेषं तु ह्रासस्य कारणम्। यह आयुर्विज्ञान का सिद्धान्त है, तीनों दोष समान अनुपात से बढ़ें तो शरीर बढ़ेगा, कोई एक विशेषता पाकर बढ़ने लगे तो ह्रास सुनिश्चित है। क्योंकि कंचनमृग होता नहीं इसलिए उसे मायामृग कहते हैं–'मा' का अर्थ 'नहीं', 'या' का अर्थ 'जो' अर्थात् जो है ही नहीं, वास्तव में जिसके दिव्य हिरण्यमय स्वरूप की सत्ता ही नहीं, वह पार्थिव मृग, वह नाशवान् मृग। और उस अदिव्य के पीछे, उस आभास के पीछे, उस चमक के पीछे, उस लोभ के पीछे, हम अपनी सारी शक्तियाँ सँभाल कर, धनुष की प्रत्यंचा कान तक खींचकर, आखेट के तीर को चढ़ाकर, अपनी सम्पूर्ण एकाग्रता से, अपनी शांति को, अपने सुख को, अपनी प्राणप्रिया सीता को, घनघोर वन में, अदृश्य शक्तियों की अभिरक्षा में छोड़कर भटकते हुए घोर वन में हिरण द्वारा निर्देशित अज्ञात दिशा की ओर निकल पड़ते हैं। हमारी शक्तियाँ मृग की चपल गति से स्पर्धा करती हैं। हमारे चरण मृग के पीछे–पीछे और मृग हमें छकाना चाहता है। वह हमारा आखेट बनने के लिए रुकता नहीं, पर रुकने का नाटक करता है, छल करता है। मृग के जीवन का अंतिम परिणाम बाण विद्ध होना है, अपने प्राणों का उत्सर्ग करना है, चाहे किसी क्रूर हिंस्र आखेटक जन्तु के तीक्ष्ण नखों से अपने शरीर को विदीर्ण कराकर करे, या सभ्य सुसंस्कृत व्यक्ति की मृगया करने की आदिम मनोवृत्ति का शिकार बने, यह जानकर भी वह हमें छलना नहीं छोड़ता। वह दौड़ता जाता है, रुक–रुक कर हमें आमंत्रित करता है और मरने के पूर्व, विद्ध होने के पूर्व हमारी संपूर्ण क्षमताओं की, हमारे धैर्य की, हमारे कौशल की परीक्षा ले डालता है। हमारी सारी ऊर्जा, हमारा सारा कौशल, ऐसे किसी एक मृग के पीछे, या ऐसे–ऐसे कई हिरण्यमय मृगों के पीछे,

ता–उम्र भागते–भागते व्यय हो जाते हैं। और जिसके लिए, जिसके सुख के लिए, जिसके आदेश का पालन करने के लिए हम इस मृगया के लिए, इस प्रतिस्पर्धा के लिए अपने संपूर्ण कौशल को झोंक डालते हैं, अपनी संपूर्ण शांति का होम कर डालते हैं, वह हमारी पर्णकुटी में कहीं पीछे छूट जाती है, छूट ही नहीं जाती, हरी भी जाती है।

हिरण्यवर्णां हरिणों सुवर्णरजतस्रजाम्। वह तो स्वयं हिरण्यवर्णा थी, उसे भी हिरण्यमय मृग ने मोह लिया। लगा होगा यह मेरे अनुरूप, मैं इसके अनुरूप तो यह मेरा हो, मुझे ही मिले। ऐसी व्यग्रता चिंतन में व्यापी, अपने कवच को भी दूर कर लिया। विवेक दृष्टि पर चिंतन की ऐसी पट्टी बँध गई, कि साधु और असाधु का भेद भी न पता चला। असाधु को, दुष्ट को अपना हितू समझने लगी, उसके प्रति सहज कर्त्तव्य से भर उठी–गृहिणी के कर्तव्य से, दान देने के कर्त्तव्य से। लक्ष्मण की आज्ञा भूल गई, साधु की आज्ञा भली लगने लगी। क्यों? चेतना को तो कंचनमृग हर ले गया था। रावण ने विचारा कि जो स्त्री माया–मृग और वास्तविक मृग का भेद नहीं जान सकी, वह असाधु और साधु का भेद क्या जानेगी, उसे ठगना तो बहुत सरल है। किसी को ठगना है तो उसकी विचार शक्ति को पहले शून्य करो, उसके विवेक को भ्रष्ट करो क्योंकि जिसका विवेक भ्रष्ट होगा, उसका सौमुखी पतन निश्चित है। और जिसका पतन हो जाएगा, उसे अपने साथ ले जाने में कोई उद्यम नहीं करना पड़ेगा। मर्यादा का उल्लंघन भी सीता ही करे, स्वयं को विधि–वंचक होने से बचाना है, यह रावण की नीति है। वे कामनाएं ही हैं, अभीप्सा और अभिलाषाएं ही हैं जो हमें मर्यादा के प्रति सजग नहीं रहने देतीं। जब हमारी अभीप्साओं का तरल जल यज्ञ की समिधा को सिंचित करने लगता है तो लोभ और मोह का घटाटोप धुँआ परिवेश में भरने लगता है और विवेक की तीक्ष्ण लौ मंद हो जाती है। सीता चुराई नहीं गई, उसे ठगा गया। चुराने और ठगने में एक अंतर है। चुराने में पूरा उद्यम चोर करता है विधि की प्रवंचना के लिए चोर पूर्ण रूप से उत्तरदायी है। ठग अपने लाभ का उद्यम तो करता है तो विधि की प्रवंचना नहीं करता। चोर का दंड–विधान सरल है, ठग का कठिन, क्योंकि वह विध–वंचक नहीं है। ठग तो ऐसी परिस्थितियाँ उत्पन्न करता है कि ठगा जाने वाला विधि को स्वयं ही लाँघ कर बाहर आ जाए और जो विधि छोड़कर आ जाए, जो निषेधों को अमान्य करके आ जाए, उसका अपहरण, उसकी चेतना का, उसके अस्तित्व का अपहरण कर लो। ठगे जाने में हमारी भी उद्यमिता है, हम सतर्क और सजग नहीं रह सके। कबीर ने तो कहा–माया महाठगिनी हम जानी। माया बहुत बड़ी ठग है, मिथ्याभाव बहुत बड़ा ठग है।

आज हमारे सम्मुख जितने भी प्रलोभन हैं, जितने भी मायामृग हैं, वे सब रावण के भेजे हुए हैं। वे मृग चतुर हैं, इस विद्या में दीक्षित हैं कि हमें मोहित कर सकें, हमें अपने पीछे भागने के लिए प्रेरित कर सकें। पर प्रेरित हों, मोहित हों, अपनी मर्यादाओं का त्याग करें, विधि की अवहेलना हम करें, इसके लिए मृग उत्तरदायी भले हो, पर वह प्रकटतः दोषी नहीं है, स्वयं के ठगे जाने में हमारा ही दोष है। मृग को पाने के लिए हम करापवंचन करें, नैतिक मर्यादाओं

को छोड़ें, भोग को लब्ध करने की विधि सम्मत विधि से इतर विधि का संधान करें—यह बेशक मृगों को हमारे परितः घूमने के लिए उनके नियोजकों ने निर्धारित किया हो, पर अंतिम रूप से अपने ठगे जाने में, विधि की वंचना करने में हम ही दोषी हैं। जब सीता को अपने ठगे जाने का अहसास हुआ तो वह तिलमिलाई – अरे, यह क्या हो गया? पर ठगी तो जा चुकी थी, एक मृग की कामना के निमित्त से। रावण ने कहा—सोने का इतना लोभ? आ, तुझे सोने की लंका में ही ले चलूँ, स्वर्णमहलों की साम्राज्ञी बना दूँ। अब सीता को बोध हुआ। बोध हुआ तो वे स्वर्ण कंगन, वे स्वर्णकुंडल और जिन्हें सौभाग्य–चिह्न मानकर, सर्वस्व त्याग कर भी अयोध्या के राजमहल से साथ लेती आई थी, वे भी स्वर्ण–रजत आभूषण क्षण भर में उतारकर फेंक दिए। फेंक दिए तो जो मोह क्षण भर को चित्त को आच्छदित किए हुए था, वह नष्ट हो गया। मोह नष्ट हो गया, संस्कारों की स्मृति लौट आई—नष्टो मोहः स्मृतिर्लब्धः. ...और यहीं पर सीता के अधःपात की तैयारी रुक गई। वह स्वर्णलंका में नहीं गई, अशोक वाटिका में ही रुक गई। हमारी अपनी इच्छा के विपरीत कोई कितना भी शक्तिशाली हो, हमें स्वर्ण–महलों में नहीं ले जा सकता। हम स्वयं दुर्बल होंगे, स्वयं को ठगाने को आतुर होंगे, तो ही स्वर्णमहलों के उस तंत्र को स्वीकारेंगे। रावण ने सीता की देह को बंदी बनाया तो अशोक वन में रख सका, आत्मा को बंदी बना पाता तो महलों में रखता। उसके हाथ तो सीता की छाया ही लगी। असली सीता तो उसके हाथ से उसी क्षण छूट गई जब उसने स्वर्णाभूषण उतार कर वे तथाकथित मिथ्या सौभाग्य चिह्न उतार कर फेंक दिए। किसी परमवीर, शक्तिशाली रावण तक में यह हिम्मत नहीं है कि सीता की इच्छा के विरुद्ध, स्वयं नियम कानून तोड़कर वह उसे अपने महलों में बंदिनी बना सके; वह बार–बार सीता को ही प्रेरित करता है मर्यादा तोड़ने के लिए, स्वयं का ठगा जाना स्वीकार करने के लिए। इसलिए वह बार–बार अशोक वाटिका में जाकर अनुनय करता है, बल दिखाता है, मृत्युभय दिखाता है, त्रास देता है, पर हर बार हर संकेत से, सीता की पहल की ही प्रतीक्षा करता है।

सीता ने राम के साथ वन में रहना तो स्वीकार कर लिया, पर चित्त की वृत्तियों का विरोध नहीं किया। चित्त की वृत्तियों के विरोध के बिना भौतिकता के त्याग का कोई अर्थ नहीं है। जैसी ही हिरण्यमय मृग आएगा हमें ठगने के लिए, हमें हमारा पीछे छूटा हुआ वैभव याद आ जाएगा। हमारे अभिजात्य संस्कार, हमारी सुरुचियाँ, हमारा सौन्दर्यबोध याद आ जाएगा। जहाँ यह सब याद आने लगेगा, वहीं वनवास नहीं रह जाएगा, हमारी तृप्ति, तृष्णा में बदल जाएगा। साध्य से सबको प्रेम होता है, साधन से किसी को नहीं। साधन के प्रति हमारी जो आसक्ति है, वह तभी तक है जब तक वह सिद्धि दिलाने में उपयोगी है। जिस क्षण वह उपयोगिता समाप्त हो जाएगी तो साधन के प्रति जो आसक्ति, या प्रेम है, वह भी समाप्त हो जाएगा। हो सकता है उसकी दुर्गति पर, उसकी समाप्ति पर हम कुछ विषण्ण हों, हो सकता है हमारी आँखों से कुछ आँसू निकल आयें, हो सकता है उसके विराग में, उसके वियोग में हम कुछ अन्यमनस्क हो जायें, हो सकता है कि कुछ दिन एक गहरा अवसाद हमें

घेरे रहे, हो सकता है उस साधन के सान्निध्य में बिताए कुछ पल लगातार याद आ आकर हमें विचलित करते रहें, पर इन क्षणिक घटनाओं से साधन के प्रति हमारी संसर्गगत आसक्ति साध्य के प्रति हमारे अभिन्न प्रेम में नहीं बदल जाएगी। अभिन्न प्रेम वह हुआ कि साध्य को, प्राणप्रिय को अपने से दूर करने की, किसी क्षणिक आनंद के उपादान के आखेट के लिए ही सही, अपने से अलग करने की, भिन्न करने की हम कल्पना भी न करें। सीता ने की–कहा, जाओ, हिरण्यमय मृग को मेरे सुख के लिए लेकर आओ, लेकर ही आना।

हमारे कानों में निरंतर एक ही ध्वनि गूँज रही है–लेकर ही आना। छल से, बल से, युक्ति से, कौशल से, भक्ति से, शक्ति से, मंत्र से, तंत्र से, युद्ध से, प्रीति से, नीति से, अनीति से, मारण से, मोहन से, उच्चाटन से, वशीकरण से, अपनी सुख–शांति गँवाकर, अपना सर्वस्व लुटाकर, उस स्वर्णमृग को, अपने लिए, या अपने प्राणप्रिय के लिए, येन–केन लेकर ही आना है।

हमें पता नहीं लगता है कि अपने कौशल का तीर धनुष पर अनवरत् साधे–साधे उस छलिया मृग के पीछे, हम घोर जंगल के किस गहरे भाग में धंस गए। अपने मूल स्थान से, अपनी अंतश्चेतना से कितना दूर आ गए, इतना दूर आ गए कि वापिस लौटना हमारे लिए संभव न रहा। हिरण जिस क्षण हमारे बाण से विद्ध हो रहा, उस क्षण उसके मुख से कातर स्वर में हमारे ही आत्मीयों का नाम, हमारी ही आवाज़ से निकल पड़ा। मृगया के व्यसन से बँधे हम जिन आत्मीयों को थोड़ी देर के लिए ही सही, बिसरा बैठे थे, उनकी सुधि भी हमें जाते–जाते हिरन दिलाता गया। हम जो थोड़ी बहुत सुरक्षा का सम्बल अपने पीछे अपनी प्राण प्रिया के लिए छोड़ आए थे, उसने उस सुरक्षा के कवच को भी त्याग कर, हमारे किसी अनिष्ट की आशंका से हमारे ही पीछे कर दिया और अपनी अनुपस्थिति में जो अनुबंध हम पीछे छोड़ गए थे, उस अनुबंध से, हमारे द्वारा उस क्षण मृग नहीं मरा, हम मर गए, हमारे साथ हमारे आत्मीय संबंध और उन संबंधों के प्रति हमारे दाय भी हमारे जानने और न जानने के दौरान मरते चले गए। और अपने आखेट में सफल होकर जब हम अपनी जगह लौटना चाहते हैं, तो लौट नहीं पाते। हमारा स्वागत करने के लिए शेष रहती है वीरान कुटिया, और तो और, हमारी आखेटित वस्तु भी, उसका दीप्त सौंदर्य भी, उसे पाने में हुए दुर्लभ पराक्रम की स्मृति भी हमें मुग्ध नहीं कर पाती, मोह का वह बादल लुट जाने के, सर्वस्व गँवा देने के तीव्र भय की झंझा के प्रचंड आघात से क्षण भर में ही छिन्न–भिन्न हो जाता है।

मृग हमारे सामने स्तंभित होता है–मानों कहता है मेरा आखेट तो बहुत सरल है, उठो और आखेट कर लो। मृग गहरे वन में प्रवेश करता है – मानो कहता है कि गहरे वन में, लता गुल्मों से आच्छादित वन में, हिंस्र जीवों से भरे इस वन में तुम घुसने और आखेट कर सकुशल लौटने की कला जानते हो या नहीं? भोग हमें खूब छकाते हैं–कभी मूल्यवान होकर तो कभी मूल्यहीन होकर अपना सहज स्तंभन करके, कभी चमक दिखाकर, कभी दूर दौड़ाकर........

जब तलक रुपए जुटाए मूल्य रुपए का हुआ क्षय
चाहतें शो केस में ऐंठी हुई कैसे करें क्रय?

हम अपनी उद्यमिता से मोल जुटाते हैं तब तक मोल बढ़ जाता है, हमें लगता है थोड़ा सा श्रम और...कभी वह स्तंभित होता है, मोल गिराता है, मानो हमारे हाथ में पहुँच गया, बस अब पकड़ना बाकी है। पर हर स्थिति में वह हमारी आँखों के सामने, हमारी दृष्टि के सापेक्ष बना रहता है, चाहत को अंकुरित किए रहता है—कभी मृग का मोल बढ़ता है, कभी रुपए की क्रय शक्ति घट जाती है।

हम मृगया के लिए जुट गए हैं। उत्तम विद्याभ्यास, बलिष्ठ देहयष्टि लेकर, हम मृग को बींधने निकल पड़े हैं। जिसके पास जो कौशल है, जिसके पास जो युक्ति है, जिसके पास जो विद्या है, वह उसी के प्रयोग और परीक्षण में, सतत अभ्यास में जुट गया है। जिसके पास सौन्दर्य का बल है, सुन्दर देहयष्टि है, उसके लिए वही आखेटक अमोघ अस्त्र है। वे सौन्दर्य स्पर्धाओं में, मॉडलिंग के जरिए, मोहक मुस्कान फेंककर, देह को विभिन्न कोणों से मोड़कर उस मृग की साधना में लगे हैं जो है तो मृण का, पर भासता है हिरण्य का। जिसके पास वाणी का बल है, वह वक्तृता के बल से, लोगों को सम्मोहन में बाँधकर हिरण को अपने आसन तक खींच लाता है। जिसके पास चातुर्य है वह हिरण को पाने की युक्तियों का संधान करने में लगा है। जिसके पास बल है वह आश्वस्त है कि हिरण को कोई दूसरा नहीं ले जा सकता क्योंकि रत्नभुज, रत्नों का भोग करने वाले वे ही हैं। जो छलविद्या में निपुण हैं वह अपनी विधि से, जो द्यूत विद्या में पारंगत है, वह अपने पासे खेलकर, जो कूटनीति का आचार्य है, वह अपनी व्यूहरचना से, जो राजनीति में कुशल है वह साम से, दाम से, दंड से, भेद से चारों युक्तियाँ अपनाकर, कोई जनबल से, कोई बाहुबल से...सभी तो लगे हैं माया—मृग की साधना में।

मृग बार—बार हमारी पर्णकुटी तक आता है—अपनी आँखें मटकाकर, अपने मौन से, अपनी भंगिमाओं से, अपने सुवर्ण स्वरूप से हमें आखेट आमंत्रण देता है। वह आता है हमारे जाग्रत में, आता है हमारे स्वप्न में, आता है हमारी सुषुप्ति में। आता है हमारी द्विविधाओं की देहरी को लाँघकर, आता है हमारी सुविधाओं को आवाज़ देता। ...जो छलेगा नहीं, जो आखेट करना नही जानेगा, वह जिएगा नहीं। आखेटक वृत्ति हमारे जीने की शर्त बन जाती है। तरह—तरह की भोग सामग्रियाँ हमें आमंत्रित कर रही हैं—हमारे वातायन में प्रवेश करके, हमारी खिड़कियों में बैठकर, हमारी दृष्टि को बाँधकर, धीरे—धीरे अपने विरल स्वरूप को उद्घाटित करती हुई, दिव्य देह—यष्टि पर से सुनहरे शल्की आवरण फेंकती जा रही हैं। ये स्वयं जितना—जितना अनावृत्त हो रही हैं, उतना आवरण हमारे विचारों के केन्द्र पर, उसकी परिधि पर प्रक्षिप्त करती जा रही हैं। मृग हमारे परिवेश से अपना तादात्म्य स्थापित करने में लगे हैं। मृग हमें अपने लिए, हमारे सुख के लिए, हमारे विलास के लिए, हमारी सामाजिक—आर्थिक प्रतिष्ठा और मान—सम्मान के लिए अपनी अपरिहार्य आवश्यकता बनाने

में लगे हैं। मृग हमें अपने पीछे उस क्षण तक दौड़ाने में लगे हैं, जब तक कि हम थक कर चूर नहीं हो जाते, जब तक कि हमारी क्षमताएं समाप्त नहीं हो जातीं, जब तक कि हम अपने प्रिय से और स्वयं अपने आप से भी, इतनी दूर नहीं चले जाते कि लौट कर न आ पायें।

मृगों को हमारे हाथों विद्ध होने का, यूँ ही प्राण दे देने का, यूँ ही मर जाने का कोई शौक नहीं है। यह मृग–मरीचिका पहले भी हमारे जीवन में आई थी। इसका उद्देश्य था हमारे सत्कार्यों में, हमारे यज्ञ में विघ्न डालने का। पर हम सजग थे, अपने अवबोधक गुरू के साथ थे, हम अपने कर्त्तव्यबोध से बँधे थे, हम अपने ज्ञान की साधना में जुटे थे। उस समय वह बल के साथ प्रस्तुत हुई, सुबाहु को साथ लेकर आई, हमारी क्षमताओं को धिक्कारती हुई, ताड़ना करती हुई ताड़का की तरह पहुँची यह मरीचिका। उस समय यह बल के साथ आई थी, छल के साथ नहीं। सो यह मरीचिका हमें भटका नहीं पायी, हाँ, हमारी दृष्टि में कौंधकर, हमारे बल का संज्ञान लेकर लुप्त हो गई थी। जब यह सुबाहु के साथ आई तो हमारी देह में भी बल था, हमारी शिराओं में नवीन रक्त था, बल का बल से प्रतिकार करने की दीक्षा हमें मिली थी, ताड़ना को हँस कर टाल जाने की सह जाने की, क्षमता थी, और मारीच का तो हमने बिना फल के बाण से मात्र तिरस्कार करके छोड़ दिया। माता–पिता बच्चे से कहते हैं अमुक वस्तु फेंक दो, यह अच्छी नहीं है। बच्चे को वह वस्तु आकर्षित तो कर रही है पर आदेश का पालन करने की आज्ञाकारिता से बँधकर उस वस्तु का तिरस्कार कर देता है, मुँह से उन शब्दों को दोहराता हुआ—अच्छी नहीं है। मारीच इस तिरस्कार की आँच में वर्षों तपता है पर स्वयं वापिस नहीं आता। आता है तो किसी और का निर्देश पाकर। उस समय हम इस मृग–मरीचिका से बचकर निकल पाए थे तो कारण था गुरू का साथ, हम अपने ज्ञान की साधना में भी जुटे थे, विद्यार्थी के पञ्चलक्षणों की आचारसंहिता से बँधे थे। आज नहीं बच पाए क्योंकि हमारा अंवबोधन करने वाला कोई न था, आज हम अपने ज्ञान की साधना में न जुटे थे, अपितु अपने ज्ञान और कौशल की परीक्षा में सफल होना चाहते थे। उस दिन इस मृग को हमने तिरस्कृत न किया होता तो आज उसके प्रतिशोध में हम न जलते। वह हमारे बल और ज्ञान की थाह पाकर लौटा था, हम समर्थ प्रतिबल थे, ज्ञान में भी इक्कीस थे, बल–बुद्धि से निपटना जानते थे, पर छल से, मोह से निपटने की विद्या में दीक्षित न थे सो वह दोबारा छल का अवलंबन लेकर आया। मोह का संजाल रचता हुआ आया जिसे काटना हमारे वश में न था।

रावण जानता हे कि राम सीता से दूर नहीं गए तो सीता का हरण संभव नहीं। राम को सीता से दूर भेजने का एक ही तरीका है–सीता की इच्छा को माध्यम बनाना। सीता तो लेकिन राम के ही रूप–ध्यान में अहर्निश रमी है, उसके चिंतन में राम के अतिरिक्त किसी की भी गति नहीं है...तो? सीता और राम के बीच में ध्यान का प्रतिकर्षण कराया जाए, किसी तीसरे का प्रवेश कराके। यह तीसरा कौन होगा—कंचन मृग की मरीचिका। मरीचिका दिव्य

रूप धरकर आए तभी सफलता संभव है। मारीच में यह शक्ति नहीं कि वह रावण की इच्छा का सम्मान न करे। मारीच के अधिकार कितने भी विस्तृत क्यों न हो, उसका पद कितना भी बड़ा और महत्त्वपूर्ण क्यों न हो, वह रावण के लिए लाभ का उपक्रम करने वाली, रावण की नैतिक–अनैतिक इच्छाओं की पूर्ति कराने वाली एक महत्त्वपूर्ण कम्पनी का ही सही, एक छोटा–सा प्रबंधक है, पद की गरिमा के बावजूद आज्ञाकारी अनुचर है, जिसके लिए उसे वृत्ति मिलती है और अवहेलना पर दण्ड। चाहे रावण उसे सम्मान से अपना मामा कह ले, पर यह सम्मान पाकर वह गर्व में इतना चूर हो जाए कि रावण की आज्ञा का पालन ही न करे, या उसे ही उपदेश दे डाले, यह संभव नहीं है। हाँ जी की नौकरी है, ना जी का घर। घर होता तो गनीमत थी, पर यहाँ तो मृत्यु–भय भी है। आजकल गलती से भी माफिया की नौकरी एक बार कोई पकड़ ले तो भोग की उसे पूरी छूट है, पर भोगों से विरक्त होकर भी उसकी मुक्ति नहीं है, उसकी मुक्ति है सिर्फ मृत्यु में। मारीच विचारता है शस्त्र धारण करने वाले से भी विरोध न करे, कब काम तमाम कर दे, मर्म जानने वाले भी नहीं, मूर्ख से भी नहीं, मूर्ख अपनी मूर्खता के चलते कब क्या कर बैठे? प्रभु से भी नहीं, मालिक का दंड निश्चित कर दे, धुन के पक्के से भी नहीं। रावण की इच्छा के आगे समर्पण करना मारीच की अंतिम नियति है।

आजकल भोगों का विस्तार करने वाले, उनका विपणन करने वाले भोग के दर्शन का भी विस्तार करते हैं, यावज्जीवेत् सुखं जीवेत्...वे घी भी पिला रहे हैं और घी पीने के लिए ऋण भी दे रहे हैं। ऋण से भय लगे तो ब्याज माफ, अब तो लोगे? भस्मीभूत देह तो शायद पुनः न आए ऋण लौटाने के लिए पर बीमा कम्पनी तो है हर घाटे की पूर्ति को, फिर देर काहे की? भोगों का विस्तार करने वाले ये विशद महिमा वाले लोग सौंदर्य प्रतियोगिताएं आयोजित करते हैं—सुन्दर देहयष्टि के बल पर, प्रशंसनीय ज्ञान के बल पर स्वर्ण मारीच में रूपान्तरित हो सकने की योग्यता व मानसिकता के बल पर ललनाएं सौन्दर्य साम्राज्ञी का मुकुट इन आयोजकों के हाथ से, इन हिरण्यमय नगरियों के स्वामियों के हाथ से पहन कर फूली नहीं समातीं। पर वे सोचने लगें कि मैं तो लोक–विश्रुत सौन्दर्य साम्राज्ञी हूँ, विश्व सुन्दरी या ब्रह्माण्ड–सुन्दरी हूँ, मैं इन धनपतियों की, कुबेरों की आज्ञा क्यों मानूँ, मैं स्वर्ण मृग बनकर मृगया का आमंत्रण क्यों दूँ—यह संभव नहीं है।

ये भोग–सामग्रियाँ हिरण्यमय रूप धारण करके मृगया को निकल पड़ी हैं। हमें तो मिथ्या भ्रम है कि हम मृगया करने निकल रहे हैं। ये सामग्रियाँ पहले अपनी चकाचौंध से हमारी दृष्टि बींधती हैं, हमारी एकाग्रता को बींधती हैं, उसे भंग करती हैं तब हम इनके आखेट में तत्पर होते हैं।

ये भोग सामग्रियाँ अपने छाया रूप का, अपने प्रतिबिंब का, आभासी हिरण्यमय रूप का प्रवेश हमारे दृष्टि और चिंतन के वातायनों से, अपने नियंता प्रभु की आज्ञा पाकर करा चुकी हैं। विभिन्न कोण बदलकर, विभिन्न मुद्राएं बदलकर हमें न्यौत रही हैं। और तो और, ये हमें आखेट विधि की दीक्षा भी देने में लगी हैं। ये हमारे ज्ञान का सम्वर्द्धन भी कर रही हैं और

उसकी परीक्षा भी ले रही हैं। पहले तो हम कठिन प्रश्नों का सामना करते थे अपना जीवनीय रस पाने के लिए, अपने प्राणों को व्याकुल करने वाली तृष्णा को शांत करने के लिए। एक चुल्लु पानी भी पीने का हक नहीं मिलता था जो जीवन और जगत के जटिल गंभीर प्रश्नों से कतरा जाए। उस थोड़े से जल रूपी जीवन को पाने के लिए भी अपनी पात्रता सिद्ध करनी पड़ती थी। जो योग्य होगा, जो स्पर्धाओं में टिक सकेगा, जो प्रतिबल होगा, जो विजयी होगा, वही सिद्धि का वरण करेगा, वही उत्तरजीवी होगा। अब हम प्रश्नों का उत्तर देते हैं अपने जीवन से दूर जाने के लिए, अपनी तृष्णा का, मृग–तृष्णा का सम्वर्द्धन करने के लिए। पहले जो गंभीर प्रश्नों की अवहेलना कर जीवन–रस पीने लग जाता था, वह अपने प्राणों से हाथ धो बैठता था; अब तो जो गंभीर प्रश्नों का उत्तर खोजने लग जाए, वही अपने प्राण दे बैठे।

एक आखेटक आता है और एक सरल से प्रश्न का सरल–सा उत्तर दे देता है। उसका उत्तर सही है। वह एक द्वार से खुलने की प्रार्थना करता है, और सहज ही, सरल ही, एक स्वर्णमृग का आखेट कर ले जाता है। यह स्वर्णमृग किसी भी चित्ताकर्षक देह का स्वामी हो सकता है–एक चमचमाती मोटर साइकिल या कार की देह का, एक कम्प्यूटर की देह का, महँगे और कलात्मक समृद्धि से युक्त फर्नीचर की देह का स्वामी हो यह या दुर्लभ और कलात्मक व पर्याप्त महँगे पात्रों का एक समुच्चय ही देह में प्रवेश करके प्रस्तुत हुआ हो। स्वर्णमृग के परकाया प्रवेश के लिए अनुपम और श्लाघ्य देहों की गिनती नहीं है। ...हमारे आखेट करने की शैली यह हो या नहीं, पर हममें एक आखेटक–वृत्ति जन्म ले चुकी है, एक आखेट निमंत्रण मिल चुका है, हमारे कानों में हमारी प्रिया का एक वाक्य अहर्निश गूँज रहा है–जीवित या मृत, यह स्वर्णमृग लेकर ही आना। ...और हम, अपने से, अपनी प्रिया से, अपने बंधु से, अपनी पर्णकुटी से, निरंतर दूर भागते जा रहे हैं।

□□□

भारतीय अंकों की विश्व-यात्रा

● दया प्रकाश सिन्हा

भारत के ज्ञान–विज्ञान के प्रवासी होने की कथाएं भी निराली हैं। अब शून्य की अवधारणा को लें या भारतीय अंक–प्रणाली को जो अपनी सहजता और सरलता और के लिए विश्व व्यापी मान्यता पा सकीं–इन्हीं सक्षमताओं के कारण भारत का अतीत विश्व के इतिहास में सबसे अधिक गौरवपूर्ण रहा है। ऐसी अद्‌भुत विरासत में आज क्यों जंग लग रहा है, इस तथ्य में लेखक की क्षुब्धता भी झलकती है इस आलेख में।

योरप में बारहवीं शताब्दी तक रोमन अंकों का प्रयोग होता था। रोमन–अंक प्रणाली में केवल सात अंक हैं, जो अक्षरों द्वारा व्यक्त किए जाते हैं। यह अक्षरांक हैं–I (एक), V (पांच), L (पचास), C (सौ), D (पांच सौ) तथा M (एक हजार)। इन्हीं अंको के जोड़–घटाने से कोई भी संख्या लिखी जाती थी। उदाहरण के लिए अगर–तीन लिखना है तो एक का चिह्न तीन बार लिख दिया, जैसे–III। आठ लिखना है तो पांच के दायी तरफ तीन एक–एक के चिह्न लिख कर तीन जोड़ दिए और VIII (आठ) हो गया। नौ लिखना है तो दस लिखकर, उसके बाई तरफ एक का चिह्न बना कर, एक घटा दिया, तो नौ हो गया, जैसे–IX। इस प्रकार इन सात अक्षरांकों के जोड़ने–घटाने से कोई भी संख्या लिखी जाने की प्रथा थी। अगर तीन सौ चवालीस लिखना है, तो ऐसा लिखा जाएगा–CCC XXXX IV। यह प्रणाली इतनी कठिन और उलझी थी कि जब बारहवीं शताब्दी में यूरोप का भारतीय अंक प्रणाली से परिचय हुआ, तो उसने उसे स्वीकार ही नहीं किया, अपितु एकदम अपना लिया। योरप में कुछ शताब्दियों बाद जो वैज्ञानिक औद्योगिक क्रान्ति हुई, उसके मूल में भारतीय अंक गणना का योगदान आधारभूत है।

भारत ने गणना हेतु नौ अंको तथा एक बिन्दु (शून्य) का अविष्कार किया। यही नहीं, अंको के स्थानमान (प्लेस वेल्यू) का भी आविष्कार भारत में हुआ। अंकों का स्थानमान

भारतीय मस्तिष्क का अनोखा और मौलिक चिन्तन है। स्थान मान की अवधारण यों समझी जा सकती है—जैसे यदि एक का अंक अकेला लिखा जाए तो उसका तात्पर्य एक की संख्या से होगा, किन्तु एक के दाई ओर एक और लिख दिया जाए, तो वह ग्यारह इंगित करेगा। इसी तरह शून्य का कोई मान (मूल्य) नहीं है। जब यह शून्य एक अंक के बाई ओर लिखा जाए, तो वह दस इंगित करेगा। यदि दाहिनी ओर एक और शून्य बढ़ा दिया जाए, तो वह संख्या सौ हो जाएगी। इस तरह अंक के दाहिनी ओर लिखे जाने पर मूल्यहीन शून्य, मूल्य प्राप्त कर लेता है। संक्षेप में स्थान के अनुसार अंकों के मूल्य निर्धारण के सिद्धान्त को स्थानमान (प्लेस वेल्यू) कहते हैं। इस प्रणाली से किसी भी संख्या को लिखना बहुत आसान है। जिस तीन सौ चवालीस को हम रोमक प्रणाली में CCC XXXX IV लिखते हैं, उसे भारतीय विधि से 344 लिख सकते हैं। इस माध्यम से बड़ी से बड़ी संख्या बिना किसी कठिनाई के संक्षेप में लिखी जा सकती है।

भारतीय गणित केवल स्थानमान पर ही नहीं रुक गया। उसने दशमलव प्रणाली का भी आविष्कार किया। भारत में दशमलव अंकों का प्रयोग आर्यभट्ट प्रथम (499 ई०) द्वारा मिलता है। संभव है इसका आविष्कार इससे भी बहुत पहले हुआ हो। किन्तु योरप में दशमलव अंक का सामान्य प्रचार सत्रहवीं शताब्दी में हुआ, जिसका ज्ञान निश्चित ही उसने सीधे भारत से प्राप्त किया था। यह भारतीय गणित सिद्धान्त योरप को अरबी लोगों के माध्यम से भारत से प्राप्त हुआ था।

अरबी भाषा में इन अंकों को हिन्दसा कहते हैं। हिन्दसा अर्थात् हिन्द से प्राप्त। अरब लिपि दायें से बायें लिखी जाती है, किन्तु अरबी में अंक बायें से दायें लिखे जाते हैं। यह भी इस बात का प्रमाण है कि अरबी अंकों की उत्पत्ति अरबी भाषा के साथ अरब देश में नहीं हुई, अपितु ये बाहर से आयात किए गए हैं। अतएव इन अंकों का अरब देशों में आविष्कार होने का प्रश्न ही नहीं उठता। अरबों के माध्यम से जब यह भारतीय अंक योरप पहुंचे, तो वहां के लोग समझे, यह अंक मूल रूप से अरबों द्वारा ही आविष्कार किए गए हैं। अतएव आज भी योरप में एक से नौ एवं शून्य के भारतीय अंको को 'एरेबिक न्यूमरल' (अरबी गणनांक) कहते हैं।

मोहम्मद साहब के पूर्व अरब देश में 'जिहालिया' अर्थात अज्ञान का युग कहा जाता है। ज्ञान-विज्ञान में वहां कोई प्रगति नहीं हुई थी। पूरे कुरैश कबीले में, जिससे मोहम्मद साहब का संबंध था, केवल सत्रह लोग कुछ लिखना जानते थे। किन्तु इस्लाम की स्थापना के साथ अरब साम्राज्य का विस्तार पश्चिम में स्पेन और उत्तरी अफ्रीका तथा पूर्व में भारत की सीमा तक हो गया। जो देश पराजित होकर अरब साम्राज्य में शामिल हुए, उनके आर्थिक प्रशासन के लिए अरबी गणना-प्रणाली, जो कि अत्यन्त प्रारंभिक स्तर की थी, पर्याप्त सिद्ध नहीं हुई। अतएव विवश होकर, अरबी शासकों को विजित जातियों के अंकों का प्रयोग करना पड़ा। सीरिया में यूनानी अंक संकेत और मिस्र में कॉप्टिक अंक संकेत का प्रयोग यथावत

जारी रखा गया। जब मुस्लिम साम्राज्य का केन्द्र बगदाद बना तो आरंभिक वर्षों में पहले के समान सभी राजकाज यूनानी भाषा में चलता रहा। सन् 699 में ख़लिफ़ा वालिद ने राजकीय घोषणा के द्वारा राजकाज में यूनानी का प्रयोग बन्द करके अरबी का प्रयोग आरंभ किया। किन्तु घोषणा के द्वारा यूनानी अंकों के पूर्ववत प्रयोग के लिए अपवाद किया, क्योंकि अरबी अंक इसके लिए सक्षम नहीं थे। अरबी भाषा में साहित्य और विज्ञान के अध्ययन की नींव सन् 750 ई॰ से सन् 850 के बीच डाली गई। इस अवधि में फारसी, यूनानी और संस्कृत के अनेक महत्त्वपूर्ण ग्रंथों का अरबी में अनुवाद किया गया। सन् 712 में मोहम्मद बिन कासिम की विजय के पश्चात् भारतवर्ष से मुस्लिम साम्राज्य का प्रत्यक्ष संपर्क हो गया और भारतीय ज्ञान का अरबों तक पहुंचने का मार्ग प्रशस्त हो गया। खलीफा अल मसूंर (सन् 753–774) के राज्यकाल के समय में सिन्ध से बगदाद कुछ दूत गए, जिनमें कुछ विद्वान भी थे, जो अपने साथ ब्रह्मगुप्त रचित 'ब्राह्म स्फुट सिद्धान्त' एवम् 'खण्डखद्यक' नामक ग्रंथ भी, अन्य ग्रंथों के साथ बगदाद ले गए। इन विद्वानों की सहायता से अल–फजारी एवं याकूब खां तारिक ने इनका अरबी में अनुवाद किया जिसका अरबी गणित पर विशेष प्रभाव पड़ा। अरब लोगों में भारतीय ज्ञान, विज्ञान और कलाओं के प्रति जो उस समय सम्मान था वह अल जहीज़ की पुस्तिका–"फ़किर असस–सूदन अल–ल बिदन' में लिखा है : "जहां तक भारतीयों का संबंध है, वे नक्षत्रज्ञान और गणित में पहले स्थान पर हैं"। उनकी लिपि दुनिया की सभी भाषाओं की ध्वनियां लिख सकती है, इसी तरह उनके अंक हर प्रकार की संख्या... भारत में ही नक्षत्रों की गणना प्रारम्भ हुई, जिसे बाद में अन्य देशों ने उससे लिया। जब अदम स्वर्ग से उतरे, तो वह भारत गए"।

भारतीय गणित की पश्चिम यात्रा की पगडंडिया स्पष्ट है। 711 ई॰ में स्पेन पर अरबों का आधिपत्य हो गया था और पांच सौ वर्ष तक वे उसके स्वामी बने रहे। इस अवधि में भारतीय अंक, स्थानमान दशमलव, शून्य की अवधारणा आदि अरबों के माध्यम से स्पेन और फिर यूरोप पहुंचे।

पीसा (इटली) नगर के लियोनार्डो ने, जिसने किसी 'मूर' (अरबी) से हिन्दू गणित सीखा, और सन् 1202 में 'लिबर एवैकी; नाम की पुस्तक लिखी, जिसका संशोधित संस्करण सन् 1228 में आया, इसमें उसने हिन्दू अंकों और उनकी उपयोगिता को समझाया। अलेक्ज़ेडर डे विलाडी (सन् 1240) और जॉन ऑक हेलीफॉक्स (सन् 1250) की पुस्तकों ने भी '*हिन्दू अंक प्रणाली*' का प्रसार किया। प्रारम्भ में इसका विरोध हुआ, किन्तु पन्द्रहवी शताब्दी के मध्य तक योरप के सभी देशों ने इनको स्वीकार कर लिया।

पश्चिमी विद्वान ए.एन. बाशम के शब्दों में–"*विश्व को भारत का ऋण का आकलन संभव है। अधिकांश वैज्ञानिक आविष्कार और अन्वेषण जिन पर आज योरप को इतना घमंड है, बिना विकसित भारतीय अंक प्रणाली के और बिना बोझिल रोमन अंक प्रणाली के पाश से मुक्त हुए, संभव नहीं थे। जिस अनाम व्यक्ति ने इन अंकों का आविष्कार किया वह*

विश्व महत्व के संदर्भ में भारत का सर्वाधिक महत्वपूर्ण सपूत था। उसकी उपलब्धि निस्सन्देह एक श्रेष्ठतम विश्लेषणात्म मस्तिष्क की उपज थी। उसे जितना सम्मान अभी तक मिला है, उससे अधिक का वह अधिकारी है।"

गणित और विज्ञान में कभी भारत विश्व के किसी भी देश से आगे था। एक वह समय था जब ज्ञान–विज्ञान की बयार भारत से उठ कर पश्चिम की ओर बहती थी, लेकिन आज उसका रुख उलटा है। वह पश्चिम से उठती है, और पूर्व की ओर आती है। आज हमारे यहां विज्ञान में मौलिक कुछ नहीं हो रहा है। हम पश्चिम के आविष्कारों और अन्वेषणों की मात्र नकल कर रहे हैं। आजादी के पूर्व कम से कम एक भारतीय वैज्ञानिक सर सी.वी. रमन को अपने वैज्ञानिक शोध के लिए नोबॅल पुरस्कार प्राप्त हुआ था। आजादी के पश्चात नेहरूजी ने दर्जनों शोधशालाएं स्थापित की हैं, लेकिन वे सब की सब सरकारी दफ्तर बन कर रह गई हैं, या सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यमों के समान कोई बीमार–उद्योग (सिक इंडस्ट्री)। यही कारण है कि स्वतंत्रता के पश्चात कोई इस देश में वैज्ञानिक नहीं जनमा या सामने आया, जो अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर स्थापित हो पाता और नोबॅल पुरस्कार का अधिकारी होता। देश की प्रगति का मापदंड उसके विद्वान, रचनाकार और वैज्ञानिक होते हैं। हम हर वर्ष भारत की आजादी का उत्सव मनाते हैं तो क्या हम इसके सक्षम अधिकारी हैं?

□□□

एक भारतीय का ब्रिटिश फिल्म के शैशवकाल में योगदान

● प्रेम कृष्ण टंडन

यह बहुत ही कम व्यक्ति जानते होंगे कि एक भारतीय निरंजन पाल (1886–1958) ने ब्रिटेन के फिल्म उधोग के शैशव काल में अपनी साहित्यिक प्रतिभा का परिचय देकर फिल्म कला के विकास में अपनी पहचान बनाई थी। एक प्रवासी भारतीय के महत्वपूर्ण योगदान के बारे में बता रहे हैं श्री प्रेम कृष्ण टंडन।

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की उग्र राजनीति की त्रिमूर्ति–लाल, बाल, पाल के विपिनचंद्र पाल (1858–1932) की वे चौथी संतान और मात्र पुत्र थे। युवावस्था में बंगाल की क्रांतिकारी गतिविधियों में दिन–रात उलझने के कारण, उनके पिता चौकन्ने हो गये। उन्होंने डाक्टरी पढ़ने के लिए पुत्र को ब्रिटेन भेज दिया। 1912 में युवा निरंजन ने डाक्टरी की पढाई छोड़ कर पत्र गरिना की शपथ ली। इसी वर्ष लंदन की केंट (Kent) फिल्म कम्पनी में पूर्वी क्षेत्र की पृष्ठभूमि पर बनने वाली एक फिल्म के टेक विक्रय सलाहकार बने। निरंजन पाल के पुत्र कालिन पाल ने पिता की आत्म कथा Such is Life की प्रस्तावना में लिखा है कि जब दादा फाल्के अपनी फिल्म 'राजा हरिशचंद्र' की नासिक में शूटिंग कर रहे थे पिता जी Kent Film Co. में काम कर रहे थे। निरंजनपाल का जीवन अब ब्रिटेन के सिनेमा गृहों और थियेटरों के इर्द–गिर्द घूमने लगा। वे फिल्में देखते, अब उन्हें किसी फिल्म में देश–भारत का विकृत रूप देखने को मिलता, क्षुब्ध होकर अपने को कोसते स्वयं ही फिल्म कथानक तैयार करने का फैसला भी करते। ऐसा ही एक कथानक उन्होंने नैचुरल कलर सिनेमोग्राफ कम्पनी को भेजा जो इस टिप्पणी के साथ लौट आया कि इसमें अच्छे विचार है

लेकिन कथाकार को फिल्म निर्माण का ज्ञान नहीं है। बस युवा निरंजन को अच्छा अवसर मिल गया। वे उस कम्पनी में जाकर फिल्म कला सीखने लगे। फिल्म कम्पनी के निदेशक उनकी लगन से प्रभावित हुए। उन्होंने एक दिन निरंजन पाल से बातचीत के दौरान मांग की कि यदि कोई स्क्रीनप्ले हो तो दें। निरंजन यह चाहते ही थे। उन्होंने Light of Asia की स्क्रिप्ट दे दी। कुछ समय बाद कम्पनी ने उस पर फिल्म बनाने की सोची। बात बन रही थी कि कम्पनी ही समाप्त हो गई। एक और कम्पनी बनी और उसने उस कम्पनी की योजनाएं ले ली। उम्मीद थी कि अब फिल्म बन जायगी किन्तु प्रथम महायुद्ध शुरू हो गया जिससे फिर निराशा हुई। Light of Asia की स्क्रिप्ट बक्से में बंद हो गई।

प्रथम महायुद्ध के प्रथम चार माह निरंजनपाल महात्मा गांधी के इंडियन मेडिकल कोर से सदस्य रहे। इस अवधि में उन्होंने एक वृत्त चित्र बनाया 'डे ऐट एन इंडियन मिलिटरी कैम्प'।

1915 में केंट फिल्म कम्पनी ने उनके कथानक पर चार रील की 'द फेथ आफ ए चाईल्ड' बनाई जिसको ब्रिटेन के मूक युग की प्रथम फीचर फिल्म होने का गौरव प्राप्त है। यह फिल्म लंदन के उस समय के सबसे मशहूर सिनेमा गृह न्यू गैलरी में खूब चली।

निरंजन पाल को विश्वास था कि युद्ध की समाप्ति पर कोई न कोई निर्माता 'लाईट आफ एशिया' की स्क्रिप्ट लेकर फिल्म का निर्माण करेगा किन्तु उन्हें आशा की एक भी किरण नजर न आई। इस बीच उन्होंने हुल (Hull) की एक अंग्रेज महिला Lily Bell से विवाह कर लिया। कमाने की समस्या अब और बलवती हो गई। उन्होंने फिर 1920–24 के बीच स्टेज के लिए अंग्रेजी में नाटक लिखे–गॉडेस और वाट एचेंज नाटक खूब चले। गॉडेस में हिमांशु राय (1891–1940) ने प्रमुख पात्र की भूमिका निभाई थी। वे उस समय लंदन में कानून पढ़ रहे थे। हिमांशु राय इस नई उभरती कला से इतने प्रभावित हुए कि उन्होंने कानून को दर किनार कर फिल्म में प्रवेश करने का मन बना लिया। निरंजन पाल से उन्होंने 'लाईट आफ एशिया' स्क्रिप्ट ले ली। वर्षों के बाद अब स्क्रिप्ट के भाग्य फिरे। हिमांशु राय ने जर्मनी की इमिलका Emelka कम्पनी और दिल्ली के गेट इस्टर्न कारपोरेशन से फिल्म निर्माण का अनुबंध किया।

हिमांशु राय और निरंजनपाल 'लाहट आफ एशिया' की शूटिंग के लिए स्वदेश लौटे। फिल्म के निदेशन के लिए जर्मन डायरेक्टर फैज प्रोसंटेन तथा जर्मन तकनीशियन आये। फिल्म बनी प्रदर्शित हुई। फिल्म को ब्रिटेन में दिखाने के अधिकार हिमांशु राय और निरंजन पाल दोनों के ही पास थे। फिल्म ब्रिटेन में 10 महीने तक चलती रही जिससे सभी संबंधित व्यक्तियों को आश्यर्च हुआ। ब्रिटेन के किंग जार्ज पंचम ने भी देखी। इस फिल्म की सफलता से प्रेरित होकर निरंजन पाल ने अंग्रेजी में एक और नाटक–मैजिक क्रिस्टल लिखा जो दर्शकों को भाया। साथ ही एक और फिल्मी कथानक लिखा जिस पर 'ए जैनटिलमैन आफ

पेरिस' बनी। यह ब्रिटेन की प्रारंभिक सवाक फिल्मों में है। इस बीच अपने मित्र हिमांशु राय के लिए दो और कथानक लिखे 'शिराज' और 'थ्रो आफ डाइस'। हिमांशु राय ने जर्मनी के सहयोग से यह दोनों ही फिल्में बनाई।

लाहौर की पंजाब फिल्म कम्पनी की मूक फिल्म 'टबुल्स नेवर कम अलोन' के निदेशन व निर्माण के लिए निरंजन पाल अक्टूबर 1929 में भारत लौटै। फिर पूना में 1931 में 'नीडलैस आई' का निर्माण और निदेशन किया। तत्पश्चात् कलकता चले गये। 'परदेसिया', दरदी और 'फेथफुल हार्ट' फिल्में बनाई।

हिमांशु राय बम्बई के उपनगर मलाड में बाम्बे टाकीज के नाम से फिल्म स्टूडियो स्थापित कर फिल्म बना रहे थे। उनके आग्रह पर 1935 के प्रारंभ में निरंजन पाल कलकता से बम्बई आ गये। अपने साथ वे कलकत्ता से अमिय चक्रवर्ती अपने पुत्र को बंगला पढ़ाने के लिए भी लेते गये। उनको बाम्बे टाकीज की कैन्टीन की मैनेजरी दिलवा दी। इन्हीं चक्रवर्ती की कहानी 'मिडनाइट एक्सप्रेस' पर बाम्बे टाकीज ने अपनी फिल्म 'जवानी की हवा' बनाई। इस फिल्म के बाद कम्पनी की लगातार 8 फिल्मों के कथानक, और स्क्रीन प्ले निरंजन पाल ने लिखे। फिल्में थीं 'ममता और बीवी' (1936), जीवन नैया (1936), 'अछूत कन्या' (1936), जन्मभूमि (1937), 'इज्जत' (1937), 'प्रेम कहानी' (1937), सावित्री (1937) और जीवन प्रभात (1937)। बाम्बे टाकीज के संवाद लेखक जमुना स्वरूप कश्यप को निर्देश था कि वह उन्हीं संवादों को लिखे जिन्हें हिमांशु राय और निरंजन पाल समझ सकें। हिमांशु राय के बाद कम्पनी में निरंजन पाल का स्थान महत्वपूर्ण था। कालिन पाल के शब्दों में एक मामूली बचकानी बात से हिमांशु राय और निरंजन पाल में इतनी गरमागरम बहस हुई कि निरंजन पाल 1937 में हिमांशु राय से हमेशा के लिए मित्रता तोड़कर कलकत्ता चले गये। कलकत्ता में प्रसंग फिल्म कारपोरेशन के लिए फिल्में बनाई।

इसी कम्पनी के लिए उन्होंने भारत की पहली न्यूज रील बनाई। फिर व्यावसायिक कम्पनियों के लिए विज्ञापन की फिल्मों का दौर शुरू हुआ। देश में बाल फिल्मों की शुरुआत करने का श्रेय उन्हीं को है, फिल्म कारपोरेशन के लिए उनकी अंतिम फिल्म 'बोधोदय थी जिसमें शंभू मित्रा ने काम किया था। उनकी फिल्म 'फेथ आफ ए चाइल्ड' हिन्दी में 'ज्योति' के नाम से बनी जिसमें संजीव कुमार की मुख्य भूमिका थी।

निरंजन पाल ने फिल्म सलाहकार बोर्ड में स्क्रिप्ट विभाग के प्रधान का काम किया। कालान्तर में यही संस्था केन्द्रीय सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय को फिल्म प्रभाग के रूप में विकसित हुई। उन्होंने कितनी ही संस्थाओं के लिए प्रचारात्मक फिल्में बनाई जिसमें केन्द्रीय चाय मंडल मुख्य है।

कांग्रेसी नेता विपिनचंद्र पाल की लगातार तीन लड़कियों के बाद चौथी संतान निरंजनपाल का जन्म 17 अगस्त, 1886 को हुआ था। वे मुश्किल से 18 माह के थे कि माता का स्वर्गवास हो गया। पिता इतने विक्षिप्त हुए कि संन्यासी बन गये। बच्चों की परवरिश

सामाजिक कार्यकर्ताओं द्वारा हुई। ऐसे समय में डॉ० विधानचंद राय के पिता प्रकाशचंद राय ने बच्चों पर हाथ रखा। बालक निरंजन को स्कूल, जेलखाना लगता। वह सियालदाह स्टेशन पर गाड़ियों के आने–जाने का हिसाब रखते। एक बार पिता की मार ने उन्हें स्कूल से हमेशा के लिए मुक्ति दिला दी। फिर स्टेशन से मन ऊबा तो रात–रात भर जात्राएं देखने लगे। सितम्बर 1898 में विपिनचंद ब्रिटेन गये और 1900 में स्वदेश लौटे। इस बीच निरंजन विमाता के पास रहने लगे। पिता ने जब वे दो वर्ष के थे, एक गरीब महिला से दूसरी बार विवाह कर लिया था।

1901 में विपिचंद पाल ने अंग्रेजी साप्ताहिक 'न्यू इंडिया' निकालना शुरू किया। उनका घर राजनीति का अखाड़ा बन गया। 1906 में बंगाल प्रांतीय सम्मेलन में भाग लेने गये। युवा निरंजन पर इन सब बातों का प्रभाव तेजी से हो रहा था। वे दक्षिण कलकत्ता के सनातन सम्प्रदाय के सदस्य बने। अलीपुर षड़यंत्र कांड के भावी अभियुक्तों में से कुछ के साथ उनकी गिरफ्तारियों के पहले उनका उनका सम्पर्क बन गया था जिसमें उल्लासकर दत प्रमुख थे। पिता राष्ट्रीय दैनिक वन्दे मातरम के 1906 से सम्पादक बन गये थे। निरंजन पाल इनसे अछूते नहीं रहे जिससे विपिनचंद्र पाल न चाहते हुए भी असहाय थे। इस बीच ब्रिटेन के प्रसिद्ध क्रांतिकारी श्याम जी कृष्ण वर्मा के निमंत्रण पर विपिनचंद्र, अगस्त 1908 में निरंजन पाल को साथ लेकर ब्रिटेन चले गये।

पिता चाहते थे कि पुत्र डाक्टर बने। अतः निरंजन पाल ने 1910 में लंदन में दसवीं कक्षा पास की और किंग कालेज में डाक्टरी पढ़ना शुरू किया। उनका खर्च चितरंजन दास उठा रहे थे। निरंजन पाल इंडिया हाउस में विनायक दामोदर सावरवर के साथ रह रहे थे। जिससे उन पर उनका दिन प्रतिदिन प्रभाव बढ़ता ही जा रहा था। जिस चीज से बचने के लिए ब्रिटेन गये थे उसी में और उलझते जा रहे थे। निरंजन पाल ने ही मदन लाल धींगरा का वह वक्तव्य टाइप किया था जो उन्होंने सावरकर के कहने पर कर्नल वायली की हत्या के बाद न्यायालय में पढ़ा था। निरंजनपाल क्रांतिकारियों के प्रभाव से उसी समय मुक्त हुए जब सावरकर ब्रिटेन से भारत आ गये और उन पर नासिक षडयंत्र कांड चला।

1912 में निरंजन पाल ने डाक्टरी की पढ़ाई को हमेशा के लिए तिलांजलि दे दी और अपने जीवन को व्यवस्थित करने के लिए पत्रकारिता की ओर मुख मोड़ा।

निरंजनपाल का निधन बम्बई में 1958 में हुआ। उनके पुत्र कालिन पाल ने पिता की जन्म शताब्दी मनाने के लिए बंगाल के अपने मित्रों से बातचीत की थी तथा पश्चिम बंगाल के फिल्म काम्पलेक्श नंदन ने भी समारोह मनाने का आश्वासन दिया था किन्तु कुछ बात नहीं बनी। इस प्रकार फिल्म कला के एक अग्रदूत की किसी को याद नहीं गई।

□□□

परस्पर सम्बन्धों को दृढ़ करने की आवश्यकता है

● बालेश्वर अग्रवाल

इक्यासी वर्षीय कर्मठ एवं सृजनशील श्री बालेश्वर अग्रवाल 'हिन्दुस्तान समाचार एजेंसी' के संस्थापक संपादक के साथ-साथ अंतरराष्ट्रीय सहयोग परिषद के प्रमुख तथा अंतरराष्ट्रीय संस्था 'गोपियो' के समन्वयक भी हैं। 'पी.आई.ओ' की दूसरी अंतरराष्ट्रीय संगोष्ठी के सिलसिले में युवा पत्रकार-कवि लालित्य ललित ने उनसे दिल्ली स्थित कार्यालय में यह प्रस्तुत बातचीत की।

लालित्य ललित : बालेश्वर जी, विदेशों में बसे भारतीयों के साथ आपके संगठन अन्तरराष्ट्रीय सहयोग परिषद के घनिष्ठ सम्बन्ध हैं। आप बताइए, विदेशों में भारतीय मूल के लोग कब से रहते हैं? उनकी संख्या कितनी होगी? और कब से वे गए हैं? किन हालात में गए थे? आज उनकी स्थिति क्या है?

बालेश्वर अग्रवाल : यह कहना तो बहुत मुश्किल है कि कब से भारतीय मूल के लोग विदेशों में गए। वैसे यही कहा जाता रहा है, जो पहले ऋषि-मुनि गए, भारतीय संस्कृति की प्रचार की दृष्टि से, वे तो 5000 वर्ष पूर्व गए या इससे भी पहले गए और इसका प्रमाण मिलता है दक्षिण पूर्वी एशियाई देशों में, जहां भारतीय संस्कृति का प्रचार-प्रसार हुआ। चाहे वह कम्बोडिया हो, या इन्डोनेशिया। यहां तक कि जो मुस्लिम बहुल देश हैं, उनकी किताबों में लिखा है कि कोई अगस्त्य एवं मार्कंडेय ऋषि उनके यहां पांच हजार वर्ष पूर्व आए थे। उन्होंने उन्हें हिन्दू धर्म की दीक्षा दी थी और तभी से वे हिन्दू धर्मावलम्बी हो गए। बाद में जब इस्लाम आया तो वह भी एक मजहब के रूप में आया। उनकी संस्कृति में कोई असर नहीं

हुआ। आज भी इन्डोनेशिया के मुसलमान देवी–देवताओं के मामले में, रामलीला में, सभी चीजों में हिन्दुओं के बराबर ही हैं और वे कहते हैं कि इस्लाम उनका मजहब है और यह उनकी संस्कृति है। इसलिए यह माना जा सकता है कि हजारों वर्ष पूर्व भारतीय मूल के लोग विदेशों में गए। जिस संदर्भ में आप सवाल कर रहे हैं वे आज से डेढ़ सौ वर्ष पूर्व अंग्रेज सरकार द्वारा भेजे गए थे और जब उनको भेजा गया तो उन्हें झूठा आश्वासन दिया गया था कि वहां पर पत्थर हटाओगे तो सोना निकलेगा, यह दो–तीन दिनों की यात्रा है, बगल में है। इस तरह की बातें लोगों से कही गई। सबसे पहले 1834 में मॉरीशस में भारतीय मजदूर ले जाए गए। उस समय उन समुद्री यात्राओं मे जो जहाज होते थे, उनमें बहुत ज्यादा समय लगता था। कुछ लोग रास्ते में बीमार पड़ जाते थे, उनकी चिकित्सा की कोई व्यवस्था नहीं थी। कुछ लोग मर जाते थे। उनके शवों को समुद्र में डाल देते थे। बहुत ही कष्ट उठाकर वे लोग वहां गए। वे अशिक्षित थे, उनकी कोई पढ़ाई नहीं हुई थी, वे गरीब थे। उनको लुभावने आकर्षण अंग्रजों के एजेन्टों ने दिए थे, जिन्हें 'अरकटिया' कहते थे। 'अरकटिया' के आश्वासनों पर लोग जाते थे। उन्होंने बहुत कष्ट सहे, उन लोगों के साथ वहां पर जानवरों की तरह व्यवहार किया गया यानि उन्हें गुलाम की तरह रखा गया, गुलामी की नई प्रथा शर्त बंदी थी, जिसे शुरू किया गया। उन्हें प्रतिमाह थोड़ी धनराशि, चावल और दाल दी जाती थी। लेकिन उन्हें कोड़ों से मारा जाता था। कुछ लोग काम करने में हिचकिचाहट करते थे, उन्हें यातनाएं दी जाती थी। अगर वे बीमार होते थे, यदि एक दिन काम नहीं जाते थे तो उनकी दो दिन की तनख्वाह कटती थी। बहुत मजदूरों ने उस समय तंग आकर आत्महत्या भी कर ली थी। ऐसी कई रिपोर्ट्स हैं जिन्हें देखा जा सकता है। लोगों ने यातनाएं और कष्ट सहकर भी अपने धर्म व अपनी संस्कृति की रक्षा की। आज सन्तोष की बात है कि 150-200 वर्षों बाद भी उन देशों में अपने धर्म के प्रति जो लगाव है, उनकी आस्था है जो हिन्दुस्तान में रह रहे लोगों से बिल्कुल भी कम नहीं है। कुछ मात्रा में अधिक ही होगी। उनके यहां जो शिवरात्रि पर कार्यक्रम होता है, मॉरीशस में खासतौर से, वह देखने लायक है। हिन्दुस्तान में भी ऐसा भव्य आयोजन नहीं होता। तो इस प्रकार से जो मजदूरों का वर्ग गया, पहले शुरू हुआ मॉरीशस से, फिर दक्षिण अफ्रीका, फिजी, सूरीनाम, गुयाना, त्रिनीडाड और टुबैगो आदि देशों में मजदूर गए।

विशेष प्रकार के मजदूर 'प्लांटेशन लेबरर्स' गए मलेशिया रबर के खेतों में काम करने। दूसरे मजदूर कारीगर के रूप में गए। पूर्वी अफ्रीका में रेलवे लाइन बिछाने के लिए। वहां जंगल में शेर, चीते और हिंस्र जानवर थे। कितने ही भारतीय मजदूर उनके शिकार हो गए। लेकिन भारतीयों ने रेलवे लाइन वहां बनायी। ये मजदूर पिछले डेढ़ सौ वर्षों में भारत से गये और इनकी संतान आज पढ़–लिखकर काबिल हो गई है। बहुत जगह भारतीय मूल के लोग राष्ट्रपति, प्रधानमंत्री हो गए है, सांसद हो गए हैं।

हमारी सूचना के अनुसार विदेशों में लगभग तीन सौ सांसद हैं, जो वहां की संसदों में निर्वाचित सदस्य हैं। 68 मंत्री हैं, एक बार तो तीन प्रधानमंत्री भारतीय मूल के थे, तीन राष्ट्रपति थे। अभी तो मॉरीशस के प्रधानमंत्री ही भारतीय मूल के हैं। राष्ट्रपति भी तीन हैं, एक सिंगापुर, एक गुयाना और एक मॉरीशस में।

मजदूरों के तबके के जाने के बाद, पिछले 50-60 वर्षों से प्रोफेशनल लोग गए। डाक्टर, इंजीनियर, चार्टेड एकाउंटेंट गए। तरह–तरह के लोग गए। यानि पढ़े–लिखे लोग गए, वे अमेरिका, कनाडा और यूरोपीय देशों में गए।

पश्चिम एशिया में जो मजदूर गए थे। वे अभी भी काफी बड़ी संख्या में है। वे भारतीय नागरिक हैं। पैसे भी कमाते हैं। परिवार को भेजते भी हैं। कई प्रकार की तकलीफें उन्हें होती हैं। कुल मिलाकर अनुमान यह है कि भारत के बाहर भारतीय मूल के लोग लगभग दो करोड़ हैं।

लालित्य ललित : बालेश्वर जी, आज तक आपने किस तरह के कार्यक्रम चलाये हैं जिनसे भारतीय मूल के लोगों के बीच परस्पर संवाद की प्रक्रिया बनी?

बालेश्वर अग्रवाल : हम लोगों की संस्था, अन्तरराष्ट्रीय सहयोग परिषद 1978 से चल रही है। इस संस्था के माध्यम से हम लोग कोशिश करते हैं कि भारतीय मूल के लोग, जो विदेशों में हैं चाहे वे वहां के नागरिक न भी बने हों या वे उन देशों के नागरिक बन गए हों, इन लोगों का संबंध भारत से, भारतीयता से बना रहे। इसका हम प्रयास करते रहते हैं। इन प्रयासों में जो उनके विद्यार्थी हैं और भारतीय विश्वविद्यालयों में पढ़ते हैं, उन्हें भारतीय परिवारों से मिलाया जाता है। उन्हें पर्व–त्योहारों पर विभिन्न परिवारों द्वारा आमंत्रित किया जाता है। दूसरे, बौद्धिक स्तर पर संगोष्ठियां कर के कोशिश की जाती है कि उन्हें भारतीय सभ्यता और संस्कृति की अधिक से अधिक जानकारी उपलब्ध हो। अभी इसी वर्ष मार्च में श्रीलंका पर तथा जून में नेपाल पर गोष्ठियां हमने आयोजित कीं थीं। भारत और म्यांमार के संबंधों पर भी एक गोष्ठी 21 नवम्बर को की है। इस प्रकार से पूरी कोशिश रहती है कि सांस्कृतिक चेतना का आदान–प्रदान सतत् बना रहे।

हम कई तरह के प्रतिनिधिमंडल भी विदेशों में भेजते हैं ताकि वे भारतीय मूल के लोगों से मिलें। वहां के लोग भी दल के रूप में या व्यक्तिगत तौर पर भारत आते हैं। तब भी संस्था अनेक कार्यक्रम आयोजित करती है। उन्हें ऐसे मंच उपलब्ध कराये जाते हैं, जहां वे अपने विचार अभिव्यक्त कर सकें। इसके अलावा 'मदर इंडिया चिल्ड्रेन एब्राड' नामक पत्रिका का हम प्रकाशन करते है। इस प्रकाशन के अब तक हम 12 अंक निकाल चुके हैं। करीब–करीब एक वर्ष में इसका एक अंक निकलता है। इस वर्ष आस्ट्रेलिया और न्यूजीलैण्ड पर केन्द्रित अंक निकल रहा है। संस्था का बुलेटिन भी प्रकाशित किया जाता है, जिसमें देश–विदेश की भारतीयों से जुड़ी खबरों के सम्बन्ध में सदस्यों के लिए महत्वपूर्ण सूचनाएं रहती हैं। एक और विषय है know your roots – यानि वे लोग जो अपने पूर्वजों के बारे

में जानना चाहते हैं। हम उसकी व्यवस्था करते हैं। ये सारी गतिविधियां है जिससे कि भारतीय मूल के उन लोगों का और भारतवासियों का संबंध बना रहे।

लालित्य ललित : बालेश्वर जी, दोहरी नागरिकता के बारे में आप का क्या विचार है? आप हाइपावर कमेटी के सदस्य थे। उस कमेटी के संदर्भ में आपने काफी अध्ययन किया है। यह बताइए कि भारतीय मूल के लोगों की भारत से और भारत की उनसे क्या अपेक्षाएं हैं?

बालेश्वर अग्रवाल : जब समिति के सदस्य के नाते विभिन्न देशों में जाने का मौका मिला तो मैंने यह देखा कि जो विकसित देश हैं जैसे अमेरिका, कनाडा, यूरोप, सिंगापुर... यहां पर रहने वाले जो भारतीय मूल के लोग हैं, वे दोहरी नागरिकता के हक में थे, वे चाहते थे। परंतु जिन देशों में मजदूर गए थे, उनके बच्चे अब वहां के नागरिक हो गए हैं। कुछ राजनीति में चले गए हैं जैसे मॉरीशस या फिजी के लोग। तो उन देशों के लोगों का इसके पक्ष में समर्थन नहीं था। उनको तो लगता था कि दोहरी नागरिकता की बात करेंगे तो देश के बारे में निष्ठा के प्रति लोगों में शक हो जाएगा। तो इस प्रकार से उनमें एकमत नहीं था। समिति ने काफी विचार किया, फिर इसके पक्ष में ही अनुशंसा की, एक प्रस्ताव भी दिया। प्रधानमंत्री जी ने जनवरी में घोषणा भी कर दी कि सरकार ने इसे सैद्धांतिक रूप में स्वीकार कर लिया है। इसे अभी तक क्रियान्वित नहीं किया गया। अभी गृहमंत्रालय कई कारणों से इसे स्वीकार नहीं कर रहा है। अभी इस बारे में कोई निश्चित धारणा नहीं बनी है। हमारी समिति ने इस पर जरूर एक अनुशंसा की थी कि इसे मान लिया जाए।

विदेशों में जो भारतीय मूल के लोग हैं उनकी एक ही अपेक्षा नहीं रही है। अमेरिका, यूरोप, कनाडा के लोग तथा मॉरीशस, गुयाना, फिजी, त्रिनिडाड में जो लोग गए थे, उनके विचार एक जैसे नहीं हैं। लेकिन यह तो सभी चाहते हैं कि भारत सरकार और यहां के लोग उन्हें कभी भूले नहीं। उनको अपना मानें। जब भारत आजाद हुआ था तब भारत सरकार की ऐसी नीति बन गई थी कि वे उन देशों के नागरिक हैं उनकी स्वामिभक्ति, उनकी निष्ठा अपने देशों के साथ है। इसलिए उन्हें वे अपना नहीं मानते थे। अब सरकार में नीतिगत परिवर्तन हुआ है। अब उन्हें 'अपना' मानते हैं। जो भारतीय मूल के लोग हैं उनकी सांस्कृतिक निष्ठा भारत के साथ है। राजनीतिक दृष्टि से वे वहां के नागरिक होंगे पर सांस्कृतिक दृष्टि से वे भारतीय हैं। इसलिए उनकी अपेक्षाएं हैं कि भारत उन्हें भूल न जाए। उन्हें याद रखे। जब कभी अवसर आया है भारतीय मूल के लोग सदा भारत के साथ रहे हैं। उनके साथ परस्पर सम्बन्धों को और अधिक दृढ़ करने की आवश्यकता है।

लालित्य ललित : आपने पी.आई.ओ. कार्ड की भी बात कही थी। उसकी रिपोर्ट भारत सरकार को पेश की गई थी। उसकी कितनी प्रगति हुई है? क्या कोई ठोस काम हुआ है अभी तक?

बालेश्वर अग्रवाल : पी.आई.ओ. कार्ड की भूमिका दोहरी नागरिकता से जरा कम है। सरकार ने यह तो घोषणा कर दी है कि पहले जो इसकी फीस थी, उसको अब कम करने को कहा गया है जिसे सरकार ने अंततः स्वीकार भी कर लिया है। हर एक दूतावास को यह सूचना दे दी गई है। पी.आई.ओ. कार्ड की फीस 300 अमेरिकन डॉलर होगी। उसकी वैधता पंद्रह वर्षों तक रहेगी, बच्चों के लिए जिनकी उम्र बारह वर्ष से कम होगी, उन्हें 150 डॉलर फीस के रूप में अदा करने होंगे। उन्हें वीसा लेने की जरूरत नहीं पड़ेगी, बल्कि करीब–करीब उन्हें वे सभी सुविधाएं मिल जाएंगी जो अनिवासी भारतीयों को यहां उपलब्ध हैं। यह प्रक्रिया दूतावासों ने शुरू कर दी है।

लालित्य ललित : आमतौर पर विदेशों में कैरियर डिप्लोमेट, मसलन भारतीय विदेश सेवा के अधिकारियों को भेजा जाता है। आप नहीं समझते कि श्रीलंका, त्रिनीडाड और टुबैगो, नेपाल, मॉरीशस, कम्बोडिया, फिजी आदि देशों में प्रमुख संस्कृति कर्मियों व समाज के प्रखर लोगों को भेजा जाए?

बालेश्वर अग्रवाल : ये जो राजदूत भारत सरकार द्वारा भेजे जाते हैं, इस संबंध में संस्था की ओर से भी पत्र–व्यवहार किया गया था। निवेदन किया गया था कि जिन देशों में भारतीय मूल के लोग अधिक हैं, जो हमारे पड़ोसी निकटवर्ती देश हैं ... सांस्कृतिक दृष्टि से जो निकट हैं ... इन देशों में आई.एफ.एस. अधिकारी को भेजना अनिवार्य न रखा जाए। परंतु अभी तो एक किस्म की 'मोनोपली' बनी हुई है।

मैं समझता हूँ कि 100 के करीब राजदूत भारत के विदेशों में स्थित दूतावासों में हैं। उसमें से ऐसे चार या पांच हैं जो आई.एफ.एस. नहीं हैं। कुछ अधिकारियों को सेवानिवृत्ति के बाद भी यह दायित्व सौंप दिया जाता है।

हमारी यह धारणा है कि संस्कृतिनिष्ठ व्यक्तियों को भी भेजा जाना चाहिए पर वह योग्यता पर खरा उतरना चाहिए। लेकिन ऐसा लगता है कि भारत सरकार ने इस पर गंभीरता से विचार नहीं किया है।

लालित्य ललित : क्या आप नहीं समझते कि सांस्कृतिक स्तर पर भारत की ओर से हमेशा सक्रिय भाव रहा है। लेकिन व्यापारिक स्तर पर संबंधों को लेकर चुप्पी साध ली जाती है। ऐसा क्यों?

बालेश्वर अग्रवाल : वैसे तो सांस्कृतिक पक्ष का भी जितना उपयोग होना चाहिए, वह नहीं हो रहा है। व्यापारिक दृष्टि से इसके लिए व्यापारिक संगठन प्रयास कर ही रहे हैं। कोई सरकार चाहे या ना चाहे, व्यापारिक संगठन इस दिशा में आगे बढ़ रहे हैं। मैं समझता हूँ कि सांस्कृतिक दृष्टिकोण को भी अभी मजबूत करना होगा।

लालित्य ललित : प्रवासी भवन की इन दिनों काफी चर्चा है। यह भवन कब तक बन जाएगा? और आगे की आपकी योजनाएं क्या होंगी?

बालेश्वर अग्रवाल : सरकार की ओर से नई दिल्ली स्थित राऊज़ एवेन्यू पर 500 वर्ग मीटर भूखण्ड हमें मिल चुका है। हमने भूमि को अपने अधिकार में ले लिया है। आगे की योजना बन चुकी है। प्रवासियों के लिए, कमरों की व्यवस्था, समिति रूम, सभागार आदि अनेक व्यवस्थाएं वहां की जाएंगी। एक अनुमान के तहत एक करोड़ रुपये इस भवन पर व्यय किए जायेंगे। चार मंजिला यह भवन एक वर्ष में पूरा होने की उम्मीद है। इसके लिए लोगों से धन संग्रह किया जा रहा है। प्रवासी भारतीयों के अतिरिक्त भारत में रहने वाले लोगों से भी धन संग्रह के लिए सम्पर्क किया जा रहा है। जो व्यक्ति 2000 डॉलर अथवा एक लाख रुपए देकर इसके सदस्य बनेंगे उन्हें अथवा उनके परिजनों को इस भवन में प्रतिवर्ष सात दिन तक निःशुल्क रहने की सुविधा का प्रावधान किया जा रहा है।

□□□

तोबा

● अभिमन्यु अनत

'लाल पसीना' जैसे विख्यात उपन्यास के कृतिकार अभिमन्यु अनत मारीशस के यशस्वी हिंदी कथाकार हैं। भारतीय समाज के सांस्कृतिक अहसासों को महसूस करते मारीशस में बसे भारतवंशियों के वे प्रबल प्रवक्ता एवं कथाकार रहे हैं। एक अति संवेदनशील मगर कथा भूमि के लिए अनिवार्य कथानक पर लिखी उनकी यह कहानी हमारे समय पर दर्दनाक टिप्पणी है।

इसमायेल रंगू को न तो फ्रेंच आती थी और न ही अंग्रेजी। लेकिन अरबी और उर्दू इन दोनों जबानों पर उसको महारत हासिल थी। कम से कम गाँव वाले तो यही मानते थे। गाँव के जो बच्चे जो कभी उससे इन दोनों जुबानों में मजहबी और तहजीबी इल्म लेते रहे थे, आज तीस साल से ऊपर की उम्र के थे। इनमें कई तो शादीशुदा भी थे और कई सरकारी नौकरी में लग गये थे। अंग्रेजी – फ्रेंच न जानने के कारण वह मदरसे के अपने दोनों साथियों की तरह सरकारी स्कूलों में उर्दू – टीचर नहीं बन पाया।

मकतब छोड़े उसे बीस साल होने को थे। उसके अपने सात बच्चों में सब से बड़ी लड़की सोलह साल की हो चली थी। अपनी बीवी की बात मानकर उसने मदरसे की खैराती पढ़ाई बन्द करके दुकानदारी शुरू की थी। सात बच्चों में पांच लड़कियाँ थीं। चपरासी की नौकरी से रिटायर होकर उसने घर के पिछवाड़े की जमीन के टुकड़े में सब्जियाँ उगानी शुरू की थी पर उससे कोई खास आमदनी न होने के कारण उसने अपने ससुर की मदद से घर के आगे वाले भाग में इमारत खड़ी करके दुकान वाला धंधा शुरू किया था।

खाद्य पदार्थों की उस दुकान के ठीक ढंग से न चल पाने के दस महीने बाद उस के दिमाग में वह नया ख्याल पैदा हुआ था। यह जानते हुए भी कि उसका वैसा करना झमेला

पैदा करना था वह बात को आगे बढ़ा कर ही रहा। अपनी बीवी से तर्क करते हुए उसने दलील रखी थी।

— ऐसा करने वाला मैं पहला आदमी थोड़े ही हूँ। वैसे भी काम तो काम होता है। तीन साल के भीतर तीन लड़कियों की शादी करनी है। बिरादरी वालों से भीख मांग कर इस फर्ज को निभाने से बेहतर तो यही होगा कि अपने बलबूते किसी हद तक भी जाकर इस पाक जिम्मेवारी को सम्भाल सकूँ।

अपने पड़ोस के अंग्रेजी—टीचर से उसने वह आवेदन—पत्र लिखवाया था। दो महीने बाद जब उत्तर नहीं आया तो उसने रामजीत से दूसरा पत्र लिखवाया। रामजीत ही की सलाह पाकर वह जिला परिषद के सचिव से मिलने गया। रामजीत की बात को ध्यान में रखकर वह उस दफ्तर में खाली हाथ नहीं गया था। इसमायेल भी भली भाँति जानता था कि कागजात को आगे बढ़ाने के लिए यह सभी कुछ करना ही पड़ता है।

पर्मिट की इजाजत के लिए पुलिस अफसर को भी ख्याल में रखना पड़ा। उससे आगे स्वास्थ्य विभाग के अफसर की मुट्ठी भी तो गरम करनी थी वरना यहाँ तक पहुँच कर भी पर्मिट रुक सकती थी। मेडिकल अफसर के साथ इसमायेल रंगू को कुछ अधिक ही परेशानी झेलनी पड़ी। वह भी रंगू की तरह मुसलमान था। उसका फर्ज बनता था कि वह अपने एक मजहबी भाई को गलत काम करन से रोके। बड़े ही गम्भीर स्वर में उस अफसर ने इसमायेल से कहा।

— मुसलमान होकर शराब बेचने का धंधा करना चाहते हो?

— पीता तो नहीं हूँ। बेचने में क्या हर्ज है?

— लोग तुम्हें काफिर कहेंगे।

— कहा करें। मुझे इससे अधिक परवाह अपने बाल—बच्चों की है। मुसलमान के लिए अगर शराब हराम है तो अपने बाल—बच्चों का ख्याल न रखना और उनकी जिन्दगी को बर्बाद होने को छोड़े रखना क्या उससे भी ज्यादा हराम नहीं?

दोनों के बीच पूरे घंटे भर की बहस चली थी। जिला परिषद के सचिव और पुलिस अफसर से दो गुने ज्यादा देकर ही इसमायेल रंगू अपने मजहबी भाई को उस गुनाह के एक बहुत ही छोटे हिस्से का जिम्मेदार बना पाने में कामयाब रहा।

रामजीत का बाप जो कि इसमायेल के बाप का जिगरी यार था, बोलता रहता था कि आदमी कब तक रेल गाड़ी की तरह पटरी पर चलता रहेगा। कभी तो पटरी से उतर कर आजादी के साथ चल कर तो दिखाये। लोगों को कुछ करके तो चौंकाये।

इसमायेल को जब अपनी दुकान में शराब बेचने की पर्मिट मिल गयी और जब उसने खुले—आम अपनी दुकान से शराब बेचना शुरू किया तो अस्सी साल का रूपलाल मिश्र उसके पास पहुँच कर बोला था।

— अरे इसमायेल, तू ने तो मुझे भी चौंका दिया। मैंने तो ब्राह्मण होकर मॉस — मछली पचा लेने की हिम्मत की, तुम तो मुसलमान होकर शराब बेचने का साहस कर बैठे।

— लेकिन चाचा, इस गाँव के आपके कई मुसलमान दोस्त तो चेंग — हीन की दुकान में जम कर शराब पीते रहे हैं। उन्हें तो आपने कभी साहसी नहीं कहा।

— उनमें और तुममें फर्क है।

— कैसा फर्क?

— वे तो अपनी खुदगर्जी में मरी हुई मछली की तरह बह गये। जब कि तुम तो अपने परिवार के लिये धर्म के पाखंड से बगावत कर बैठे।

— कानून से नही; मैंने तो न समझ में आने वाली हिदायत को नामंजूर किया है।

रूपलाल से एकदम अलग तेवर के साथ मदरसे के सरदार और जमात का मतलवी रात में रंगू के घर पहुँचे थे। मदरसे के उस्ताद ने कहा था।

— मुसलमान होकर यह गैर मजहबी हरकत करने की हिम्मत कैसे की तुमने?

जमात के मतलवी ने भी सवाल किया था।

— क्या तुम्हें खुदा का जरा भी खौफ नहीं?

— उसी के खौफ से बचने के लिए तो इतनी बड़ी हिम्मत की है।

— क्या मतलब?

— ताकि वह मुझसे यह न पूछे कि आखिर मैंने अपनी औलादों की परवरिश क्यों अच्छी तरह नहीं की!

सात दिन बाद अगले शनिवार को जमात की मांग पर इसमायेल ने रंगूने जमात की बैठक में हाजिरी दी थी। पूरे घण्टे तक एक–एक सदस्य की पहले तो हिदायतें और नसीहतें झेलता रहा था, फिर उन सभी के नाराज़गी से भरे सवालों का सामना करता रहा। कुछ लोग थू–थू करके उस पर थूक भी बैठे। जो नौजवान थे वे गाली–गलौज पर उतर कर धमकी भी देते रहे थे।

— काफिरों के चमचे हो तुम! गद्दार हो। इस्लाम के नाम पर धब्बे हो।

उसका अपना सब से जिगरी दोस्त दाऊद ने तो उसके गरेबान को मुट्ठी में जकड़ कर कहा था।

— साले! अगर तीन दिन के भीतर तुमने अपनी इस शैतानी हरकत को बन्द नहीं किया तो हम तुम्हारी दुकान के साथ–साथ तुम्हारे घर को भी जला डालेंगे कमीने।

इसमायेल अपने दोस्त को खामोशी के साथ देखता रहा। यह बोल जाने का साहस भी उससे नहीं हो पाया था।

— तुम, दाऊद तुम? हेरोयन और ब्राउन–सूगर का धंधा करने वाला तुम मुझे कमीना कह रहे हो?

इसमायेल का दूसरा घनिष्ट मित्र था प्रमोद। जमात की उस रात की काण्ड के दूसरे दिन बाद वह इसमायेल के घर पहुँचा था। बाहर खड़े रहकर वह इसमायेल के दुकान बन्द करने का इंतजार करता रहा था। बन्द होते ही उसने दुकान के पिछवाड़े में उसके घर के दरवाजे पर दस्तक दी थी।

खतीजा ने दरवाजा खोला था। दस मिनट बाद उसका खाविंद आखिरी ग्राहकों को आखिरी गुदकियाँ देकर दुकान से घर को आ सका था। थका–मांदा अपने दोस्त के पास बैठ गया था। प्रमोद ने ही बात शुरू की।

– दुकानें सात बजे बन्द हो जाती हैं। इस वक्त साढ़े दस बज रहा है।

– ये चोरी–चुपके पीने वाले तो सात के बाद ही...।

– सात के बाद दुकान के भीतर ग्राहकों का होना गैरकानूनी होता है।

– जानता हूँ।

– चलान किए जाने का खतरा क्यों मोल रहे हो?

– चन्द रुपये अधिक कमा पाने के लिए।

– सात के बाद शराब बेचते रहने के जुर्म में पकड़े जाने पर इस कमाई के चार गुने जुर्माना चुकाने पड़ जायेंगे। पुलिस कभी भी धावा बोल सकती है।

– पुलिस धावा नहीं बोलेगी।

– कुछ कुत्ते मालिक का खाकर भी मालिक को काटने से नहीं चूकते। तुम बहुत गलत काम कर रहे हो इसमायेल। खुद को सज़ा तो दे ही रहे हो, अपनी पत्नी को भी। रात तक अपने को ग्राहकों का गुलाम बनाये रखते हो। ऊपर से अपने दो लड़कों को वहाँ अपने साथ रखकर उनकी पढ़ाई में बाधा पहुँचा रहे हो...।

– प्रमोद! मैंने तो सोचा था कि तुम मुझे इस बात की बधाई दोगे...।

– तुम्हें इस बात की बधाई दूँ कि तुम अपने मजहब के खिलाफ़ जा रहे हो? इस बात के लिए मैं तुम्हारी सराहना करूँ कि तुम अपने घर के ठीक सामने शराबखाने खोले बैठे हो। मैं तुम्हें इस बात की बधाई दूँ कि इस घर में अब घर के लोगों और खास मेहमानों के बदले शराबियों के लिए स्नाक और गजाक तैयार होने लगे हैं। तुम ग्राहकों से अंडे, चिकन, मछली के आर्डर लेते हो और उन्हें तैयार करने के आर्डर अपनी बीवी और बेटियों तक ट्रांसफर कर देते हो, इस बात के लिये तुम्हें बधाई दूँ?

इस लम्बे तर्क के बाद कमरे में एक लम्बी खामोशी छा गयी थी। एक लम्बी साँस के बाद प्रमोद ही ने आगे कहा।

– जो बात तुम्हारे अपने मजहब के खिलाफ जाती है उसे तुम क्यों कर रहे हो? तुम्हें तो मेरे भाई की कहानी मालूम है।

इसमायेल रंगू को प्रमोद के भाई के साथ गुजरी एक–एक बात याद आ गयी। वह उन सभी का चश्मदीद गवाह जो था। प्रमोद का परिवार आर्यसमाजी था। उसके परिवार में सभी लोग शाकाहारी थे। सिर्फ प्रकाश मॉस–मछली खा लेता था। लेकिन जब उसने अपनी दुकान में शराब बेचना शुरू किया तो उसकी सभा के लोगों ने उसके साथ धर्मयुद्ध छेड़ दिया। प्रमोद के बाप से पंडिताई का अधिकार छीन लिया गया। उसके पूरे परिवार को मलेच्छ करार दिया गया था।

गाँव की आर्यसभा के मन्त्री हरिमन ने तो प्रकाश को सभा का सदस्य रहने का अधिकार भी नहीं दिया। उसकी दुकान से सौदा उठाने वाले ग्राहक ने जो सभा के सदस्य थे, दुकान बदल ली। बहिष्कार और दिवालियेपन के कारण प्रकाश को दुकान बन्द कर देनी पड़ी। मधुमेह का रोगी तो था ही, शराब बेचना बन्द करके खुद शराब में डूब कर अपनी पत्नी को विधवा और बच्चों को अनाथ कर गया।

प्रमोद ने कहा–

– चोरी चुपके शराब पीते रहने वाला और शास्त्रों की बात करते रहने वाले हरिमन से मैं कहता रहा कि वह मुझे बताये किस शास्त्र में वे सारी वर्जनाएँ लिखी हुई है? पर वह कभी बता नहीं पाया। आज शराब पीकर हरिमन सभा का मंत्री बना हुआ है और मैं शराब छुए बिना सभा से बहिष्कृत हूँ। मैं उन सदस्यों को भलीभांति जानता हूँ जो अपनी व्हीस्की ड्राईवर या नौकर से खरीदवाते हैं। उन्हें भी जानता हूँ जो गाँव से बाहर के सुपरमार्केटों से शराब और माँस–मछलियाँ खरीद लाते हैं।

अब तक चुप्पी साधे इसमायेल ने धीरे से सवाल किया।

– तुमने कभी कोई ऐसा काम नहीं किया जो तुम्हारे अपने धर्म में मना है?

– मैं आँखें मूंद कर अपने धर्म के रास्ते कभी नहीं चला।

– तो फिर मुझे ऐसा करने से क्यों रोक रहे हो। मेरे ग्राहकों में ऐसे मुसलमान ग्राहक हैं जो दुकान बंद हो जाने के बाद मेरे गोदाम वाले भाग में आकर पीते हैं। कुछ तो अपने बच्चे को भेज कर रम खरीद ले जाते हैं। इन पर कोई अंकुश क्यों नहीं लगाता?

– कल मैं अपनी बेटी और बेटे की शादियाँ काली पतलून–टाई और सफेद गाऊन –ब्लाऊज में करने लगूंगा तो तुम खुश होगे?

– बिल्कुल खुश नहीं होऊँगा।

– और चाहते हो कि मैं तुम्हारे पागलपन पर दुखी न होऊँ? क्या शराब का धंधा ही एक धंधा रह गया था तुम्हारे लिए? कोई इससे अच्छा काम...।

– काम भी अच्छे बुरे होते हैं क्या? तुम यह नहीं मानते कि हर काम अपनी जगह पर अपनी खास अहमियत रखता है?

– मैं तो यह मानता हूँ कि हर काम अपनी जगह पाक होता है। लेकिन आदमी वह काम क्यों करे जिसकी उसे उसका मजहब इजाजत नहीं देता।

दोनों मित्रों की बातचीत चल ही रही थी कि बाहर से किसी के पुकारने की आवाज़ आयी। अपना नाम सुनकर खुद इसमायेल रंगू अपनी जगह से उठा और खिड़की से झांक कर बाहर की ओर देखा। बरामदे की बत्ती की रोशनी में हबीब को खड़े पाकर उसे हैरानी हुई। इतनी रात गये दुकान से किसी जरूरी चीज़ के लिए ही कोई तकाजा करता था। हबीब तो उसकी दुकान का ग्राहक कभी रहा ही नहीं।

दरवाजा खोलकर इसमायेल सामने आ गया। इतनी रात गये हबीब के अचानक पहुँच आने का कारण वह पूछ पाता कि इससे पहले खुद आगंतुक बोल गया।

— कल शाम ठीक छह बजे जमात में मस्जिद के इमाम के सामने मौजूद होना है।

— क्यों?

— पहुँचने पर खुद पता चल जायेगा।

— छह बजे तो मैं दुकान में....।

— मेरा काम तुम्हें यह खबर पहुँचाना था। आगे तुम जानो।

यह कहकर हबीब रास्ते की ओर लपक गया।

इसमायेल का घर छोड़ने से पहले प्रमोद ने उसकी बीवी की हाजिरी में अपने दोस्त को एक आखिरी दफ़ा हिदायत देते हुए कहा।

— मेरी बात मानो और अपनी दुकान को अनाजों की दुकान ही रहने दो। अपनी दुकान में अगर तुम शराब का धंधा कायम रखोगे तो तुम्हारे लोग तुम्हें कहीं का नहीं छोड़ेगे।

खतीजा ने भी अपने खाविंद से वही मांग की।

— मेरी भी यही गुजारिश है तुम से कि तुम जमात के लोगों से झगड़ा मत मोल ले बैठो।

— मैं कल उस जमात में शामिल होऊँगा ही नहीं। उन लोगों को जो कुछ करना है वे कर लें।

रात में उसके बच्चे भी उससे यही कहते रहे कि उसको जमात के सामने जाना ही चाहिए। उसकी बेटी शगुफ़ा बोली।

— अब्बू! तुम नहीं जाओगे तो जमात वाले हमारी नाक में दम कर देंगे। इमाम साहब को अपनी तौहीन गवारा नहीं होगी।

इसमायेल सोचता रहा। सोचता रहा फिर बोल उठा।

— वहाँ तीस–चालीस लोग होंगे। मैं अकेला...खैर मैं अकेला ही सही। उनके सवालों का जवाब न सही उनसे सवाल तो कर पाऊँगा। इसके बाद वे जो चाहें कर लें। मुझे जमात से बाहर ही तो करेंगे इससे ज्यादा और क्या कर सकते हैं?

दूसरे दिन ठीक छह बजे इसमायेल रंगू जमात के लोगों के सामने हाजिर हुआ। पहला सवाल जमात के मतवली ने किया।

— तुम्हें यहाँ बुलाने का कारण बताना पड़ेगा हमें?

— मुझे वजह मालूम है।

मतवली ने मस्जिद के इमाम की ओर देखा। इमाम पहले अपने सामने खड़े इसमायेल को देखता रहा। इसमायेल को लगा कि वह उससे यह पूछ गया था।

— तुम्हारी यह हिम्मत?

उसकी दाढ़ी हिली और फिर उसके होंठ।

— तुम अपने को मुसलमान मानते हो?

— आप सभी को मालूम है कि मैं मुसलमान हूँ तो फिर इस तरह का सवाल क्यों?

— तुम सवाल न करके जवाब दो। क्या किसी मुसलमान को शराब का धंधा करते देखा है तुमने?

— शराब पीते तक देखा है।

— मेरे सवाल का सीधा जवाब दो।

— क्या शराब बेचना शराब पीने से अधिक बड़ा गुनाह है?

— मैं फिर कहे देता हूँ कि तुम्हें सवाल का जवाब देना है।

— क्या मेरा सवाल इतना कठिन है कि उसका उत्तर नहीं दिया जा सकता।

अपनी जगह पर से मतवली चिल्ला उठा।

— यह मत भूलो कि तुम मस्जिद के इमाम से बाते कर रहे हो। चोरी और सीनाजोरी? तुम से जो सवालात किये जायेंगे उनके सीधा जवाब दो।

— सवाल का हक तो मुझे भी मिलना चाहिए।

— इमाम की बगल में बैठे सब से अधिक उम्र वाले व्यक्ति ने मतवली की ओर देख कर कहा।

— ठीक है हम पहले इसके सवाल सुन लेते हैं।

— मतवली ने इमाम की ओर देखा। इशारा पाकर उसने रंगू से कहा।

— पूछो क्या पूछना है।

— क्या जमात को यह मालूम नहीं कि यहाँ ऐसे मेमबरान भी बैठे हैं जो आधी रात तक शराबखाने में बैठे रहते हैं?

लोगों के बीच से दाऊद खड़ा हो गया।

— हम लोग यहाँ इसमायेल रंगू से जवाब तलब करने के लिए जुटे हुए हैं न कि यहाँ के दूसरे सदस्यों के मामलों को लेकर।

इसमायेल रंगू ने इमाम की ओर देखा और उसी को सम्बोधित करते हुए कहा।

— इमाम साहब! इस जमात को मालूम है कि यहाँ इस समय एक से ज्यादा अच्छे मुसलमान हैं जो घर पर ही नहीं शराबखाने में भी शराब पीते हुए देखे गये हैं।

खड़ा हुआ आदमी फिर चिल्ला उठा।

— हम यहाँ उन दूसरे की जवाबदेही के लिए नहीं, तुम्हारी जवाबदेही के लिए...।

उसका वाक्य पूरा होने से पहले रंगू बोल उठा।

— हम उन लोगों से इसलिए सवाल नहीं कर सकते क्योंकि इनमें से कोई बहुत धनी आदमी है या कोई मतवली का अपना रिश्तेदार।

लोगों के बीच से किसी ने कहा।

— हम यहाँ उक्टापैंची के लिए इकट्ठे नहीं हुए हैं। हम यहाँ एक ऐसे आदमी के लिए जमा हुए हैं जिसने मजहब का कानून तोड़ा है।

इसमायेल बोला।

— इस देश में एक से ज्यादा होटल हैं जिसके मालिक मुसलमान हैं। इन सभी होटलों और रेस्तरां में दिन दहाड़े शराब बेची जाती है। पर ये लोग मजहब के कानून तोड़ने वाले नहीं कहलाते क्योंकि अपने रुपयों के कारण ये लोग अच्छे मुसलमान ठहरे।

एक तीसरे व्यक्ति ने जोरदार आवाज में कहा।

— इस व्यक्ति को बहुत छूट दी जा रही है। मेरा तो यही कहना है कि इस आदमी से कुछ पूछे बिना इसे जमात से बाहर कर दिया जाये। यह काफ़िर है। इसलाम का गुनाहगार है। ऐसे आदमी के घर का पानी पीना भी गुनाह है।

इसमायेल के चेहरे पर एक कठिन मुस्कान थिरक आयी। वह बोला।

— काश यह तोबा उन धनवानों और सियासत के लोगों से भी होता जो मुसलमान होते हुए भी शराब जम कर बेचते और पीते हैं। क्या इस जमात में इतना दम है कि यहाँ बैठे उन चन्द शराबियों को यहाँ से बाहर निकाल दे जो चोरी–चुपके शराब का मजा लेते रहते हैं!

दाऊद अपनी जगह से उठ कर इसमायेल के पास गया। उसके गरेबान को मुट्ठी से जकड़ कर घसीटता हुआ दरवाजे तक पहुँचा और उसे जोर का धक्का देकर बाहर को धकेल दिया। एक–दो लोग उसे ऐसा करने से रोकने की कोशिश करके भी कामयाब नहीं हुए।

अस्पताल में बारह दिन रहने के बाद प्रमोद के साथ उसकी कार में इसमायेल अपने घर लौट रहा था। प्रमोद उसे दो दिन पहले घटी घटना के बारे में बताना चाहकर भी नहीं बता पा रहा था। इसमायेल के सिर की मरहमपट्टी का एक हिस्सा उसकी दाँयी आँख को भी घेरे हुए था। आँख की चोट माथे के घाव से भी गहरी थी। आपरेशन के बावजूद डाक्टर यह आश्वासन नहीं दे पाया था कि उसकी उस आँख की रोशनी एकदम पहले जैसी लौट सकती है।

कार में पीछे उसकी बीवी खतीजा और मंझली बेटी शायरा भी थी। प्रमोद ने उन्हें पहले ही से मना कर रखा था कि वे इसमायेल को परसों की घटना के बारे में अभी कुछ न बतायें। अस्पताल में उसे देखने आये अपने पड़ोसी से उसे पहले ही सप्ताह बीती हुई बात सुनकर इसमायेल एकदम दुखी ओर हताश था। शायरा इलाके की सबसे सुंदर लड़की थी। जमात के मतवली ने अपने एक रिश्तेदार की बेटी से उसकी सगाई कर दी थी। वही लड़के के परिवार के साथ इसमायेल के घर पहुँच कर सगाई तोड़ गया था। खतीजा उस सगाई के लिए तो पहले तैयार नहीं थी। खतीजा बोली थी कि बड़ी बेटी अभी घर पर कुंवारी बैठी हुई है और उससे पहले छोटी बहन की मंगनी हो जाये। पर बाद में लड़के के घर बार अच्छे होने और बड़ी बेटी की रजामंदी पर पूरा परिवार तैयार हो गया था।

रास्ते में कार ड्राइव करते हुए प्रमोद सोचता रहा कि क्या यह अच्छा रहेगा कि घर पहुँच कर इसमायेल खुद अपनी आँखों से वह तबाही देखे या...।

वह तय नहीं कर पा रहा था। उसकी कार की रफ्तार शिथिल हो चली थी। कई कारें यहाँ तक कि मोटरसाईकिलें भी उसकी कार को ओवरटेक करके आगे को निकलती जा रही थी।

प्रमोद उधेड़बुन में पड़ा सोचता ही रहा।

– या कि उसे रास्ते ही में बात बता दें।

दोपहर की कड़कड़ाती धूप थी। अगल–बगल के गन्ने के खेत फसल के बाद खुले मैदान से दिख रहे थे। हवा में उमस थी। यह उमस प्रमोद के अपने मन में भी थी। कशमकश को अपने से झकझोरने में सफल होकर प्रमोद ने अपनी कार एक घने पेड़ की छाया में रोक दी।

स्टीयरिंग व्हील पर से अपने हाथों को हटाया। अपने लंगोटिया यार की ओर देखा और चाहा कि उसे घर पहुँचने से पहले बात बता दे। तभी उसने अपने पीछे बैठी आईसा के हाथ का स्पर्श अपने कंधे पर पाया और उसकी फुसफुसाहट को सुन पाया।

– नहीं चाचा।

प्रमोद ने तुरन्त कार स्टार्ट कर दी। आधे घण्टे बाद कार इसमायेल की दुकान और उसके पीछे के उसके घर से बस चन्द कदमों की दूरी पर थी।

चन्द मिनट बाद चन्द कदमों को पार करके कार दुकान के सामने आ रूकी। ठीक कार की इंजन की तरह इसमायेल की धड़कनें भी क्षण भर रुक कर फिर तेज गति से स्पंदित होती रही। वह अपनी एक आँख से अपनी ध्वंस दुकान को देखता रहा।

□□□

अस्वीकृति

● पद्मेश गुप्त

"शादी को एक साल से ऊपर हो गया है। कब चलोगे भारत?" हर चौथे दिन अनीशा यही पूछती और उसे राजीव से वही जवाब मिलता, "जब तक तुम्हें ग्रीन कार्ड नहीं मिल जाता।"

"मेरा मन, मेरी रूह हमेशा तुम्हारी ही रहेगी समीर। साया बन कर मेरे साथ हमेशा. हमेशा...तुम ही रहोगे।"

समीर फफक–फफक कर रो रहा था। "मैं कैसे जी पाऊँगा तुम्हारे बग़ैर अनीशा। मेरी हर सहर होती है तुम्हारे नाम से, हर पहर ढलती है तुम्हारे नाम से।"

"बी सेंसिबुल, समीर...प्लीज़, बी सेंसिबुल। क्या तुम अपने बड़े भाई की शादी से पहले और बिना सेटिल हुए घर बसा सकते हो? और मैं क्या अपनी ख्वाइशों के लिए सुनैना का रिश्ता न होने दूँ? तुम तो अच्छी तरह से जानते हो कि सुनैना मुझसे छोटी ही नहीं है उसके सफेद दाग़ भी हैं। जब तक मेरी शादी नहीं हो जाती पिताजी मेरी छोटी बहन सुनैना की शादी नहीं करेंगे। ऐसी परिस्थति में उसका रिश्ता हाथ से कैसे निकलने दूँ? उसकी ज़िन्दगी अगर मेरी वजह से खराब हो गयी तो ग्लानि मुझे कभी चैन से जीने नहीं देगी।"

"और तुम, मेरे बग़ैर, तुम जी लोगी अनीशा? ये गुज़रे हुए लम्हें, मेरी यादों की तड़प, क्या तुम्हें चैन लेने देंगे कभी?"

"नहीं...कभी नहीं... समीर, लेकिन मेरी आत्मा सिर्फ तुम्हारी ही रहेगी, मेरे हृदय के हर स्पंदन में तुम हमेशा धड़कते रहोगे। तुम मेरी ज़िन्दगी से कभी दूर नहीं होगे। सच पूछो तो मुझे कभी लगता ही नहीं कि मैं तुमसे दूर जा रही हूँ। हम हमेशा संपर्क में रहेंगे। मेरे जीवन पर न सही लेकिन मुझ पर तुम्हारा अधिकार हमेशा इसी प्रकार बना रहेगा। मैं जब भी तुमसे

मिलूँगी, तुम इसी तरह बाहों में लोगे न मुझे समीर? प्लीज़ कभी पराया मत होने देना मुझे... प्लीज़।" कहते–कहते अनीशा का धैर्य भी टूट गया और वह सिसक–सिसक कर रोने लगी।

समीर और अनीशा पल भर में भावनाओं के पूरे बहाव के साथ एक–दूसरे में पूर्णतः समर्पित हो गए।

तभी कॉल बेल बजी और अनीशा का स्वप्न टूटा। वह स्वप्न, जो अकसर अनीशा को समीर के पास ले जाया करता है। शब्दशः चलचित्र की तरह समीर के साथ की वह शाम, अनीशा को अकसर बेचैन करती।

द्वार पर राजीव खड़ा था। "तुम तैयार नहीं हुई अभी तक! अरे अविनाश और कल्पना की मैरिज ऐनिवर्सिरी है, बॉस्टन पहुँचने में कम से कम दो घण्टे लगेंगे।"

"आई एम सो सॉरी राज, आँख लग गई थी, बस दस मिनट दो, आई विल बी रेडी सून।" कहते हुए अनीशा बेडरूम की ओर चली गयी।

"उफ्फ... ये औरतें, सारा दिन घर में पड़ी आराम करती रहती हैं, और मर्द, सारा दिन मजदूरी करे फिर बीवी का इंतज़ार।" राजीव बड़बड़ाता हुआ सोफे पर बैठ गया।

शृंगार दान पर पड़ी सिंदूर की डिब्बी अकसर अनीशा को वन्दना चाची के शब्दों की याद दिलाती–"अनु, आज राजीव के साथ इन सात फेरों के मध्य अग्नि में समाहित हो गया है तुम्हारा अतीत, हम सब पराये हो गए हैं, अब राजीव ही तुम्हारा सब कुछ है। उसका सुख तुम्हारा सुख है, उसका दुख तुम्हारा दुख है। सिंदूर का यह टीका ही तुम्हारे अस्तित्व की पहचान है।"

अनीशा ने छोटी–सी बिन्दी लगाकर अंतिम बार आइने में अपना अक्स देखा, और एक क्षण के लिए महसूस किया कि समीर ने आकर उसका माथा चूम लिया है।

अनीशा ने पल भर के लिए अपनी आँखें बन्द कीं और राजीव की तीसरी पुकार पर बाहर आ गयी। "कैसी लग रही हूँ राज?"

"कम ऑन अनीशा, लैट्स गो।" राजीव अनीशा के प्रश्न को अनसुना करता हुआ बाहर निकल जाता है।

अनीशा को याद आती है समीर की आदत। जब कभी भी अनीशा उससे मिलती, पहले कुछ लम्हें तो वह अनीशा को निहारता और फिर अकसर अनीशा के कपड़ों पर टिप्पणी करता और उसकी सुन्दरता की तारीफ।

कुछ ही देर में राजीव और अनीशा की कार अमरीका के हाईवे पर दौड़ रही थी। लॉन्ग आईलैण्ड से बॉस्टन के बीच शाम के सात बजे अमरीका की खुली सड़कों पर जगमगाती फैशनेबुल इमारतें भी अनीशा के मन की घुटन दूर करने में असमर्थ थीं।

"शादी को एक साल से ऊपर हो गया है। कब चलोगे भारत?" हर चौथे दिन अनीशा यही पूछती और उसे राजीव से वही जवाब मिलता, "जब तक तुम्हें ग्रीन कार्ड नहीं मिल जाता।"

और मुर्झाया हुआ अनीशा का चेहरा और मुर्झा जाता।

इस बनावटी ज़िन्दगी में अनीशा का दम घुटता। वह समीर को अपने मन से निकाल नहीं पा रही थी। अमरीका की पार्टियाँ, बनावटी चहल–पहल, केवल व्यापारिक तरक्की की बात करना, अनीशा को रास नहीं आ रहा था।

राजीव लॉन्ग आइलैण्ड में एक सफल डॉक्टर था। अनीशा को सारे भौतिक सुख उपलब्ध थे। खलती तो बस तन्हाई। किसी ऐसे साथी की कमी जो उसके मनोभावों को बाँट पाता।

इन्हीं खयालों में कब बॉस्टन आ गया अनीशा को पता ही नहीं चला। हॉली डे इन में शानदार पार्टी का आयोजन था। म्यूज़िक, डांस और वस्त्रों के प्रदर्शन में डूबी एक और शाम काटनी थी अनीशा को।

इतने में एक आवाज़ पीछे से अनीशा को चौंका देती है।

"हे... अनीशा... तुम यहाँ!"

"सारिका... व्हाट ए प्लेज़ेन्ट सर्प्राइज, तुम कब अमरीका आयी?"

"एक हफ्ता पहले, बॉस्टन यूनिवर्सिटी में एडमिशन ले लिया है, पी.एच.–डी. कर रही हूँ, तुम बताओ, कैसी हो?"

आज एक अर्से बाद जैसे अनीशा का चेहरा खिला हो। दोनों सहेलियाँ पुरानी बातों में खो गयीं।

समीर का ज़िक्र आते ही सारिका पल भर के लिए चुप हो गयी। फिर खामोशी तोड़ते हुए बोली, "समीर जैसे आशिक कम ही होते हैं अनीशा। हे... उसका ई–मेल ऐड्रेस दे दूँ।"

"क्या समीर ईमेल पर उपलब्ध है, मज़ा आ गया।" अनीशा को जैसे नई ज़िन्दगी मिल गयी।

इतने में राजीव पीछे से अनीशा के कंधों को स्पर्श करता हुआ, सारिका को अपना परिचय देता है, "हैलो, आई एम राजीव, अनीशास हसबैण्ड।"

अनीशा तुरन्त चहकती हुई राजीव से सारिका का परिचय कराती है।

"कैसी लगी आपको मेरी सहेली?" सारिका राजीव से प्रश्न करती है।

"फर्स्ट क्लास, अनीशा जैसी शान्त और सहनशील स्वभाव की लड़की तो किस्मत वालों को ही मिलती है। बस बोलती थोड़ा कम है।" कह कर राजीव अनीशा को देख कर मुस्कुराने लगा।

सारिका पल भर के लिए सोच में पड़ गयी। "अनीशा तो कॉलेज में अपने बातूनी स्वभाव के कारण मशहूर थी, फिर यह बदलाव क्यों?"

वापस लौटते समय अनीशा का हाथ राजीव के हाथ को छूने लगा। राजीव उसके स्पर्श में ताज़गी महसूस कर रहा था। अनीशा अपनी सीट थोड़ी आरामदेह अवस्था में कर

हैड रेस्ट पर आँखें बन्द किए समीर के खयालों में खोई बैठी थी। बहुत दिनों के बाद आज समीर के विषय में किसी से कोई संवाद हुआ था। आज पहली बार राजीव अनीशा के चेहरे पर कुछ चमक देख रहा था।

अचानक अनीशा ने आँखें खोलीं और आश्चर्य से बोली, "राजीव, तुम और इस लेन में गाड़ी चला रहे हो? मैं तो हमेशा से कहते–कहते थक गई ... आज यह परिवर्तन कैसे? तुम्हारी स्पीड इतनी कम।"

"हाँ, अनीशा, आज घर जाने को मन ही नहीं कर रहा, आज तुम्हारे चेहरे की चमक, तुम्हारे हाथों के स्पर्श में बस यूँ ही चलते रहने का मन हो रहा है।"

अनीशा ने मुस्कुराते हुए अपनी सीट बेल्ट खोली और राजीव की जाँघों पर सर रख कर अध लेटी हो गयी। राजीव ने भी अपने हाथों से उसके चेहरे को समेट लिया और उसकी उँगलियाँ अनीशा के बालों में भटकने लगी।

पूरी रात राजीव अनीशा के खिले हुए बदन की खुशबू लेता रहा और अनीशा बन्द आँखों में समीर का चेहरा लिए अपनी खुशबू लुटाती रही। एक ऐसा बलात्कार होता रहा जहाँ विरोध नहीं था, सम्मान था परम्परा का, निर्वाह था, सम्बन्ध का।

यह पहली रात नहीं थी जब अनीशा का शरीर पति–पत्नी के रिश्ते का पूरा सम्मान कर रहा था और उसका मन समीर के खयालों में आलिंगनबद्ध था।

राजीव के साथ पहली रात भी...लाल कुर्ते में समीर ही आया था अनीशा के पास। राजीव का शरीर तो अपनी प्यास बुझा कर समय की धारा में आगे बढ़ जाता परन्तु अनीशा समीर की यादों को अपने साये में समेटे बस उस पल का इंतज़ार कर रही थी कि कब वह मुम्बई जाए और समीर से मिल सके।

सुबह राजीव के जाते ही अनीशा कम्प्यूटर पर समीर ऐट याहू डॉट कॉम पर प्रेम–पत्र लिखने बैठ गयी।

इधर समीर अनीशा का मेल पा कर खुशी से फूला नहीं समा रहा था।

ई–मेल ने दोनों बिछड़े प्रेमियों को एक बार फिर मिला दिया।

ई–मेल के सम्पर्क ने अनीशा को समीर के और अधिक करीब पहुँचाना शुरू कर दिया। अभी तक अनीशा समीर के व्यक्तित्व पर मोहित थी। समीर के बातचीत का अंदाज़, उसका सेंस ऑफ ह्यूमर, उसके प्यार करने के तरीके अनीशा के मन पर हावी थे परन्तु पत्रों के माध्यम से समीर के शब्द अनीशा को हज़ारों मील दूर से अपने आलिंगन में समेट उसके हर अंश को प्यार करते।

कभी–कभी अनीशा और समीर चैट लाइन पर आकर घण्टों कम्प्यूटर के माध्यम से संवाद करते।

"समीर, अब तो अशोक भइया का विवाह भी हो गया और तुम्हें नौकरी भी मिल गयी। तुम शादी कब कर रहे हो? किसी अमरीकन को भेजूँ?"

समीर जवाब लिखता है—"क्यों एक और ज़िन्दगी खराब करने का सुझाव दे रही हो? मैं उन इंसानों में से हूँ जो एक बार किसी का हो गया, तो हो गया।"

आज 16 अप्रैल था। अनीशा का जन्म दिन। सुबह राजीव के जाते ही जब अनीशा ने ई-मेल खोला, समीर के संदेश में अनीशा के जन्म दिन की शुभकामनाएं लिए पूरा गीत मुस्कुरा रहा था। अनीशा की ज़िन्दगी उसी कम्प्यूटर में समा चुकी थी। उसे विज्ञान जगत का सबसे बड़ा उपहार कम्प्यूटर ही लगने लगा।

अमरीका में अनीशा को वह भाषा ही नहीं मिलती जिसमें रोमांस अपनी बहार लिए खयालों को गुदगुदा सके। राजीव एक अच्छा इंसान ज़रूर था परन्तु अनीशा के लिए उसके पास उतना ही समय होता जितना काम करने वाला एक पुरुष अपनी पत्नी को दे सकता है। जब वे दोनों साथ भी होते तो उन दोनों के संवाद के विषय का संबंध उनके मनोभावों से न होता। न तो राजीव के पास वो भाषा थी और ना ही अनीशा के हृदय को छू सकने वाले शब्द।

शाम को राजीव भी अनीशा के लिए एक सोने की चेन के साथ लौटा। परन्तु अनीशा की निग़ाह में उस चेन का वज़न समीर के शब्दों से बहुत हल्का था।

एक दिन अचानक समीर ने अनीशा से प्रश्न किया, "कैसे गुज़ारी तुमने अपनी सुहाग रात?"

अनीशा ने बिना झिझक जवाब दिया था "तुम्हारी याद में।"

"झूठी!" समीर लिखता है बाहों में उसके समायी रही पूरी रात, हर उस जगह उसने तुम्हें छुआ होगा, जिस पर कभी मेरा अधिकार था, और मुझसे कहती हो कि मैं थी तुम्हारी याद में।"

"नहीं, समीर," अनीशा गम्भीर होते हुए समीर को बताने लगी, "हर पल मैं तुम्हारे खयालों में खोयी रही। मैंने तुमसे पहले भी कहा है कि यह मन सिर्फ तुम्हारा है और तुम्हारा ही रहेगा।"

अनीशा जानती थी कि वह सच बोल रही है परन्तु उसे ऐसा महसूस हुआ कि समीर को उसकी बात पर यकीन नहीं हो रहा है।

कुछ ही दिनों के बाद राजीव ने अनीशा को यह खबर दी कि उसे ग्रीनकार्ड मिल गया है तथा अब वह भारत जा सकती है। अनीशा की खुशी का ठिकाना न रहा और वह मुम्बई जाने की तैयारी करने लगी।

खबर पाते ही समीर की बेकरारी भी बढ़ने लगी। अब तो कुर्ला में उसका अपना फ्लैट भी था। बड़े भइया की शादी के बाद वर्सोवा का फ्लैट छोटा पड़ने लगा तो गाँव की ज़मीन बेच कर पिताजी ने समीर को दूसरा फ्लैट दिला दिया।

वह दिन जल्द ही आ गया, अनीशा समीर के आलिंगन में फिर से कैद थी।

अनीशा के स्वागत में समीर का पूरा फ्लैट रंग–बिरंगे फूलों से सजा था।

"पूरे डेढ़ साल बाद तुम्हें छू रहा हूँ। अमरीका की हवा ने इतनी ताज़गी दी है तुम्हें।" समीर अनीशा को छेड़ता है।

अनीशा समीर की बांहों में और सिमटती हुई बुदबुदाने लगी "मुँह बन्द, बस प्यार करने दो, बस प्यार करने दो, डेढ़ साल से तड़प रही हूँ तुम्हारे प्यार को।"

अनीशा के होंठ और उँगलियों ने समीर को ऐसे कभी नहीं छुआ था। एक कुँआरी लड़की और एक विवाहिता के प्यार का अंतर समीर को साफ महसूस हो रहा था। कल तक अनीशा का वह संकोच, आँखों की शर्म, सहमा–सहमा शरीर जिसे समीर उकसाता रहता, आज बड़ी बेबाकी से उसके साथ खेल रहा था। समीर भी पूरी मदहोशी के साथ अनीशा के प्यार में डूबता जा रहा था।

"रात ढलने को है, घर नहीं जाना अनीशा?" समीर ने अचरज से पूछा।

"अब तो लाइसेंस है डियर, घर में किसका डर। शादी शुदा हूँ, वो भी एन.आर.आई, घर में सभी हड़काते हैं। मैं कह कर आई हूँ, पुराने दोस्तों से मिलने जा रही हूँ, देर से लौटूंगी।" अनीशा बड़ी निडरता से बोली।

एक महीने तक यह सिलसिला चलता रहा। राजीव हर दूसरे दिन फोन करता परन्तु अनीशा कभी–कभी उससे बात भी नहीं करती।

आज जब वह समीर से मिली तो कहने लगी, "समीर, आज राजीव का फोन सुबह–सुबह आ गया और माँ ने सीधा लाकर मुझे दे दिया। वो मुझे लौटने के लिए कह रहे हैं।"

"हम्म..." समीर बस अनीशा की बात सुन रहा था।

"मैं पूरे दिन इसी चिन्ता में डूबी रही। मैं वापस अमरीका नहीं लौटना चाहती।" अनीशा अत्यंत गम्भीर हो कर बोली।

"समीर, मैं तुम्हारे साथ ही जीवन गुज़ारना चाहती हूँ।"

"अनीशा, क्या कह रही हो तुम, डोन्ट बी सिली, क्या अपने पति को छोड़ने को कह रही हो। तुम्हें कौन ऐसा करने देगा?" समीर आश्चर्यचकित हो कर बोला।

"अब मैं अपने शरीर, अपनी ज़िन्दगी के साथ और खिलवाड़ नहीं होने देना चाहती। आई एम फेड अप विद दिस हिप्पोक्रेसी।" अनीशा के शब्दों में झल्लाहट थी।

समीर गहरी सोच में डूब जाता है।

अनीशा खामोशी तोड़ते हुए कहती है, "मेरा दम घुटता है तुम्हारे बिना। अमरीका की सारी चमक–दमक फीकी है तुम्हारे सान्निध्य के आगे। तुम्हारे आगोश में जो सकून मिलता है मुझे, वही मेरा स्वर्ग है। मैं सब कुछ, सब कुछ छोड़ कर तुम्हारे पास आ जाना चाहती हूँ। अब और त्याग करने की क्षमता नहीं है मेरे पास। सुनैना अपने घर में खुश है। मम्मी–डैडी

ने जो कहा मैंने किया, क्या अब मुझे अपनी ज़िंदगी जीने का कोई हक नहीं। प्लीज़... समीर, मुझे नयी जिंदगी जीनी है अब, तुम्हारे साथ।"

अनीशा के शब्द पूरी रात समीर के कानों में गूँजते रहे। आज निर्णय उसे लेना था। अनीशा को वह हृदय से प्यार करता था परन्तु शादी, एक विवाहित से! उसके मन का कोई कोना उसे इस बात की इजाज़त नहीं दे रहा था।

"क्या सोचेंगें माँ और पिताजी! भाभी तो मेरा बहुत मज़ाक उड़ाएंगी। अभी कुछ दिन पहले जब रामू गाँव से अपनी नवविवाहित पत्नी को लेकर आया, जो देखने में उससे केवल थोड़ी ही बड़ी लगती है तो भाभी ने कितनी हँसी उड़ाई उसकी! उन्होनें तो रामू के मुँह पर ही कह दिया कि "क्या दहेज में दो–चार बच्चे भी लायी है तुम्हारी महेरिया?"

इधर सुबह–सुबह राजीव का फोन अनीशा के पास आया। "व्हेन आर यू कमिंग बैक अनीशा? मैने तुम्हारी बुकिंग करवा दी है। परसों की फ्लाइट से वापस आ जाओ।"

अनीशा ने सीधे–सीधे राजीव से यह कहकर फोन रख दिया कि "सॉरी राजीव, अब मैं वापस नहीं आना चाहती। आई एम डाइवोर्सिंग यू।" और इससे पहले कि राजीव का फोन दोबारा आए, अनीशा समीर के फ्लैट की ओर निकल गयी।

अनीशा समीर को देखते ही उसकी बाहों में समा गयी। समीर ने भी उसे स्वयं से चिपका लिया। कुछ पल आलिंगनबद्ध रहने के उपरान्त अनीशा बोली, "समीर, मैं आज हमेशा के लिए तुम्हारे पास आ गयी हूँ। अब मैं पूर्ण रूप से तुम्हारी हूँ।"

जवाब में समीर बोला, "नहीं अनीशा यह मुमकिन नहीं, मैं तुम्हें अब पत्नी के रूप में स्वीकार नहीं कर सकता। इसका अर्थ यह नहीं है कि मैं तुम्हें चाहता नहीं। यू आर माई फर्स्ट एण्ड ओनली लव। मेरी ज़िन्दगी का सबसे महत्वपूर्ण अध्याय हो तुम ...लेकिन एक प्रेमिका के रूप में।"

समीर की अस्वीकृति से पल भर में अनीशा के प्रेम, भावनाओं और समर्पण की इमारत खण्डहर हो में बदल गयी।

□□□

अनजाना सफर

● अश्विन गांधी

महल जैसा, बड़ा आलीशान मकान था। बार खुला था। बार टेन्डर अपनी ड्रिंकस बनाने की कला दिखा रहा था। पूरा मकान आज की खुशी के लिए खुला था। हर प्रकार के खाने की चीज़ हर जगह दिखाई दे रही थी। बैंड बज रहा था। कुछ जोडियाँ डान्स फ्लोर पर अपना कमाल दिखा रही थीं। हौट टब भर गया था, स्वीमिंग पूल में नेट लगी थी, और बॉल का कोई खेल चल रहा था। हरी घास के लॉन पर कपड़े और जूते इधर-उधर पड़े थे। पानी में कूदने की दौड़ में लोगों ने अपने वस्त्र जल्दी से उतार कर बिखेर दिये थे।

दोपहर का एक बजा था। दरवाज़े की घंटी बजी। मुस्कुराता हुआ चाली खड़ा था। दोनो हाथों में चार बियर की बोतलें थामे और एक वाइन की बोतल अपने सीने से टिकाये हुए।

'वाव! ये तो सारा ट्रक साथ में ले आये हो, चाली!'

'हैपी आवर के लिये हैपी सामान ज़रूरी है, अमर!'

अमर ने चाली को लंच की दावत दी थी। अमर खुद को लेखक, कवि, चिंतक और दार्शनिक समझता है। ग्रीष्म के महीनो में छुटटी मनाता है, पर्यटन करता है, बाहर की दुनिया से मिलता-जुलता है, और जब सोच कुछ गहन हो जाती है तो शब्दों में ढाल देता है। अमर अपनी छोटी-सी कॉटेज में अकेला रहता है। पहाड़ की घाटी में, एक पार्क में, कोई पचास कॉटेज थोडे-थोडे फासले से बने हुए हैं।

चाली जवान आदमी है। उम्र तीस साल के अंदर। बीवी के साथ रहता है, और उसकी कॉटेज अमर की कॉटेज से थोड़े ही कदम दूर है। चाली ने हाई स्कूल से आगे कोई पढ़ाई

नहीं की। ट्रक चलाता है, और किसी कंपनी का माल अलग–अलग जगह पहुँचाता है। यूनियन का मेम्बर है, सुखी देश में रहता है, और अच्छी कमाई कर लेता है। अमर कोई चार साल पहले इस पार्क में रहने आया, और तब से चाली को पहचानता है।

'जम गई तो फिर! वो बियर अच्छी दिखती है, चाली। चलो बियर से शुरुआत करें!'

चाली को अमर की बात अच्छी लगी, दो बियर की बोतलें खोल दीं, और बाकी रेफरिजरेटर में रख दीं।

चीअर्स! बोतलें ऊँची उठीं, और सल्यूट हो गया! अमर ने पहला घूंट लिया। बियर का टेस्ट बहुत अच्छा लगा।

'चाली, ये बियर मुझे बहुत अच्छा लगा। शायद तुम ने खुद बनाया है। इतना मृदु और मुलायम है कि गले से सटासट नीचे उतर गया! क्यों ना सिर्फ बियर से ही खुशी मनायें आज?'

'जरूर! बियर इन, वाइन आउट! वाइन बोतल निकाल देता हूँ, और कुछ और बियर बोतलें ले के आता हूँ।' चाली वाइन बोतल के साथ अपनी कॉटेज की ओर चल पड़ा, और दो मिनट में चार और ठंडी बियर बोतलों के साथ लौट आया। लगता है आज हैपी आवर बड़ा लंबा होने वाला है!

'लंच मे क्या हो रहा है, अमर?'

'तुम्हे मालूम तो है कि मेरे यहाँ सब वेजिटेरियन रहता है। कॉलेज के दिनों में बंबई के रास्तों के वेजी सेंडविच याद आ गये! आज वो ही होगा। टमाटर, ककड़ी, आलू, हरी तीखी चटनी, और ये सब ब्रेड के दो स्लाइसों के बीच में।'

'ये तो बड़ा जबरदस्त प्रोग्राम है, अमर!'

'हाँ, अब देखों मैं क्या कर रहा हूँ, फिर तुम्हारी बारी आयेगी।' अमर ने बियर का एक घूँट लिया, और अपना सेंडविच बनाना शुरू किया। ब्रेड के दो बड़े स्लाइस लिए। माजरिन लगाया। हरी तीखी चटनी का मोटा स्तर ऊपर बनाया। बारी–बारी एक के ऊपर एक टमाटर, ककड़ी, और आलू के स्तर बनाये। हर स्तर पर सीज़न्ड सॉल्ट छिड़का, एक बड़ी छुरी से सेंडविच को चार बराबर हिस्सों में काटा।

'ये तो बहुत अच्छा दिख रहा है!'

'वो मेरा सेंडविच था। अब तुम अपना बनाओ। चटनी लगाने में ख्याल रखना।'

'क्यों? बहुत तीखी है क्या?'

'हाँ, तीखी तमतमा तम! हैपी आवर को आग लगा दे सकती है! थोड़ी टेस्ट कर लो पहले। देख लो कितना लगाना है।'

चाली ने थोड़ी सी चटनी मुँह में रखी। चंदघड़ी के लिए कुछ हुआ नहीं, फिर जलन शुरू हुई।

'तीखी तो ज़रूर है, मगर टेस्ट बढ़िया है! तुम्हारे जितनी तो नहीं मगर थोड़ी–सी तो लगानी ही होगी।'

अमर ने कुछ चिक–पीज़ भी गरम कर दिए। लंच तैयार हो गया। डाइनिंग टेबल पर बहुत सी किताबें पड़ी थीं। अमर ने कुछ किताबें इधर–उधर कर के दो प्लेटों की जगह बना दी। हैपी आवर में अब कुछ गरमी आने वाली थी!

'जब भी मैं तुम्हें देखता हूँ, मुस्कराता हुआ चेहरा नज़र आता है! वजह क्या हो सकती है, चाली? क्या पार्टी पर पार्टी चलती रहती है?'

'हाँ, पार्टी के चक्कर तो होते रहते हैं! अच्छा खाते हैं, अच्छा पीते हैं, जिंदगी बड़ी मजेदार है!'

'जिंदगी मज़ेदार होना तो काफ़ी ज़रूरी है! तुम्हारी काया बिल्कुल कसरती दिख रही है। माना, तुम जवान हो, फिर भी, बहुत सारी पार्टियाँ तो किसी को भी चौड़ा बना दे सकती है!'

'मैं सप्ताह में तीन दिन जिम्नेज़ियम जाता हूँ। जब बियर का मज़ा लो तो वर्क–आउट करना ज़रूरी रहता है। कुछ स्पोर्ट्स भी हो जाते हैं। आज कल डट–बाइकिंग चल रही है।'

'डट–बाइकिंग ? मोटर–साईकल डट में?'

'हाँ, बाइक को पहाड़ियों में ले जाता हूँ। कभी जानी पहचानी ट्रेइल पर बाइक चलती है, कभी–कभी नई ट्रेइल बन जाती है। अगर कुछ बीच में आ गया तो कुदान भी हो जाती है! बड़ा रोमांचक सफर बना रहता है!'

सेंडविच सब खत्म, और प्लेटें बिल्कुल साफ। चाली ने बियर की दो और बोतलें खोल दी। अमर ने कुछ कोर्न चिप्स टेबल पर रख दिए। हैपी आवर जारी रहा।

'फिर ये बताओ, चार्ली, इन सब पार्टियों में क्या होता है? मतलब कि तुम सब जवाँ लोग वहाँ कैसे खुशी मनाते हो?'

'सिर्फ जवाँ ही नहीं, हर उम्र के लोग। डॉक्टर्स, लॉयर्स, प्रोफेशनल्स, हर किस्म के लोग देखे हैं मैंने। कुछ लोग पीते हैं, कुछ स्मोक करते हैं, कुछ दोनो साथ–साथ। एक अनोखा माहौल रहता है!'

'ड्रग्स?'

'नहीं, ज्यादातर मरूजाना। सिगरेट या पाइप में। कभी ट्राय किया है, अमर?'

'शायद नहीं। कोई बीस साल पहले दो गहरे कश लिये थे, कुछ हुआ नहीं था।'

दो कश वाली घटना अमर की आँखों के सामने छा गयी।

फिलाडेल्फिआ, सिटी ओफ ब्रदरली लव। बीस साल पहले, शहर में एक पार्टी किसी के घर आकार ले रही थी। अमर खास किसी पार्टी में जाता नहीं, मगर आज कोई उपाय नहीं था। कम्प्यूटर कंपनी, जहाँ अमर काम करता था, घाटे में जा रही थी। जीवित रहने

के लिए कंपनी को कुछ करना ज़रूरी था। भीतर का बहुत विरोध होने के बावजूद भी कंपनी ने एक नया प्रॉडक्ट बाज़ार में रखा था। सचेत और सावधान होते हुए भी अमर ने चान्स लिया था। नये प्रॉडक्ट के मार्गदर्शन में अमर अग्रणी रहा। पुराने रेकार्ड टूट रहे थे, नये रेकार्ड बन रहे थे, नये प्रॉडक्ट की सफलता किसी की कल्पना से भी अधिक थी। कंपनी और कंपनी में काम करने वालों की जान में जान आयी थी। सफलता की खुशी मनाने का दिन था। कंपनी के सब से सफल सेल्स–पर्सन के घर पार्टी आयोजित हुई थी। अमर को हाज़िर होना ज़रूरी था। सब को मालूम था कि यह दिन अमर के बिना आया नहीं होता। इस दिन की हस्ती अमर की सख्त मेहनत, नेतृत्व, और दूरदर्शिता पर कुर्बान थी। अमर पार्टी का हीरो था, और सब अमर को बधाई देने इकट्ठे हुए थे।

महल जैसा, बड़ा आलीशान मकान था। बार खुला था। बार टेन्डर अपनी ड्रिंकस बनाने की कला दिखा रहा था। पूरा मकान आज की खुशी के लिए खुला था। हर प्रकार के खाने की चीज़ हर जगह दिखाई दे रही थी। बैंड बज रहा था। कुछ जोडियाँ डान्स फ्लोर पर अपना कमाल दिखा रही थीं। हौट टब भर गया था, स्वीमिंग पूल में नेट लगी थी, और बॉल का कोई खेल चल रहा था। हरी घास के लॉन पर कपड़े और जूते इधर–उधर पड़े थे। पानी में कूदने की दौड़ में लोगों ने अपने वस्त्र जल्दी से उतार कर बिखेर दिये थे। हवा में धुआँ था। सफेद धुएँ के बादल तैर रहे थे, और आँखों को जलन देते हुए कुछ अज़ीब सी महक फैला रहे थे। हर ज़गह ड्रिन्कस के गिलास पड़े थे। वक्त गुज़र रहा था, नशा बढ़ रहा था, और नज़दीकी गिलास नज़दीकी मुँह की और बढ़ रहा था। ऐसा लग रहा था कि जैसे सबको काम की दुनिया को भूल ज़ाना था। किसी को आने वाली सुबह की नाफिक्र थी, ना इंतजार!

'थोड़ा घूमने चलोगे साथ, अमर?'

'ज़रूर, कहाँ चलेंगे, जेनेट?'

'मकान के दूसरी ओर, लॉन को पार कर के पार्किंग लॉट की तरफ।'

अमर सबको पहचानता था। नये प्रॉडक्ट की सफलता में जेनेट का हिस्सा काफ़ी था। दोनों ने, हाथों में हाथ, पार्किंग लॉट की ओर चलना शुरू किया। जैसे कुछ इशारा मिल गया हो, एक दूसरे युगल ने भी कुछ कदम पीछे चलना शुरू किया। धीमी गति से, लॉन पार कर के, चारों एक कार के नज़दीक आ कर ठहरे।

'जबरदस्त स्पॉर्टस कार है, तुम्हारी, जेनेट?'

'हाँ, और अंदर से भी बहुत अच्छी है, देखोगे?'

जेनेट ने रिमोट कंट्रोल से कार अनलोक कर दी। दूसरा युगल पीछे की सीट पर बैठ गया, जेनेट और अमर आगे। लेदर सीट, हर प्रकार की सुविधा कार के अंदर! अमर प्रभावित हो गया। जेनेट ने कुछ बटन दबा दिये, और सुरीला संगीत शुरू हो गया। अमर की ओर झुक कर ग्लॅव कंपार्टमेन्ट खोला, और एक चमकता हुआ सिगरेट कैस निकाला। एक सिगरेट अपने मुँह में रखी। अमर ने अपने लाइटर से जेनेट की सिगरेट जला दी।

'एक कश लोगे, अमर?' गहरा कश ले कर जेनेट ने अपनी सिगरेट अमर की ओर बढ़ाई।

'मैं सिर्फ एक ही ब्रान्ड की सिगरेट पीता हूँ। जब भी ब्रान्ड बदली है, सरदर्द को दावत दी है। मगर, तुम्हारी सिगरेट कुछ अलग सी दिखती है। क्या कोई स्पेशियल चीज़ है?' अमर ने जेनेट की सिगरेट अपने हाथ में ली।

'अगर ठीक से गहरा कश लिया तो दूसरी दुनियाँ में पहुँच जाओगे। ऐसी दुनिया जहाँ सिर्फ आराम ही आराम होगा, जमीं के हर दर्द भूल जाओगे।'

'सच? सिगरेट तो कुछ सालों से पीता आया हूँ, गहरा कश कैसे लेना तो मुझे ठीक से मालूम होना चाहिए!' अमर ने स्पेशियल सिगरेट अपने मुँह में रखी।

'जोर से कश लो, जहाँ तक हो सके वहाँ तक धुआँ अपने अंदर रखो, और फिर धीरे से छोड़ दो।'

अमर ने गुरू के बोल सुने। सिगरेट बुझ गई थी। फिर से जला दी। जोर से कश खींचा, दर्द होते हुए भी लंबे समय तक धुआँ अंदर रखा, और फिर धीरे से हवा में छोड़ दिया। अमर ने देखा तो जेनेट कहीं दूर–दूर देख रही थी और पीछे का युगल अपने निजी कार्यक्रम में मस्त था।

'ये दूसरी दुनिया का सफर कब शुरू होता है?'अमर को कुछ असर नहीं हुआ था, पाँव जमीं पर थे, और पंख खुले नहीं थे। जेनेट ने सिगरेट अपने हाथ में ली, फिर से जलाई, कश खींचा, और अमर को वापिस दी।

'एक बार और ट्राई करो। क्या मालूम, दूसरा कश आप के लिए जादू जगा दे!'

बड़ी गंभीरता से अमर ने कोशिश की, मगर उसकी उड़ान शुरू नहीं हुई। गुडनाइट कह कर, उड़ते पंछी छोड कर, अमर ने पुनः ज़मीनी यात्रा शुरू की।

चाली बियर की तीसरी बोतल खोल रहा था, और अमर वर्तमान के हैपी आवर में फिर से आ गया।

'तो ये बताओ, चाली, क्या होता है जब लोग मरूजाना स्मोक करते हैं?'

'बहुत–सा आराम। हल्कापन महसूस होता है।'

'कितना हल्का? फेदर जैसा? हवा में उड़ान?'

'हाँ, और कुछ लोग हँसना शुरू कर देते हैं, और हँसते ही रहते हैं!'

'अच्छा? किसी वजह के बिना?'

'अरे! जब खुश हो तो तुम हँसते हो, छोटे बच्चे की तरह, कोई वजह की ज़रूरत नहीं होती!'

'ये पंख–बिन उड़ान में माइन्ड कॅन्ट्रोल कम हो जाता होगा। कार ड्राइव करना मुश्किल हो जाता होगा, ठीक?'

'नहीं! इतनी नरमी रहती है कि ड्राइव़ करना और भी आसान हो जाता है! अगर पुलिस ने आप को रास्ते में रोका, जाँचा और थोड़ा–सा मरूजाना निजी उपयोग के लिये मिल गया, तो कोई बात नहीं! पुलिस आपको जाने देगी। ये नहीं माना जायेगा कि आपकी ड्राइविंग किसी को हानि करेगी।'

'ये मरूजाना इल्लीगॅल है, नहीं?'

'हाँ, इल्लीगॅल तो है, मगर इसीलिए कि अपनी गवर्नमॅन्ट को इस में टैक्स की कोई कमाई नहीं!'

'वो कैसे? अगर मरूजाना स्मोक करने से नुकसान नहीं, जैस तुम कहते हो, या ऐल्कोहॉल और टोबैको से कम नुकसानकारी है, तो उसको लीगल बनाया जा सकता है। खुले बाज़ार में बेचा जा सकता है, और गवर्नमेंट को टैक्स की कमाई हो सकती है, ठीक?'

'नहीं! कोई बाज़ार में खरीदेगा नहीं! ये मरूजाना बहुत आसानी से उगाया जा सकता है।'

'मतलब? घर के पिछवाड़े में या घर के अंदर उग जायेगा?'

'हाँ! सिर्फ सूरज का प्रकाश चाहिए। बारह घंटे रोशनी, बारह घंटे अंधेरा। जल्दी उगता है, आसानी से उगता है, और सब आप की आँखों के सामने! मैंने देखा है यहाँ। मरूजाना प्लान्ट को हमारी जलवायु बहुत पसंद है!'

'कितने में बिकता है?'

'आज कल कोई दो सौ बीस डालर होते है, एक आउन्स के।'

'ये तो बहुत ज्यादा पैसे हैं, कम से कम कितना खरीद सकते हो?'

'कोई तीस डालर में आउन्स का आँठवा हिस्सा मिल जायेगा।'

'प्लान्ट को कैसे स्मोक करोगे? पत्ते?'

'नहीं! मरूजाना प्लान्ट में कलियाँ खिलती है। जब कलियाँ सूख जाती हैं तब बहुमूल्य बन जाती हैं।

देखोगे कुछ बहुमूल्य कलियाँ?'

चाली अपनी कॉटेज की और भागा, और दो मिनट में अपनी कमीज़ के नीचे छुपा के छोटा–सा प्लास्टिक बैग ले आया।

'वाव! ये सब कलियाँ हैं? अजीब–सी दिखती है! कलियों से सिगरेट कैसे बन सकती है?'

'सिगरेट बनाने की ज़रूरत नहीं, पाइ्प से स्मोक कर सकते हो। मेरी पाइंप देखोगे?'

ज़वाब की राह देखे बिना चाली ने अपनी कॉटेज की ओर फिर से दौड़ लगाई, और जल्दी से पाइप लेकर वापिस आ गया। 'ये पाइप तो बड़ी आर्टिस्टिक दिखती है! क्या पाइप में पूरी कली रख कर जलानी होती है?'

'नहीं! कली को कतरना होता है, फिर उस कतरन को पाइप में रखना होता है। मैं दिखाता हूँ, क्या आप के पास कैंची होगी?'

अमर बाथरूम से कैंची ले कर आया। रंगमंच सज गया था। बात बनने वाली ही थी। चाली को गुरू बनना था, अमर को शिष्य।

चाली ने बैग में से एक कली निकाली। कैंची से कतरना शुरू किया जैसे कोई शिल्पी पत्थर में से मूर्ति बना रहा हो। जो भी कतरन टेबल पर गिरी, बड़ी नाजुकता से उठा कर पाइप में रखी। चाली ने पाइप मुँह में रखी, और लाइटर से कतरन को जलाया। ज़ोर से कश लिया, थोड़ी देर धुएँ को कैद रखा अपने अंदर, और फिर हल्के–से निकाल दिया। अमर ने पाइप अपने हाथ में ली।

कतरन बुझ गई थी, अमर ने फिर से जलाई, और ज़ोर से कश लिया। पाइप इधर से उधर और उधर से इधर कुछ और बार हो गई। बीस साल पहले, फिलाडेल्फिआ के दो कश का कोई असर अमर पर नहीं हुआ था। इस बार अमर ने ज्यादा कोशिश की। अमर ने सर उठाया और चाली की ओर ताकने लगा। अमर चाली से कहने ही वाला था कि उसको कुछ अलग महसूस नहीं हो रहा, मगर कह नहीं सका। कुछ ज़रूर हुआ। सर तैरने लगा था। समंदर जो शांत था वहाँ लहरें उछलने लगी थीं। चाली के सुंदर मुखारविंद पर साफ–सुथरी छोटी–सी काली दाढ़ी शोभा दे रही थी। नौजवानों का आजकल का फैशन! चाली की एक महीने की कोशिश! अमर की नज़र में दाढ़ी आ गई, और हँसने लगा। चाली ने भी जवाब हँसी से दिया! कोई शब्द नहीं, कोई बातचीत नहीं, सिर्फ हँसी का लेन–देन! कुछ देर तक सिलसिला जारी रहा। अमर को चाली की कही हुई हँसी के असर वाली बात याद आ गई। माइन्ड कन्ट्रोल गँवाना अमर को अच्छा नहीं लगा। अमर मन दृढ़ कर के खड़ा हुआ। दरिया तूफानी बन चुका था। अमर ने अशक्ति महसूस की, और संतुलन रख नहीं सका। डगमगाते हुए सोफे की ओर चला। बैठा, और तुरंत ही लंबा हो गया। चाली सब देखता रहा। चाली का माइन्ड कन्ट्रोल अखंड रहा।

'चाली, मेरा सर घूम रहा है। ये मुझे क्या हो गया? कोई कन्ट्रोल नहीं!'

'आँखे खुली रखो, अमर। अच्छा लगेगा।'

'हाँ, आँखे खुली रखने से कुछ कन्ट्रोल वापिस आ रहा है, मगर आँखें खुली रहना नहीं चाहतीं। खोलता हूँ और किसी भार से बंद हो जाती है! कमज़ोरी ने घेरा डाल दिया है। काश, अभी वीडियो रिकार्डिंग चालू होती। मेरी इस अनोखी हालत का अजीब दस्तावेज़ बन जाता!'

'फिक्र मत करो, अमर। सब की सब बातें याद रहेगी।' चाली एक निष्णात की तर मरीज़ का ख्याल रख रहा था।

'चाली, मुझे इस हालत से मुक्त होना है...'

'थोड़ा इधर–उधर चलोगे तो अच्छा लगेगा।' अमर ने डॉक्टर की बात सुनी, खड़ा होने की कोशिश की, मगर जहाँ था वहीं फिर से गिर गया।

'चाली, मुझ में खड़ा होने की शक्ति नहीं, चलूँगा कैसे? ऐसा लगा जैसे मेरे पाँव घुटनों से अलग हो गये! मेरे हाथ बोझ जैसे लगे!'

'ठीक है, थोड़ा आराम कर लो, बहुत थके हुए होगे।'

'मेरा गला, और मेरी जीभ सूख रही है, चाली। वो जो स्मोक किया वो मेरी जीभ के मध्य कहीं चिपक गया है, उग रहा है, और नयी कलियाँ वहाँ फूट रही हैं! उसको जड़ से निकालना होना, चाली!'

'मैं पानी का गिलास ला के देता हूँ।' चाली पानी ले के आया। अमर ने पानी पिया, और थोड़ा खुद पर खुश हो गया कि न गिलास गिरा न पानी!

'ठंडे पानी से स्नान करोगे तो और भी अच्छा लगेगा।'

'चाली! मेरे लिये अभी खुद का संतुलन रखना भारी है। अगर अभी स्नान करने गया तो कहीं टकरा जाऊँगा, और कहीं और ज़ख्मी हो जाऊँगा! मेरे लिए सोना ज़रूरी है। अगर कोई दो घंटे सो सका तो अपने आप ये मेरी हालत दुसस्त हो जायेगी। तुम्हें बीवी को लेने नहीं जाना है? कितने बज़े है?'

'साढ़े तीन।'

'ठीक है, चाली। जरा देखो तो, मेरे पलंग पर कुछ है तो नहीं? मैं वहाँ सोने जाऊँगा।' अमर डगमगाते हुए अपने पलंग तक पहुँचा, और लेट गया। अमर ने दरवाज़ा बंद होते हुए सुना, ओर चाली की आवाज़ सुनी कि वह बाद में खाली बोतलें ले जायेगा।

अमर ने सोने की कोशिश की। हर पाँच मिनट पर आँखें खुलती रहीं। जब भी आँखे खुलीं तो ऐसा लगा जैसे गूढ़ निद्रा से जागा हो। अमर को संतुलन का अभाव सता रहा था। माइन्ड कन्ट्रोल वापस प्राप्त करना ज़रूरी था। अमर को मालूम था कि चाली चला गया था, दरवाज़ा बंद था, मगर अंदर से लॉक नहीं था। अमर ने ज़बरदस्ती खुद को खड़ा किया। अब भी अशक्ति महसूस की, और कन्ट्रोल से विरक्त रहा। डगमगाते हुए दरवाज़े तक पहुँचा, और लॉक किया। उसकी बियर की तीसरी बोतल आधी भरी हुई टेबल पर पड़ी थी। देख कर अच्छा नहीं लगा। बोतल को खाली कर दिया, और सब खाली बोतलें एक जगह रख दीं। अमर फिर से लेटने गया। कोई साढ़े चार बजे थे, और अगली बार जब उठा तब छः बजे थे। अमर को अच्छा महसूस हुआ। संतुलन वापस आ गया था, कन्ट्रोल फिर से प्राप्त हो गया था, और अशक्ति ने विदा ली थी। अमर को भगवान याद आ गये, मेहरबानी हुई कि वह दुःखी दुनिया से लौट आया। अनजाने सफर की याद ताज़ा थी। झट से कागज़ पर सफर की कुछ बातें लिख दीं।

ज़ोरों से भूख लगी थी। पूरे कन्ट्रोल और संतुलन के साथ ठीक से खाना खाया।

दरवाज़े की घंटी बजी। कोई आठ बजे थे। मुस्कराता हुआ चाली खड़ा था। डट–बाइकिंग की यूनिफोर्म में, जैसे कोई सेनापति जंग जीत कर आया हो!

'अब कैसे हो, अमर?'

'ठीक हूँ, चाली। तुम्हारा कन्ट्रोल अज़ीब था! शायद तुम्हारी जवानी, और कसरती काया की वजह होगी, या तो शायद...'

'शायद क्या? अनुभव?'

'देखो, मैंने वह नहीं कहा!'

'ऐल्कोहॉल और मरूजाना साथ में शायद स्वास्थ्यकारी ना भी हो। और, पहली बार तो किसी भी चीज़ में तकलीफ हो सकती है।'

'चाली!

फिलाडेल्फिआ के दो कश मुझे सता रहे थे।

मेरे लिये ये होना ही था। बीस साल से पुकार थी।

मैंने सफर किया।

किसी अनजानी जगह पहुँच गया।

शुरुआत ठीक रही, मगर जहाँ पहुँचा वहाँ मैं दुःखी रहा।

कन्ट्रोल नहीं था, संतुलन नहीं था, और शक्ति भी गायब थी।

खुश हूँ कि मैं जाने–पहचाने जगत में वापस लौट आया।

मै फिर वहाँ नहीं जाऊँगा।'

चाली ने एक और दूसरे जगत वाली मुस्कान दे दी, और खाली बोतलों के साथ अपने कॉटेज की ओर चल पड़ा।

□□□

व्यंग्य

अपने आप्रवासी भारतीय

• गोपाल चतुर्वेदी

आप्रवासी भारतीय की स्वदेश लौटने की शान ही कुछ और होती है। विदेश प्रवास में उसने नई और तथाकथित आधुनिक संस्कृति का जो ललचाता स्वाद लिया है, पैसा कमाया है—उसके प्रति भाई–बंधुओं का आकर्षण–विकर्षण... देखते ही बनता है। अपनों से ही लुटा–पिटा यह आप्रवासी एक व्यंग्यकार की कलम के शिकंजे में आ जाए तो फिर पढ़िए कि क्या होता है...

हमारी माँ कहती थीं कि चौके में चार बरतन हैं तो उनका खड़कना लाजमी है। बुजुर्ग–वार प्रतीकों में बोलते हैं। अम्मा का आशय परिवार के उन चार–पाँच सदस्यों से रहता जो कभी साथ पड़ते तो खड़कते ही नही, एक–दूसरे को खटकने भी लगते। यों खटकना जीवन का एक अनिवार्य वाक़्या है। जो साथ रहकर खटकते हैं, वह दूर रहकर याद भी आते हैं। औरों या गैरों का क्या कहना। अपनी इकलौती पत्नी को भी कभी–कभी हम खटकने लगते हैं। वह तो अपन किस्मत के धनी हैं। हिन्दुस्तान में पति का पत्नियों को खटकना एक दुखद स्थिति तो जरूर है पर त्रासद नहीं है। वहीं कहीं यूरोप, अमेरिका में होते तो एकाध बार खटकना बरदाश्त होता। उससे ज्यादा खले तो ऐसे खोटे लगते कि तलाक की तलाश शुरू हो जाती।

हमारे एक मित्र और सहपाठी ने ऐसी तरक्की की कि वह प्रयाग से पेरिस जा पहुँचे। वह दूर थे इसीलिए दोस्त बने रहे। उन्होंने एक बार हमें बताया था कि किसी विदेश में रहते भारतीय को जब भारत की याद सताती है तो वह लन्दन चला जाता है। जब देश की याद ने जोर मारा तो वह नौकरी बदलकर, लन्दन जा बसे। जहाँ तक हिन्दुस्तान और हिन्दुस्तानी का सवाल है उसका प्रेम अन्धा नहीं, गोरा होता है। हमारे दोस्त के पौ–बारा थे। वह तो गोरों

के देश में जा बसे थे। इन गोरों के बीच काले और सांवले भी थे। इनसे वह वतन के स्मरण का काम चला लेते। प्रेम की पींगे बढ़ाने के लिए उन्होंने गोरी–गोरियों को ही चुना। जैसा उनका खुद का बयान है, गोरियों की भीड़ में एक गोरी उन्हें भा गई। घुटनों के बल बैठकर उसके कोमल गुलाब की पंखुरी मानिंद हाथ को पकड़कर और उस पर अपने खुरदुरे अधरों का स्नेह बरसाकर, उन्होंने उसे "प्रपोज" किया। (भारत–यात्रा के दौरान अपने विवाह के विवरण में उन्होनें हमसे केवल "प्रपोज" का जिक्र किया था, किस लिए "प्रपोज" किया, इसका नहीं। हमें यकीन है कि गोरी से हमारे मित्र कालीचरण, जिन्हें प्यार से हम सब कल्लू बुलाते हें, ने जन्म जन्मान्तर साथ–साथ बिताने की प्रार्थना की होगी।)

हम लन्दन की हवा में घुली–मिली रोमांस की गंध से हड़के। हमें तो घुटनों के बल बैठने बल्कि गिरने का, एक ही हादसा याद है। तब हम स्कूल में पढ़ते थे और नौ का पहाड़ा भूलने की सजा के बतौर मास्साब ने हमें मुर्गा बनाया था। अपने बेडौल बदन का भार हमारा अधर में टंगा शरीर नहीं झेल पाया और हम भद्द से मुँह के बल गिरे। पूरे क्लास ने हमारी काबिलियत पर शक् किया। जो ठीक से मुर्गा नहीं बन पाता है वह जीवन में क्या बनेगा? कल्लू आज इसलिए सफल हैं। उनके मानवीय जिस्म में एक आदर्श मुर्गे के कई गुण मौजूद थे। वह मुर्गे की बांग के साथ सबरे–सबरे उठते। जैसे मुर्गी धैर्य और धीरज के साथ अंडे सेती है, कल्लू अपनी किताबें सेते। दरअसल हमें तब भी लगता था, आज भी लगता है, कल्लू इंसान के रूप में शुद्ध और खालिस मुर्गे थे। इसलिए मास्साब को उन्हें मुर्गा बनाने की कभी जरूरत ही नहीं पड़ी।

कल्लू अपनी पत्नी के साथ भारत पधारे थे। उनकी मेम के नाक–नक्शे पर तो हमने गौर नहीं किया पर उसके गोरे रंग से हम ठगे–से रह गये। यह सामान्य–सा तथ्य समझने में हमें समय लगा कि जैसे अंग्रेजों की मादरी–जुबान अंग्रेजी है, उन का गोरा होना भी लाजमी है। श्री कल्लू और श्रीमती गोरी के भारत प्रवास के दौरान हमारे घर के बरतन खूब बजे। गनीमत यह रही कि टूटा कुछ नहीं। अनुभवी भारतीय पति–पत्नी मन के बरतन जुबान से बजाकर संतोष कर लेते हैं, उन्हें तोड़ने में उनका विश्वास नहीं है। एक टूरिस्ट की तर्ज पर कल्लू ने दिल्ली से अपनी गोरी को जयपुर–आगरा घुमाया। उन दोनों की अमर प्रेम के स्मारक ताजमहल के सामने गलबंहियाँ डाले तस्वीर आज भी अपने पास है। हम पहली बार वह प्रेम–पगी तस्वीर देखकर दिनभर उदास रहे। हमारी देसी पत्नी गलबंहियाँ डालना तो दूर, दूसरों के सामने हमसे सटकर नहीं, हटकर बैठती हैं। जाने इस मुल्क का पिछड़ापन कब जायेगा?

हमने मुरारी को उनकी कामयाबी पर बधाई दी। उन्होंने हमारी पत्नी और हमारी भाभी की शान में कसीदे पढ़े–"इतना लजीज खाना आज सालों बाद नसीब हुआ है। कोई ताज्जुब नहीं कि तुम बिना सूँड़ के नाटे हाथी लगने लगे हो। घर में काम भाभी करती हैं, आराम तुम फरमाते हो। ऊपर से इतना स्वादिष्ट भोजन पाते हो। कोई तकदीर का सिकन्दर हो तो तुम्हारे जैसा हो।"

हमें शक हुआ कि वह हमारी जीवन संगिनी की तारीफ के बहाने हमारा मजाक उड़ा रहे हैं। हमें इसकी आदत है। अकसर खास दोस्त यह हरकत पीठ के पीछे करते हैं। कल्लू विदेश रह रहे हैं। अपने नेक इरादे सामने जाहिर करने में वह हिचकते नहीं हैं।

भाग्य की कैसी विडम्बना है! वह हमारी किस्मत पर रश्क कर रहे हैं, हम उनकी। उनके लन्दन से लौटने के बाद खबर मिली कि गोरी मेम ने कल्लू से तलाक लेकर किसी और से शादी कर ली। हमने तत्काल ई–मेल पर कल्लू से सम्पर्क साधा। सम्बन्ध–विच्छेद की परतें खुलीं। पता लगा कि गोरी कल्लू से प्यार करती थी। पर उनके खर्राटों से तंग थी। कल्लू ने हर चंद कोशिश की किन्तु अपने नासिका संगीत पर नियंत्रण न कर पाये। कल्लू हमारे दोस्त भले हों पर हमें गोरी से हमदर्दी है। नींद–विहीन अस्तित्व में जीवन बर्बाद करने से हरहाल में बेहतर है कि खर्राटों के स्रोत से छुटकारा पा लिया जाये। भारतीय पतियों के प्रति प्रभु दयावान है। उसने पत्नियों को खर्राटों से नहीं, और चारित्रिक खोटों से भी अन्धा–बहरा बना दिया है। वह सुनती हैं और नहीं भी सुनती हैं, देखती है, पर अनदेखा करती है। कल्लू ने हमें बताया कि गोरी की रुचि ताजमहल देखने में थी। उसने ताज देख लिया और कल्लू को देखना बन्द कर दिया। कालीचरण ऊर्फ कल्लू के उदाहरण और तजुर्बे का लाभ दूसरे आप्रवासी भारतीयों ने उठाया है। वह विदेश में बसते तो हैं पर घर बसाने के लिए भारत की वीरांगना ही तलाशते हैं।

हम हिन्दुस्तानियों को मेहमान में भगवान का दर्शन होता है। अतिथि सत्कार की हमारी परम्परा इतनी शानदार है कि हम जी–जान कुर्बान करने को प्रस्तुत रहते हैं। जब मेहमान आता है तो हम देखते हैं कि क्या लेकर आया। जब जाता है तब आँकते हैं कि क्या देकर गया। भूले–भटके कुछ डॉलर पर्स से टपके कि नहीं। भेंट–उपहार के लिए 'सेल' वाली कमीज–जीन्स लाया था, अगर अपनी भूल गया तो कहना ही क्या।

हमारे प्यार का पैमाना सेवा है। आप्रवासी भारतीय की सेवा एयरपोर्ट से ही शुरू हो जाती है। अन्तरराष्ट्रीय विमानों के आने का समय इतना गड़बड़ है कि कई बार खातिर–तबज्जो को समर्पित मेजबान या तो सोते रह जाते हैं, नहीं तो दूसरे दिन की फ्लाइट पर अतिथि के आने का अनुमान लगाते हैं। इस बीच वह आ धमकता है। वह दस साल पहले इस शहर से भली–भाँति परिचित था। उसने सड़कें ही नहीं गली–गलियारे तक खांग मारे थे। उसे अंदाज तक नहीं है कि बीते दशक में शहर ने कितनी तरक्की की है।

एक दूसरे पर शक करना हमारा स्वभाव है। कस्टम निरीक्षक रंग, नाक, नक्शे से विदेश बसे, अपने देसी बिरादर को तत्काल पहचानता है। उसके अन्तर का स्नेह–सौहार्द ज़ोर मारता है। उसने दस गोरी चमड़ी वालों को बिना चैक किये "ग्रीन–चैनल" से जाने दिया है। वह साबित कर चुका है कि भारतीय कस्टम कितना उदार है। यह आप्रवासी भारतीय तो अपना है। भाई है। संदेह का स्वाभाविक पात्र है। वह उसे रोक कर उसका सामान खुलवाता है। विदेश–प्रवास से बुरी आदतें मुमकिन हैं। कहीं इसके सामान में "ड्रग्स" तो

नहीं है। जेब टटोलता है। सवाल उछालता है कि वह इतने डालर लेकर क्यों आ रहा है। एक घंटे की खोज–बीन और बहस के बाद सौदा पटता है। उसने रियायत की है। बस चालीस–पचास डॉलर और महज एक–दो बोतल स्कॉच का सवाल है। सब कुछ नियमानुसार था तो क्या हुआ? निरीक्षक को अपनी कर्तव्य–निष्ठा की कीमत भी तो वसूलनी है।

इस बीच देश का सम्मानित अतिथि अपने आतिथेय को फोन करता है। उससे पहले बात हुई थी। वह तो एयरपोर्ट आने वाला था। उसने कहा था कि पूरा परिवार पलक–पॉवड़े बिछाये उसकी प्रतीक्षा कर रहा है। सच भी है। सोने के अंडे देने वाली मुर्गी रोज–रोज तो घर पधारती नहीं है। फोन की घंटी बजते–बजते बन्द हो जाती है। मेहमान बाहर रहता है पर है तो हिन्दुस्तानी ही। वह समझ जाता है कि भारतीय क्रिकेट टीम का प्रदर्शन और फोन पर किसी से सम्भाषण दोनो चाँस पर निर्भर हैं। वह बाहर आता है। जब बिना किसी बवाल उसे टैक्सी मिलती है तो अपने देश का अनुराग यकायक उसके मन में हिलोरें लेने लगता है। ड्राइवर उसका इम्तहान लेता है–"किस रास्ते चलें"? "शार्टेस्ट रूट से ले चलो भाई! पहले ही काफी देर हो चुकी है," मेहमान माटी की गंध–सूंघने के प्रयास में वाहनों के प्रदूषण से खांसते हुए बोलता है।

भारत के टैक्सी चालकों को अपने–अपने नगर से लगाव है। उन के अंतर में हर आगन्तुक को शहर का चक्कर लगवाकर उसे प्रभावित करने का मचलता अरमान है। उन्हें मुल्क की छवि बनानी है। फिर यह तो विदेश से आया है। जाने इसने महानगर का नजारा कब किया है। यों भी आधी रात के बाद सूनी सड़कों पर गाड़ी दौड़ाने का मजा ही कुछ और है। यह भी तो देखे कि आलीशान बस्तियों–होटलों के आस–पास झुग्गी–झोपड़ियाँ कितनी सजती हैं। लगता है कि जैसे पूँजीवाद और समाजवाद का सहअस्तित्व हो। इसे भी तो समझ में आये कि प्रकृति से प्रेम भारत की परम्परा है। तभी तो नीले गगन के तले फुटपाथ पर लोग बिस्तर लगाये हैं। ऐसा नहीं कि वह बेघर हैं। सबके पास अपनी झुग्गी है, नहीं तो खाली सरकारी जमीन पर झुग्गी छाने की हसरत है। यह तो खुली हवा और खुले आकाश का आकर्षण है जो उन्हें फुटपाथ पर खींच लाता है। जिस सफर में अमूमन पन्द्रह मिनट लगते, टैक्सी चालक ने शहर घुमाकर उसमें दो घंटे पन्द्रह मिनट लगाये। टैक्सी का मीटर भी ड्राइवर जैसा फुर्तीला है। वह हर आधे किलोमीटर पर एक की दूरी दर्ज करता रहा। नतीजतन आठ का सफर अस्सी किलोमीटर का हो गया। सरकार हर आप्रवासी भारतीय से बार–बार अपनी समृद्धि का कुछ अंश अपने वतन की प्रगति और विकास में लगाने की प्रार्थना करती है। सरकार सिर्फ कहकर संतोष कर लेती है। ड्राइवर कर्म में यकीन करता है। उसने आप्रवासी भारतीय की सम्पन्नता से अपना अंशदान एक झटके में वसूल लिया।

भोर की पावन बेला में आप्रवासी भारतीय अपने मेजबान के घर की घंटी बजाता है। इस असमय की घंटी से मेजबान तो जगता ही है, उसके अंतर का डर भी जाग पड़ता है। आजकल चोर–डाकुओं का क्या भरोसा है। चोरी–डकैती के फैशन बदलते रहते हैं। कौन जाने घंटी बजाकर चोरी करना आधुनिक चोरों की नई स्टाइल हो। मेजबान ने इस मुसीबत

का सामना करने के लिये पत्नी को जगाया। घर की सारी बत्तियाँ जलाई। अहिंसक देश के अहिंसक परिवार के पास कोई अस्त्र–शस्त्र तो होता नहीं है। लिहाजा पत्नी ने बेलन और उनके पति ने मच्छरदानी के बाँस से लैस होकर सबेरे के संकट से जूझने की ठानी। पत्नी ने एक हाथ में बेलन उठाकर दरवाजा खोला, उनके पति पल्ले के पीछे औचक आक्रमण के लिये दुबके रहे। भारतीय नारी की यही खासियत है। घर पर हमला हो तो सामने आकर हिम्मत से वही मुकाबला करती है।

उनके विदेश से आये मेहमान इस अभूतपूर्व स्वागत के अनूठे अंदाज से हड़बड़ा कर पीछे हटे। अंधेरे–उजाले की इस संधि बेला में सामने की बिजली की रोशनी और पीछे से आती सूरज की किरणों में, श्रीमती मेजबान ने उन्हें पहचाना। प्रसन्नता के अतिरेक में बेलनदार हाथ झुका तो पल्ले के पीछे से बाहर आते पति देव के जबड़े पर पड़ा। अतिथि ने घर में प्रवेश किया तो श्रीमती मेजबान की किलकारी और उनके पति की सिसकारी ने उनका खैर–मकदम किया। जब मेजबान की खोई वाणी लौटी तो वह बोले–"हम तो कल रात एअरपोर्ट जाकर निराश होकर लौट भी आये। घर तक पहुँचने में ज्यादा दिक्कत तो नहीं हुई।"

मेहमान ने विस्तार से कस्टम से लेकर टैक्सी यात्रा की साहसिक दास्तान मेजबान को उल्लास से सुनाई–"हमने तो सपने में भी नहीं सोचा था कि हमारे ही देशवासी हम से इस तरह पेश आयेंगे।"

मेजबान ने उन्हें आश्वस्त किया–"विश्वास मानिए, कस्टम के इन्सपैक्टर से लेकर टैक्सी–ड्राइवर तक ने आपको अपना माना। तभी तो आपसे इतना अनौपचारिक व्यवहार किया। एक ने आपका सामान उलट–पुलट किया। सामान उलटने–पलटने की आजादी आप अपनों से ही ले सकते है। परायों के साथ ऐसी हरकत करें तो वह बुरा मान जायें। चोरी का इल्जाम लगायें। दूसरे ने आपको शहर घुमाया। महानगर की खाली सड़कें कितनी चौड़ी हैं। कान फोड़ता शोर तो सबने सुना है, सन्नाटे में सोये शहर को देखने का अवसर बिरलों को मिलता है साथ ही आपने जरूरतमंदों की मदद भी की। अपनों से यही उम्मीद की जाती है।"

आप्रवासी अतिथि अपने आतिथेय के तर्कों से संतुष्ट हुए या नहीं, अपने दोस्त कल्लू उर्फ कालीचरण की तरह, हम हर आप्रवासी भारतीय को अपना भाई मानते हैं। थोड़ी–सी ठगी और धोखाधड़ी तो सिर्फ यह साबित करती है कि उनके प्रति हमारे मन में कितना अपनत्व है। ठग–विद्या का अभ्यास और प्रयोग हम केवल अपनों पर करते हैं। पराये अपने झाँसे में नहीं आते हैं। आप्रवासी–भारतीय की जेब से थोड़ी छेड़छाड़, अपनत्व का ही नहीं, उनके भौतिक ठाट–बाट का भी लक्षण है। हमारे जीवन में उनका महत्व इसी एक बात से आंका जा सकता है कि आप्रवासी के आगमन की खबर सुनते ही शहर में विवाह योग्य कन्याओं का हाट लग जाता है और शहर के जेबकतरों की बांछें खिल जाती हैं।

□□□

चार ग़ज़लें

● कुंअर बेचैन

बेख़ुदी में तू ही तू गाता था इकतारे के साथ
यूँ तो कितनी भीड़ थी अलमस्त बंजारे के साथ

ज़िन्दगी का कोई तो एक फ़लसफ़ा तय कीजिये
साथ पारे ही के रहना है कि ध्रुवतारे के साथ

पत्थरों को पूजने वालों से इतना पूछिये
क्या कभी बैठें हैं वो दो पल थकेहारे के साथ

यूँ तो सब ही साथ थे पर कोई भी मेरा न था
सारे रिश्ते यूँ थे जैसे ख़त हों हरकारे के साथ

आत्मा के साथ रहना आ गया फिर तन का क्या
साथ शबनम के रहे अब चाहे अंगारे के साथ

घर का बँटवारा हुआ तो घर का आँगन रो पड़ा
दिल भी कितने बँट रहे थे घर के बँटवारे के साथ

रात और दिन, दुख व सुख, दोनों ही जुगनू की तरह
हममें हैं, जैसे कि अँधियारे हैं उजियारे के साथ

मौत के मारे हुए को तो कई काँधे मिले
साथ कोई चल न पाया वक़्त के मारे के साथ

दुख का क्या रिश्ता है मुझसे ऐ 'कुँअर' बस यूँ समझ
घर का रिश्ता जिस तरह है ईंट और गारे के साथ

(2)

तेरी हर बात चलकर यूँ भी मेरे जी से आती है
कि जैसे याद की ख़ुशबू किसी हिचकी से आती है

बदन से तेरे आती है मुझे ऐ माँ, वही ख़ुशबू
जो एक पूजा के दीपक में पिघलते घी से आती है

कहाँ से और आयेगी अक़ीदत की वो सच्चाई
जो जूठे बेर वाली सरफिरी शबरी से आती है

महक पहली मुहब्बत की उसी ख़ुशबू के जैसी है
जो दुलहिन की हथेली पर रची मँहदी से आती है

हजारों ख़ुशबुएँ दुनिया में है पर उससे कमतर हैं
किसी भूखे को जो सिकती हुई रोटी से आती है

मेरे घर की सभी पुरवाइयाँ घायल पड़ी हैं अब
कोई पछवा न जाने कौन–सी खिड़की से आती है

ये माना आदमी में फूल–जैसे रंग हैं लेकिन
'कुँअर' तहज़ीब की ख़ुशबू मुहब्बत ही से आती है।

(3)

फूल को ख़ार बनाने पै तुली है दुनिया
सबको अंगार बनाने पै तुली है दुनिया

मैं महकती हुई मिट्टी हूँ किसी आँगन की
मुझको दीवार बनाने पै तुली है दुनिया

हमने लोहे को गलाकर जो खिलौने ढाले
उनको हथियार बनाने पै तुली है दुनिया

जिनपे लफ़्ज़ों की नुमाइश के सिवा कुछ भी नहीं
उनको फ़नकार बनाने पै तुली है दुनिया

क्या मेरे दिल को दुखाने से अभी जी न भरा
क्यूँ मुझे यार बनाने पै तुली है दुनिया

मेरी कोशिश है कि रिश्तों की खनक ले के जिऊँ
मुझकों बाज़ार बनाने पै तुली है दुनिया

नन्हें बच्चों से 'कुँअर' छीन के भोला बचपन
उनको हुशियार बनाने पै तुली है दुनिया

(4)

चोटों पे चोट देते ही जाने का शुक्रिया
पत्थर को बुत की शक्ल में लाने का शुक्रिया

जागा रहा तो मैंने नये काम कर लिये
ऐ नींद तेरे आज न आने का शुक्रिया

सूखा पुराना ज़ख़्म नये को जगह मिली
स्वागत नये का और पुराने का शुक्रिया

आतीं न तुम तो क्यों मैं बनाता ये सीढ़ियाँ
दीवारों, मेरी राह में आने का शुक्रिया

अब ये हुआ कि दुनिया ही लगती है मुझको घर
यूँ मेरे घर में आग लगाने का शुक्रिया

ग़म मिलते हैं तो और निखरती है शायरी
यह बात है तो सारे ज़माने का शुक्रिया

अब मुझको आ गए हैं मनाने के सब हुनर
यूँ मुझसे 'कुँअर' रूठ के जाने का शुक्रिया

(5)

अब दिल में तड़प भी है और आँखों में पानी भी
बरसात का मौसम है ये अपनी कहानी भी

यादों में उभरती हैं दो भीगी हुई पलकें
था जिनमें समन्दर भी, दरिया की रवानी भी

जिस रोज़ से बिछुड़े हैं वो मिल ही कहाँ पाये
यूँ मेरी कहानी में राजा भी है, रानी भी

हम धूप में जलते हैं तनहाई की बरसों से
तुम आओ तो मिल जाय, इक शाम सुहानी भी

पलकों में छुपा लेंगे हम अपने सभी आँसू
ये अपनी धरोहर हैं और उनकी निशानी भी

कहते हैं ग़ज़ल जिसको, यह शै तो हक़ीकत में
आशिक का बयाँ भी है और संत की बानी भी

हैं इश्क के चर्चे तो दुनिया में बहुत लेकिन
दुनिया से कहो समझे, इस लफ़्ज़ के मानी भी

पहनाईं बहुत हमने साँसों की भी जंज़ीरें
कब कै़द में रह पाये, बचपन भी, जवानी भी

यह जीस्त 'कुँअर' क्या है, यह वक़्त के होठों पर
एक ताज़ा ग़ज़ल भी है, एक नज़म पुरानी भी।

□□□

ट्रिनिडाड में पिनाल का गांव और सूर्योदय

● हरिशंकर 'आदेश'

छाई है चारों ओर घनी अंधियारी।
डूबी जिसमें नैसर्गिक सुषमा सारी।।

हर घर, हर खेत, मधुर सपनों में खोया।
पूरा का पूरा गांव है सोया।।

वह दूर क्षितिज में उषा उतरती प्यारी।
ले मंजु रश्मियों की अनमोल पिटारी।।

हो चला रक्त–रंजित प्राची का आंगन।
लेता है अंतिम श्वांस तिमिर का शासन।।

लो, लेने लगा प्रकाश पुनः अंगड़ाई।
नव जीवन ले जागृति की बेला आई।।

बहती है सुरभित वायु विहग–दल जागा।
रख अपने सर पर पांव तिमिर है भागा।।

हो चले दृष्टिगत मौन खड़े तरु–पादप।
ज्यूं एक पांव पर खड़े करें योगी तप।।

द्रुम–दल–सुमनों पर दवि को वार रही है।
हर ओर मुदित नीहार निहार रही है।।

अब लगा जागने घर–घर में कोलाहल।
पुनि होने लगी प्रत्येक दिशा में हलचल।।

सर उठा गर्व से खड़े ईख के पौधे।
करते समीर संग बिना दाम के सौदे।।

सुन्दर है गांव, निवासी भी सुन्दर हैं।
सच्चाई से पूरित सबके अन्तर हैं।।

है गूंज रही हर ओर यहां रामायण।
घर–घर पूजे जाते शिव औ नारायण।।

अद्‌भुत रामायण यज्ञ हो रहा भारी।
ले रही राम का नाम प्रकृति ही सारी।।

हर ओर हंस रही है प्रमुदित हरियाली।
फल–फूलों से भर झूम रही हर डाली।।

छोटे से बाढ़–सेतु से सदा बंधी है।
चुपचाप बह रही ओरोपूछ नदी है।।

लगता है मानो भारत के अन्दर है।
सचमुच पिनाल का गांव बहुत सुन्दर है।।

जो हो न प्रभावित इससे, निश्चित जड़ है।
दक्षिण त्रिनिडाड आर्य संस्कृति का गढ़ है।।

दो–चार दिनों में दूर चला जाऊंगा।
यह सुन्दर सूर्योदय न भुला पाऊंगा।।

नियाग्रा के निर्झर

करते विहग विहार मुक्त मन नील गगन में,
इन्द्र धनुष उतरा है लहरों के आंगन में।।

शीश उठाये चली जा रहीं वारि–सुतायें,
बांध नहीं पाती हैं जिनको पुलिन–भुजायें,
कल–कल कलित निनाद गूंजता अहरह बन में।।

'अश्व–नाल' आकृति, दो देशों के संगम हैं,
'नियाग्रा के निर्झर' निश्चय ही निरुपम हैं
एक दिव्य संगीत भरा है इनके स्वन में।।

शीतल–शीतल अविकल धवल फुहारें अविरल,
करतीं आर्द्र आगतों के तन–मन को निर्मल,
भर देतीं हैं रंग नया ही हर जीवन में।।

दूर दूर तक चलती जाती फेनिल लहरें,
करते हैं व्यवधान उपल पर रंच न ठहरें,
उछल उछल कर कोलाहल भरतीं निर्जन में।।

अतुलित लिये उमंग सदा उछला पड़ता है,
उपत्यका के आंचल में मचला पड़ता है
भर शाश्वत अनुराग अमल आभा यौवन में।।

हिम–आतप–पावस में बहता यद्यपि अकेला,
किन्तु लगा रहता है नित्य तटों पर मेला,
पाता है आनन्द विश्व इसके दर्शन में।।

□□□

खराब मौसम में एक कविता

● गंभीर सिंह पालनी

ये कैसी हवा चल रही है
जिसमें उड़कर आए सांप
लोगों के मन के गुलमोहरों पर
लिपट गए हैं
और जो
दहकने वाले टेसुओं का
रंग उड़ाकर
ले जा रही है।

जंगलों में टहल रही हैं
साँपों की टोलियाँ
और वहाँ
दरख्तों के नीचे
कल तक/जिन खेतों में
हरी फसलें लहराती थी,
वे सब–के–सब
रेत से भर गए हैं
और जाने कब
छुपा गए अण्डे उनमें
टिड्डियों के दल।

विषखोपरे विचर रहे हैं
सड़कों पर।
बढ़ते ही जा रहे हैं
घोंघे और कछुए।
हथेलियों से/किसी बिल को
ढांपने का प्रयास करते ही
वहां से
धुंध के साथ लावा
फूट पड़ता है।
पता नहीं कितने ज्वालामुखी
दबे हुए हैं यहाँ।
सारे–के–सारे लोग
बौरा गए हैं,
कौन घोल गया भांग चुपके से
यहां के कुओं में!

चारों तरफ/पंखों वाले सर्प
उड़ रहे हैं
घुल गया है जहर हवा में
फिर भी/जहर जमा करने के लिए
लोग साँप पाल रहे हैं घरों में
और लादकर उनकी पेटियां काँवरों में
ढो रहे हैं।
अमरबेलें जकड़ती जा रही हैं
वनों और उपवनों को;
बॉबियां ले रही हैं आकार
और बता रही हैं
इस जमीन में नमी नहीं बची है।

यूकेलिप्टसों का साम्राज्य फैल रहा है
और लैण्टाना
उनके रक्षा–कवच बनते जा रहे हैं।

जिधर भी देखता हूँ
गोखरू के कांटे

बिखरे हुए पाता हूँ
संभलकर पाँव रखना भी
कुछ कम जोखिम भरा नहीं है।
ये कैसी जगह है
जहाँ कब कौन केंचुआ
सिर उठाने लगे
और सांप में बदल जाए
कुछ अन्दाज नहीं होता।

लोग प्यासे हैं
और सारे जोहड़ों को
जलकुंभियाँ निगल गई हैं।
प्यासी नदी में बस्तियाँ बसा ली हैं
कुछ लोगों ने
और किसी खतरे की कल्पना भी
उनके जेहन में नहीं है।

ये कैसी जगह है
जहां कैसे भी पुकारो
नहीं कोई ध्यान देता।
क्या यहां लोगों ने सुनना
छोड़ दिया है
या फिर सभी लोग बहरे हो गए हैं
और उनके कानों में
कनखजूरों ने बसा ली हैं बस्तियाँ।

मानता हूँ बारूद की गंध से
सब कुछ
सहमा हुआ है
यहां तक कि हवा भी।
ये भी जानता हूँ कि चुटकी भर बारूद
किसी भी क्षण आदमी की धज्जियाँ उड़ा सकता है।
ये बात मैं ही क्या/सभी लोग जानते होंगे अच्छी तरह
फिर भी खत्म नहीं होता सिलसिला

बारूद के बिकने और खरीदे जाने का।
ठीक है कि कभी भी किसी भी क्षण
किसी भी झाड़ी से/या किसी भी रास्ते से
आकर बरस सकता है बारूद का बादल
मगर मैं नहीं मान सकता कि केवल इसलिए
ये कविता करने के लिए उपयुक्त मौसम नहीं है।

ये ठीक है कि उपवनों के रंग–रूप बदलते जा रहे हैं
और जलकुंभियाँ भर गई हैं सारे जोहड़ो में
लेकिन मैं ये कैसे मान लूं
मधुमक्खियों ने शहद बनाना छोड़ दिया है
बन्द कर दिया है पक्षियों ने चहचहाना
और सारी मछलियाँ मर गई हैं।

हाँ, इतना जरूर है कि
कुम्हला गए हैं कमल
और बगुले मना रहे हैं उत्सव;
आप चाहें तो यूँ कह सकते हैं
कि जोहड़ों में पर्याप्त जल नहीं रहा
और वे जलकुंभियों की सेना के बूटों से
पट गये हें,
लोग जिन्दा दीखते हैं
चल–फिर रहे हैं
लेकिन मर गये हैं
तथा सब कुछ थमा हुआ है।
लेकिन इससे क्या होता है!
मैं तो ये कहता हूँ
यह किसी बड़ी आंधी का
संकेत है

मुझे विश्वास है
फिर ऐसी घड़ियाँ आएंगी
जब कमल तैरते मुस्काएंगे,
कंधों पर बंसुरियाँ लटकाए
शुद्ध हवा में जहाँ मन चाहे वहाँ घूमेंगे मछुवारे

और तुखट बतलायेंगे
पोखरों में हैं मछलियाँ।
हालांकि कभी–कभी विश्वास जितना बड़ा धोखा दे देता है
आदमी को
उतना तो। अंधविश्वास तक नहीं देता।

फिर भी/खत्म थोड़े ही हो जाती हैं आस्थाएं।
ये जो मन है न!
विश्वास की जड़ों में
बड़ी मुश्किल से दीमकें लगने देता है
और याद दिलाता है–
जहां रेतीली धूल का समंदर है
सुनते हैं सहारा के उस रेगिस्तान के नीचे भी
बहती हैं निरन्तर! मीठे पानी की नदियां
और उनमें/तैरती हैं मछलियाँ।

□□□

तीर्थयात्रा

● गौतम सचदेव

तीर्थयात्रा पर निकल जाता हूँ
अब मैं अकसर
गहरे अँधेरे तीर्थों की ओर
धर्मभीरुओं की तरह
कुछ लोग लगाते हैं मुझ पर आरोप भी
धर्मान्ध होने का
आप भी लगा सकते हैं!
तीर्थयात्रियों की यही पहचान जो है
सबके पास...
पर मुझे इस पहचान की ज़रूरत है
इससे मुझे एक नाम मिलता है
अनजानों की भीड़ में
पाताल में भटके तीर्थयात्री का।

मेरे विस्मृत तीर्थ बड़े विचित्र हैं/रहस्यमय भी
अनदेखे गुप्त गह्वरों जैसे
भूतों और राक्षसों तक के तीर्थ हैं इनमें
सुनसान बियाबान
कोई मन्दिर, छतरी या चबूतरा नहीं हैं वहाँ
गिद्धों के बैठने को ठूँठ तक नहीं
बस अँधेरा है

एकदम अजनबी
भ्रम और भय का पूरा आकाश
सन्देहों का शून्य
धारणाओं के पत्थरों से मुँदी
विश्वासों की हवाई गुफाओं से भरा
जिनमें दर्पण ही दर्पण हैं
अपना चेहरा तक डरावना दिखता है जिनमें
विकृत और घिनौना
या पहचाना तक नहीं जाता
दशानन रावण से भी ज़्यादा सिर दिखते हैं अपने
स्वयं मुझ पर हँसते हुए...
फिर एक चलचित्र–सा खुलने लगता है
अदृश्य चिनगारियों वाला
दर्पण टूटने लगते हैं
और एक भयानक अट्टहास सुनाई पड़ता है/चारों ओर
ब्रह्मराक्षस की धमकी जैसा
तभी कोई कुएँ–सा मुँह खींचने लगता है अपनी ओर
जिसमें डूब जाने को जी करता है
लेकिन पाँव ठिठकते हैं
तब प्रकाश धुआँ बनकर घेरने लगता है
एक बेहद ठंडा प्रकाश
डरकर मैं भागता हूँ वापस/बगटुट
अभी और कई तीर्थयात्राएँ शेष जो हैं
महातीर्थ यात्रा से पहले की
पागल इच्छाओं वाली।

बिल्कुल स्पष्ट है
भय और संकल्प के तीर्थों को जोड़ने वाली
संकरी सर्पिल पगडंडी
कुहासे के कुएँ जैसी है
या ब्रह्मराक्षस के अट्टहास जैसी/और कहते हैं
वह सदा अवसर की तलाश में रहता है।

□□□

उड़ान

● पद्‌मा दुबे

दिल्ली से लाहौर
लाहौर से अफगान
अफगान की वादियों में
मेरी अटकी हुई थी जान
फिर भी मैं लेती रही उड़ान।

बादलों के छोर में
बंदूक की नोक पे
अटकी हुई थी मेरी जान
फिर भी कफन बांध
मैं लेती रही उड़ान।

यह थी कैसी कसक
यह थी कैसी मजबूरी
दो दिलों की धड़कन जो
पहचान सकी न जुबान।

न फूलों के झुरमुट
न पेड़ों के साए
दो बाहों का हार पहने बस
मैं लेती रही उड़ान।

न चांद को निहारा
न यादों को पुकारा
अपनी ही जुल्फों से उलझती
मैं लेती रही उड़ान।

कोई अजनबी तो ऐसा आता
परियों की कहानी मुझे सुनाता
कोई मांझी तो ऐसा आता
मेरी नैया को पार ले जाता

हवा कोई तो ऐसा गीत गाती
जिसकी आवाज़ मेरे पास आती
और अकेले–से विरान् शहर में
तारों से मुझे छेड़ जाती।

जब खत्म हुआ सफर
शुरू हुआ नया पहर
लोगों ने पूछा
दिल्ली से लाहौर
लाहौर से अफगान
अफगान की वादियों में
जो तुम्हारी अटकी हुई थी जान
कैसी थी उनकी जुबान!

सोचा मैंने भी
कैसी थी उनकी जुबान!
किसी आदमी की या जानवर की
मेरे मन, कैसी थी वो जुबान।

और जो थे
'बोल्ड और ब्यूटीफुल'
कैसी थी उनकी जुबान!

मन ने जब कही अपनी दर्द भरी दास्तान
दो आंसू गाल पर थे
रो रो कर वे बेहाल थे
और मैं, लेती रही उड़ान।

□□□

जुड़ाव

● अशोक भाटिया

सुनो, तुम मुझे
दो पानियों को जोड़ती हुई
ज़मीन तक ले चलो
उस ज़मीन तक
जहाँ एक तरफ़
तेज़ चलती हुई नदी है
तरंगों पर उछलती हुई
हर मौसम में हाँफती–दौड़ती नदी
यात्रा में पड़ते हर कंकर को
गरज के साथ बहा ले जाती हुई
नदी है जहाँ

और दूसरी तरफ़
एक झील है
गति का परिणाम
एक छोर, एक ठौर
एक झील, जिसमें
ठहरी हुई गहराई है

तुम मुझे वहाँ तक ले चलो
कि झील हो चुका वह पानी

नदी बनने की
ताब रखे अपने भीतर
और वक्त पड़ने पर
तोड़ डाले अपने
चमकीले रुके हुए किनारे
और फिर से नदी हो सके

नदी और झील
दोनों आस–पास हों
तुम मुझे
ऐसी ज़मीन तक ले चलो।

□□□

ग़ज़ल

● अशोक आलोक

नई जमीन नया आसमान बाकी है
हरेक शख्स की ऊँची उड़ान बाकी है।

भुला सके न अभी तक वो रात का मंजर
बदन की साख पे मीठी थकान बाकी है।

बिखर गई है निगाहों के सामने दुनियाँ
हसीं मुकाम का अब भी निशान बाकी है।

फिसल रहा है नजर से उम्मीद का दामन
सफर की राह में कोई दलान बाकी है।

उदास शाम की रौनक कभी तो लौटेगी
तमाम उम्र के सपनों में जान बाकी है।

□□□

हमसफ़र की खोज में

● विश्वमोहन तिवारी

एक प्रसद्धि कहानीकार के प्रथम उपन्यास से हम उतनी ही गहरी अपेक्षाएं रखते हैं जितनी उनकी कहानियों से। एक लम्बे अर्से तक कहानियां लिखने के बाद यदि वह कथाकार उपन्यास लिखता है तो उस उपन्यास के कहानियों द्वारा एक विस्तृत बाग, जैसे शालीमार मुगल बाग के, बजाय एक पुष्प गुच्छ बनने का खतरा तो रहता ही है, या फिर एक लम्बी कहानी बनने का। कहानी यदि जीवन के एक छोटे से कोने को या एक घटना को, उद्दीप्त करती है तो उपन्यास सारे जीवन के एक विशाल फलक को। मैं यह कहना चाहता हूं कि 'इस दौर में हम सफर' सही अर्थों में एक आज की पतनशील नैतिकता के कारणों और समाधानों की पड़ताल करता हुआ उपन्यास है।

जीवन की यात्रा, नोबेल पुरस्कृत रविन्द्रनाथ के प्रेरणादायक गीत 'एकला चलो रे' के बावजूद, अकेले तय नहीं की जा सकती। सहयात्री या हमसफर अत्यंतावश्यक होते हैं। ये हमसफर माता, पिता भाई–बहिन, पत्नी तथा संबन्धी, विभिन्न मित्र तथा कार्यालयों के सहकर्मी, पड़ोसी आदि–आदि हो सकते हैं। माता, पिता, भाई तथा बहिन आदि का हम चुनाव नहीं कर सकते। पति या पत्नी और कुछ सीमा तक सहकर्मी, पड़ोसी आदि का चुनाव कर सकते हैं। हमसफरों में सबसे कठिन चुनाव पति या पत्नी का ही है। और एक नया परिवार तथा नया जीवन तभी प्रारंभ भी होता, और एक स्थापित–से परिवार का विघटन या पुनर्गठन भी।

उपन्यास का नाम 'इस दौर में हमसफर' हममें से अनेक को यह उपन्यास पढ़ने के लिए शायद प्रेरित ही न करे क्योंकि आज हममें से अधिकांश लोगों का 'हमसफरों' से कोई वास्ता नहीं होता। पड़ोसी एक दूसरे को न तो जानते हैं और न जानना चाहते हैं। दफ्तर या कंपनियों में काम करने वालों की 'सह–यात्रियों' से मात्र व्यावसायिक जानकारी होती है, मित्रता होना तो अपवाद या संयोग होता है। इस उपन्यास का नायक/खलनायक अनिरूद्ध

जो अपने विज्ञापन जगत में अत्यंत सफल तथा विश्व प्रसिद्ध है, जीवन साथी अनन्या से कहता है, "इस ग्लेमर और फिल्म इन्डस्ट्री में कोई संबन्ध स्थायी नहीं रहता, जो संबन्ध दीखते हैं, वे होते नहीं, जो होते हैं, उनकी कोई कल्पना नहीं कर सकता। ..." (कथा के संदर्भ में यह कथन, स्वयं अनिरूद्ध पर न लगकर, जन सामान्य पर लगता–सा दिखता है। ऐसा असम्भव नहीं कि उपन्यासकार ने, अनजाने ही, अनिरूद्ध से अपने सारे जीवन के विकृत व्यवहारों की आत्म–स्वीकृति भी कराई हो। किन्तु नायिका अनन्या ने इस कथन को सामान्य कथन ही माना है कि 'ग्लेमर और फिल्म इन्डस्ट्री' में कोई भी हमसफर सत्यनिष्ठ नहीं होता।) यहां तक कि तथाकथित आधुनिक घरों में भी यही 'स्वकेन्द्रिता' होती है। इसे विडम्बना कहें या उपन्यासकार का निहित व्यंग्य कि यह उपन्यास जीवन के इस दौर में हमसफरों की इस स्वकेन्द्रिता को जीवन की कसौटी पर कसता भी है। इस उपन्यास का नाम 'इस दौर में हमसफर' के स्थान पर 'हमसफ़र की खोज' में अधिक सटीक लगता है। पुस्तक का आवरण–चित्र कहता लगता है कि फूल सा सुकोमल सुगन्धित जीवन धुँआं–धुँआं हो रहा है। यह चित्र सटीक टिप्पणी भी है, और शायद इसमें अतिशयोक्ति भी, अत्यधिक निराशा भी, क्योंकि उपन्यास में आशा अंत तक बनती रहती है।

इस उपन्यास में पात्रों की भीड–सी है। खैर पात्रों की अधिकता होते हुए भी, वह भीड़ इसलिये नहीं है कि उसका समायोजन इस तरह किया है जैसा हम जीवन में पाते हैं, कि वे सब जीवन के प्रति अलग–अलग दृष्टिकोण रखते हैं, कि उनमें आपस में टकराव है, संबन्ध है, विरोध है, सहकारिता है—वे एक दूसरे से तटस्थ नहीं है, एक दूसरे के आमने–सामने तो हैं किंतु समानांतर नहीं है। मुझे पात्रों का ऐसा विन्यास देखकर बेल्जियम के विश्व प्रसिद्ध चित्रकार पीटर ब्रुघेल के चित्रों की याद आती है जिनमें भी व्यक्तियों की भीड़–सी दिखती है। वास्तव में यह 'भीड़' दर्शक या पाठक से गंभीर अवलोकन की माँग करती है तभी उसका सौंदर्य तथा कथ्य नज़र आता है।

हमसफरों की खोज में उपन्यासकार ने अनेक तरह के अनेक परिवारों के आपसी संबन्धों पर प्रकाश डाला है। इसमें अनन्या के माता, पिता तथा भाई के परिवार भी हैं। अनन्या का भाई मधुसूदन एक आदर्शवादी पत्रकार है जो गरीबी सहकर भी इस सत्ता केन्द्रित पत्रकारिता तथा राजनीति से संघर्ष करता है और अन्त में एक अत्यंत कुशल, तथा सफल यद्यपि आदर्शवादी, पत्रकार हेमंती से उसका विवाह होता है। इन दोनों अर्थात मधुसूदन तथा अनन्या के माता–पिता अकेले रहते हुए बहुत दुखी थे। हेमंती अपने प्रेम से उनके जीवन को भी आनंदमय कर देती है। इस उपन्यास में सुप्रभा नाम की अत्यंत स्वार्थी माँ है जो स्त्री स्वातंत्र्य की भ्रमपूर्ण अवधारणा के आधार अपनी पुत्री आलोका का जीवन बरबाद करने पर तुली है। तो रमेश चंद्र तथा वनानी के बिखरते जीवन को सम्हारने वाली वनानी की प्रेममयी सास नंदिनी है। नंदिनी की ही बेटी प्रभा भी अपने अतिव्यस्त डाक्टर पति के साथ इसी प्रेममय संस्कार के बल पर सुखी जीवन व्यतीत कर रही है। इस तरह सभी

तरह के बेटे, बेटी, माता, पिता, सास बहू, भाई बहिन के जीवनों से यह उपन्यास परिवार में अंतर्सम्बन्धों की, जीवन में सफलता की, सुख की, दुख की अभिव्यक्ति करता जीवन की एक सघन यात्रा करता है। इसमें त्याग तथा आदर्श की मूर्त्ति डा. प्रशान्त सिंहा हैं तो भ्रष्टाचार तथा अमानवीयता की मूर्त्ति एक ठेकेदार अहलूवालिया भी है। उपन्यास का फलक बहुत विशाल है और उसका समायोजन भी उतना की कुशल। यद्यपि इस उपन्यास की गति सरल–रैखिक है, फ्लैश बैक कम ही हैं, किंतु घटनाओं के अप्रत्याशित उतार चढ़ाव होते हुए भी वे जीवन की जटिलता को सरलता से चित्रित करते हैं। यह सब उपन्यास को बेहद रोचक बनाते हैं।

आज जो हमारे पारिवारिक जीवन में विघटन आ गया है यह उपन्यास अधिकांशतया उस पर भिन्न–भिन्न दृष्टियों से प्रकाश डालता है, कहना चाहिये कि भरसक ईमानदारी से प्रकाश डालता है। क्योंकि उपन्यासकार के पास भी एक जीवन दृष्टि है जिसे वह यथा संभव अन्य दृष्टियों पर हावी नहीं होने देता। यह इस उपन्यास के लिये एक कठिन कार्य है क्योंकि इसमें कथाकार ही कथा सुनाता है और अपनी टिप्पणियां, अवलोकन, वर्णन आदि करता चलता है। उपन्यास की घटनाओं को पढ़कर ऐसा लग सकता है कि उपन्यासकार ने पति या पत्नी के माता–पिता द्वारा चुने जानी वाली परम्परा, और 'लड़का–लड़की भी एक–दूसरे से मिल लें' वाली संवर्धित परंपरा को या तो दकियानूसी मान लिया है, या वसंत, रमेश चंद्र तथा सत्यसुंदर की घटनाओं द्वारा 'रिस्की' माना है। दीपाली का विवाह इसी संवर्धित परंपरा के तहत अनन्या आदि मिलकर कराते हैं। किन्तु शायद उनके विवाह के पश्चात 'जैसे उनके दिन फिरे, सबके फिरें' के अंदाज़ में उनका कोई चित्रण नहीं है। किन्तु उपन्यासकार की विशिष्ट दृष्टि का पता तो अन्त पहुंचने पर लगता है जब अनिरूद्ध बागची नायक से खलनायक बन जाता है। नायिका अनन्या जो अपनी स्वतंत्रता तथा अस्मिता के लिये जीती है और इसीलिये विवाह के स्थान पर अनिरूद्ध के साथ जीवन साथी या अविवाहित प्रेमी युगल के रूप में ही रहने का साहसिक काम करती है : अन्त में अनिरूद्ध को छोड़ देती है। ऐसी स्थिति अनन्या के आदर्शों के लिये विजय की या सफलता की स्थिति नहीं है। और यह एक तरह की हार होते हुए भी, वह उसे हार नहीं मानती। जब अनन्या की माँ ने उससे कहा कि इस तरह के निर्णय से लड़की ही बदनाम होती है, तब उसने कहा, "माँ बदनाम कमजोर होते हैं। जो ताकतवर होते हैं वे नहीं।..." उपन्यासकार ने तटस्थ रहकर प्रेमी–युगलों के अविवाहित रहने के निर्णय पर, अनन्या द्वारा महिला स्वतंत्रता तथा अस्मिता को लेकर जो सारे तर्क दिलवाये थे, उन्हीं तर्कों या शर्त्तों पर अनन्या ने जीवन जिया। किंतु उन शर्त्तों को अनिरूद्ध पूरा नहीं कर पाए। तब उपन्यासकार परोक्ष रूप से अनन्या के आदर्शात्मक सोच की व्यावहारिक कठिनता को जीवंत घटनाओं द्वारा ही अभिव्यक्त करता है। यह उपन्यास की शक्ति है। और अधिकांश पाठक इससे सहर्ष सहमत भी होंगे। किंतु अनिरुद्ध का जो पतन दिखलाया गया है वह मुझे अविश्वसनीय लगा। उस घटना के पूर्व का उसका जो सारा

जीवन है, उससे उसके ऐसे पतनशील व्यवहार का 'विस्फोट' होना मुझे स्वाभाविक नहीं लगता। किंतु मैं इसे अपनी व्यक्तिगत राय ही मानता हूं, क्योंकि शायद अनेकों को वह व्यवहार स्वाभाविक लगे। अनेकों को यह भी लगे कि अनिरूद्ध की हार सिर्फ उसी की हार नहीं, आधुनिकता के तमाम नकली प्रत्ययों की हार भी है जो आधुनिकता को सिर्फ 'देहभोग के सुख' तक सीमित कर देना चाहते हैं। वैसे, ऐसी सीमित आधुनिकता की हार के बेहतर उदाहरण इस उपन्यास के कोकिला, रतना पारेख और अहलुवालिया हैं। केवल इस उद्देश्य से उपन्यासकार को बिना जमीन तैयार किये अनिरूद्ध का पतन करने की आवश्यकता नहीं थी। उसके शर्वाणी से बन रहे संबन्ध ही अनन्या द्वारा उसे छोड़ने के लिये पर्याप्त थे। उपन्यास में वर्णित विवाहों में एक विन्यास नज़र आता है जो उपन्यासकार की दृष्टि पर प्रकाश डालता है। सारे विवाह जो पारंपरिक पद्धति से किये गये, अंततः सफल होते हैं, बीच में चाहे कुछ बाधाएं रही हों। उनकी सफलता ज़बर्दस्ती नहीं थोपी गई है। इसमें आलोका तथा सत्यसुंदर का वैवाहिक–समाधान या सफलता इस स्वाभाविकता का अपवाद लगता है। मेरी समझ में केवल एक 'अंधा व्यक्ति' (और शायद वह भी नहीं) ही उस निपट स्वकेन्द्रित तथा व्यभिचारिणी आलोका की सच्चाई को न देख पाए। वे सफल इसलिये हुए कि बाधाओं को दूर करने के लिये परिवार तथा मित्रों ने सहयोग दिया। दोनों प्रेम विवाह भी सफल हैं क्योंकि वहां भी सहयोग है। अब रहा अविवाहित युगल–अनिरूद्ध तथा अनन्या–का जो अंत में टूट जाता है। इस युगल के दोनों व्यक्ति, या कम से कम अनन्या तो निश्चित ही, इतनी अधिक स्वतंत्रता चाहते हैं, कि वे अपने कार्यों में किसी को भी हस्तक्षेप नहीं चाहते–चाहे वह सकारात्मक हो या न हो। ऐसे नवीन संबंन्धों में जहां युगल में से एक ने भी गलती की और युगल टूटा। यहां तक कि वे स्वयं एक दूसरे के व्यवहार पर–चाहे गलत हो–टिप्पणी करना पसंद नहीं करते। एक दूसरे से सफाई मांगना या देना पसन्द नहीं करते। एक तरह से वे इस समाज के समुद्र में दो टापू बनकर रहना चाहते हैं जिनके बीच केवल प्रेम और विश्वास का सेतु है। इतना पूर्ण व्यवहार–एक तरह से अनन्या की अपनी जीवन–साथी बनने की अवधारणा की शर्तें जो वास्तव में नये 'अविवाहित–दाम्पत्य' जीवन के आदर्श हैं का अनन्य निष्ठा से पालन करना–तो इस उपन्यास की अनन्या में ही मिल सकता है, और शायद जीवन में भी किंतु उससे भी अधिक दुर्लभ जितने दुलर्भ आज डा. प्रशान्त सिन्हा के समान व्यक्ति हैं। उपन्यासकार का अद्‌भुत कौशल है कि उसने ऐसे दुर्लभ तथा एक नये आदर्श वाली महिला अनन्या–का निर्माण किया, उसे जीवन में विश्वसनीय तथा अभिनन्दनीय बनाया, और जब उसके आदर्शों की अवहेलना हुई तो उसने उस 'अलिखित अनुबंध' को बिना 'रोए' तोड़ दिया। लगता है कि उपन्यासकार इशारा कर रहा है कि ऐसे पूर्ण व्यक्ति जो हजारों में एक होते हैं। तब इतनी कठोर शर्त्तों वाले सफल 'अविवाहित दम्पति' तो और भी बिरले होंगे। यह 'नवीन दाम्पत्य' इस उपन्यास में एक तरह से असफल हैं। किन्तु दूसरी तरह से असफल नहीं है क्योंकि अनन्या ने इस एक हार के बावजूद, अपनी हार नहीं मानी है।

एक चरित्र शर्वाणी का भी है जो कोलकाता के एक भ्रदलोक के उस परिवार की है जो अब इतने गरीब हो गये हैं कि उसे कला विद्यालय में चित्रकारों के लिये नग्न मुद्राएं बनाना पड़ता है। और चूँकि भद्र परिवार की भद्र महिला के लिये इसके अतिरिक्त जीवन–यापन ही नहीं जीवन–सुरक्षा का कोई विकल्प नहीं था, इसलिये उसने यह कार्य न चाहते हुए भी स्वीकार किया। और वही शर्वाणी अपनी अनोखी तराशी देहयष्टि तथा सौंदर्य के बल पर, तथा अनिरूद्ध के विज्ञापनी जादू द्वारा विश्वप्रसिद्ध मॉडल बन जाती है और फिल्मी स्टार भी शर्वाणी का पूरा विकास बहुत मार्मिक है साथ ही उसकी एक बुझे दीप से लेकर 'सितार' बनने की यात्रा विश्वसनीय भी है। और उसकी संस्कार–हीनता का तथा भोगवाद संस्कृति का ही परिणाम है कि वह अपना जीवन बनाने वाली अनन्या के साथ भी धोखा करती है।

प्रत्येक चरित्र हमें हमारे अच्छे–बुरे व्यवहारों के तल में ले जाता है और हम अचानक जीवन को उसकी व्यापकता तथा गहराई में समझने लगते हैं, चाहे हम हर निष्कर्ष पर उपन्यासकार से सहमत हों या नहीं, हम उन मुद्दों पर, घटनाओं पर, भावनाओं पर तथा उनके अंतर्सम्बन्धों पर विवेचनात्मक दृष्टि तो डालते ही हैं, हृदय में भी अनुभूत करते हैं। आज की तड़क–भड़क तथा न केवल भोगवादी वरन शरीर केन्द्रित आदमखोर संस्कृति पर जो प्रकाश उपन्यासकार डालता है, वह एक ऐसा भयानक दृश्य प्रस्तुत करता है कि जो किसी भी संवेदनशील भारतीय के मन को तूफान के समान झकझोर देगा। नायिका अनन्या जब उस दृश्य को देखती है तो उसे 'कै' होने लगती है। उस यौनता के नंगेपन का, व्यभिचार के उत्सव का, जिसके लिये अंग्रेजी में एक अच्छा शब्द है 'और्ज़ी' (orgy), स्पष्ट चित्रण करना इसलिये आवश्यक था कि जो 'कै' अनन्या को उस 'वीभत्स और्ज़ी' को देखकर हुई, उस पर पाठक को पूरा विश्वास हो। अन्यथा आज की अग्र–आधुनिकता के जमाने में, इसे उपन्यासकार का पूर्वाग्रह मान लिया जाता। फिर भी यह तो मानना पड़ेगा कि वह वर्णन प्रभावी होते हुए भी अश्लील नहीं है।

अमर गोस्वामी की हास्य–व्यंग्य की छींटेदार शैली तथा नये–नये उपमानों से जड़ित भाषा से उनके पाठक परिचित है। अतएव उस पर कुछ अधिक न कहकर, उपन्यास के जो कि एक बड़ी रईसी पार्टी के वर्णन से प्रारंभ होता है, 'ओपनिंग (प्रारंभिक) वाक्यों को उद्धृत करना चाहता हूं : "पीली चाँदनी बड़े जतन से बनाए बगीचे के टोस्ट पर मक्खन सी फैली हुई थी ... बीच–बीच में एक समूह के कुछ लोग दूसरे समूह में घुस जाते थे। इस तरह कोई समूह कभी बड़ा तो कभी छोटे समूह में बदलता रहता था। इससे ये समूह पेट की तरह कभी फूल जाते तो कभी पिचक जाते थे ...।" अब चाँदनी की उपमा मक्खन से दी जा रही है। और इस प्रारंभिक वर्णन से ही हमारे समाज में जो एक व्यक्ति सारी प्रकृति को, वरन्, अन्य व्यक्तियों को भी भोग की सामग्री मानता है, उसकी भोगवादी दृष्टि को कितनी प्रभावशाली कुशलता से तथा कुछ–कुछ विनोद के साथ चित्रित किया है, उसकी मौलिकता प्रशंसनीय है।

कुछ लोग इस उपन्यास में जीवन की और भी महत्त्वपूर्ण संभावनाएं ही देखते हैं, उनकी उपस्थिति नहीं। क्या हम पश्चिम की नकल करते–करते भूल गये हैं कि समाज की आधारभूत इकाई परिवार है। बिना प्रेम की शक्ति पर स्थापित परिवार कहना चाहिये संयुक्त परिवार अशक्त ही रहेगा और ऐसे अशक्त परिवारों वाला समाज भी अपना विकास नहीं कर सकेगा। जीवन कितना जटिल है, अनन्या ने भी तो प्रेम (और आपसी विश्वास) के आधार पर 'अविवाहित दाम्पत्य' बनाया था, और वह एक प्रयास असफल हो गया। क्यों? पुरूष की यौन–लोलुपता के कारण। आदमी गलती करके भी तो सीखता है, किन्तु अनन्या न तो वह मौका देना चाहती है, और न किसी अनुभवी विद्वान की सलाह सुनना चाहती है। इसीलिये इस उपन्यास का प्रमुख लक्ष्य 'परिवार के संगठन के आधार' की पड़ताल है। पारिवारिक विघटन हो, या विघटित परिवार का पुनर्गठन, उपन्यासकार उसका विचारों द्वारा नहीं जीवन द्वारा ही चित्रण कर अपनी तटस्थता बनाए रखता है। वे घटनाओं द्वारा पारिवारिक–जीवन के गठन के विषय में कहीं एक नैश्चित्य पर पहुंचते हैं तो कहीं अनैश्चित्य पर भी। परिवार को प्रेम ही ऊर्जा देता है, सुख देता है, ऐसा निश्चित निष्कर्ष वे रमेशचंद्र तथा वनानी के और सत्य सुंदर तथा आलोका के जीवन के विकास से दर्शाते हैं। किंतु यह निष्कर्ष वह एक एक्टर शांतनु से उसके इंटरव्यू के दौरान कहलवाते हैं : "प्रश्न : प्रेम के बारे में आपका क्या ख्याल है? शान्तनु : प्रेम जीवन की ऊर्जा है। प्रश्न : क्या इस ऊर्जा का अनुभव आपको हो चुका है? शान्तनु : हुआ भी और नहीं भी। प्रश्न : समझा नहीं। शान्तनु : समझ तो मैं भी नहीं पाया हूं।" और दृष्टव्य यह है कि शान्तनु अपनी प्रेमिका सगरिका को अपमानित कर और उसे निकालने के अनुभव के बाद यह कहता है। और अनन्या के रूप में जो चरित्र रचा गया है वह अत्यंत आधुनिक, किंतु जीवन की समझ रखने वाली विवेकशील और क्रांतिकारी महिला का है। अनेक विचारक उसे भविष्य का सत्य कहना चाहेंगे और अनेक उसे रूमानी, अव्यावहारिक या अन्ततः दुखप्रद ही कहना चाहेंगे। क्योंकि उपन्यासकार उस पर अपना निष्कर्ष नहीं देता—अनिश्चित ही रखता है, इससे उसकी खुली दृष्टि पर विश्वास होता है और प्रतीति होती है कि उपन्यास प्रचारात्मक या कोरा आदर्शवादी नहीं है, वरन यथार्थ की जमीन पर खड़ा होकर वह अपने प्रेम तथा त्याग की शाश्वत ऊर्जा से आज के जीवन के लिये उपयुक्त आदर्शों की, पारिवारिक संगठन की, जीवन मूल्यों की खोज कर रहा है। आज के भोगवादी समय में, पाश्चात्य संस्कृति से अन्धे हुए समाज में, संयुक्त परिवार के स्थान पर 'न्यूक्लियर' (नाभिकीय) परिवार के और उससे भी आगे बढ़ते हुए 'सिंगल पैरैन्ट' (अनन्या अन्ततः बनी) के–से घोर व्यक्तिवादी काल में संयुक्त परिवार की प्रतिष्ठा तथा इस ज़िन्दगी के कठिन तथा खतरनाक सफर में 'हमसफ़रों' के महत्त्व का, एक अर्थ में माननीय मूल्यों की पुनर्स्थापना का प्रयास एक पूर्ण आत्मविश्वास तथा दुर्लभ साहसी उपन्यासकार की माँग करता है जो अमर गोस्वामी में है।

□□□

एक बहती नदी की धार के गीत

• डॉ॰ श्रीराम परिहार

नव्य प्रतिभा के धारक यश मालवीय का दूसरा गीत संग्रह 'उड़ान से पहले' का प्रकाशन इक्कीसवीं शताब्दी के आरंभिक वर्षों की एक सुखद सूचना है। यश तक आते-आते गीत बहुत बदल गया है। यह बदलाव गीत परम्परा के विकास का नवगीत के रूप में नया सोपान है। पिछली शताब्दी के उत्तर समय में कविता जिस कुहासे में गुम हो गयी थी, उस कुहासे को नयी सदी के नवगीत चुनौती की तरह लेते हुए सही कविता की पीठिका रचते हैं। जिस जन को केन्द्र में रखकर तथाकथित कविता लिखी जाती रही, उस जन से ही वह दूर होती चली गयी या उस जन द्वारा ही वह अस्वीकृत कर दी गयी। इसका कारण यह कि जन की कविता लिखने वालों के पास न जन-जीवन का आनुभूतिक सच था और न ही कविता के शास्त्र का पारम्परिक ज्ञान। कविता कोरी विवेचना से जीवित नहीं रह सकती। आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी की पचास वर्ष पूर्व कही बात सच हो गयी – "वाद पद्धति पर चलने का नतीजा साहित्य में कृत्रिमता बढ़ाना, दलबन्दी फैलाना और साहित्य की निष्पक्ष माप को क्षति पहुँचाना ही हो सकता है।" कृत्रिम कविता की मौत उसके सर्जकों के सामने ही होती दिखाई दे रही है।

भारतीय ज़मीन की असली कविता गीत है। असली कविता वह है जो कवि की अपनी काव्य प्रतिभा से जन्म लेकर निष्पक्ष और दलहीन भूमि पर लहलहाती है। यश मालवीय ऐसी ही कवि प्रतिभा से सम्पन्न गीतकार हैं। यश गीत को समस्त जीवन से जोड़कर चलते हैं। यह समग्र को देखना और समग्र को अभिव्यक्त करना भारतीय कविता का मूलाभिप्रेय है। इस अभिप्राय को हिन्दी गीत की परम्परा में यश ने पूरी निपुणता से निखारा है। यश के गीतों में जीवन का यही समग्र-बोध मनुज-सम्बन्धों में 'आग सरीखा सच' बनकर प्रकटता है। यश के गीतों का यह सच इसी धरती का है। इस सच को; मनुजता के इस ताप को बन्द

कमरों में नहीं खोज सकते। यश के गीतों की आँच खुली धरती से प्राप्त की हुई है। उनके गीतों का व्यक्ति भीड़ का है। आम है। विशिष्ट नहीं। वह व्यक्ति अपनेपन मे जीने वाला है।

यश के गीतों में अपने समय के नवीन सन्दर्भों को अपनाने की और उनके साथ चलने की अद्भुत ताकत है। यश के गीत नास्टेल्जिया में कभी नहीं जीते और न ही बीते हुए का मोह पालते हैं। अतीत सीमित है। भविष्य अपरिमित है। यश गीत के कथ्य में भविष्य की इसी अपरिमितता की संभावना तलाशते हैं। वह धुन्ध के बीच से सूरज को देखने की चाह गीत में भरते हैं। उनके गीतों में रात लड़कर हर नयी भोर लाती है। इस नयी सदी की लड़ाई जीतने और भविष्य को दूर तक समेटने में परिवर्तन का निरंतर आग्रह करते हैं। पुराने से चिपकना उनके गीतों में स्वीकार्य नहीं। इसीलिए वे व्यक्ति को नीति के घेरों से निकालकर चौरस्तों पर चाय पीने के लिए ले आते हैं। 'मूल्य मर रहे हैं, अच्छा है' की अभिव्यंजना एक ओर अपने समय की नग्नता उजागर करती है, दूसरी ओर बदलाव की दस्तक भी स्पष्ट सुनती है। यश परिवर्तन की अनिवार्यता अनुभव करते हैं। परिस्थितियों से उपजे दु:ख को सामान्य–सी क्रिया या सहज संघर्षशीलता में रूपायित करते हैं। ऐसा होने पर जैसे हंस सरोवर की काई को काटता है, वैसे ही दु:ख कट रहे होते हैं।

पुरातनता की चादर को यश ओढ़कर कवियों की जमात में बिल्कुल नहीं जाना चाहते। समय के बदलाव में उपजी वैज्ञानिक दृष्टि सम्पन्नता आज के व्यक्ति में वे पाना चाहते हैं। इसीलिए शनिवार को लोहा न लाना, छींकने पर यात्रा न करना, दिशासूलों की ओर यात्रा न करना, शांति पाठ कराना आदि अन्धविश्वास एवं कर्मकाण्डों के प्रति गीतकार तल्ख हो गया है। यहाँ आकर गीत पूरी तरह वैज्ञानिक दृष्टिवान व्यक्ति की निर्मिति और स्थापना में दत्तचित्त हो जाता है। समय के सफों पर गलत चरित्रों के कारण युग की कथाएँ गलत लिख दी गयी हैं। यश उन्हें भी गीत के शिल्प के भीतर से अस्वीकारते हैं। उन्हें ऐसी रूढ़ियाँ भी मँजूर नहीं कि झूठ मोटर कार में घूमें और सच धूप के अखबार में भी ढूँढने से न मिल सके। यश एक निर्मल जीवन को परिवर्तन की राह पर देखना चाहते हैं।

लेकिन यश अपने समय में पाते हैं कि बदलाव के सन्दर्भ भी मनुष्य के बहुत अनुकूल नहीं हैं। स्वतंत्रता के बाद के मोहभंग से उपजी वास्तविकता ने इन गीतों को अपने समय के सच से रूबरू कराया है। यश जब यह कहते हैं कि 'जहाँ तक दृष्टि जाती है, एक काली नदी दिखती है। और रोशनी गाय–सरीखी कभी खूँटे में बँधी दीखती है।' तो इसमें युग से उपजी कुण्ठा नहीं है, बल्कि अपने समय का सच बयान हो रहा है और उसका सामना करने का आह्वान भी गीतकार करता है। वह आह्वान करता है कि उठो! आग को आकार दो। 'एक चिनगारी लपट बनकर उठे/तुम गढ़ो कुछ शब्द ऐसे आग के/चाक पर घूमें समूची सृष्टि ही/लौट आएँ पर्व फिर अनुराग के/जग हँसाई बन्द हो/जग को नया आधार दो।'

वर्तमान की पीठिका पर गतिमान व्यक्ति की क्रियाशीलता और ताकत को यश अनेक प्रसंगों में व्यक्त करते हैं। एक बहती नदी की धार के गीत हैं ये। उस नदी के तटों पर वनश्री

की हरितिमा भी है और तीर्थों–मेलों का उत्सव भी। एक मुक्कमल जीवन के सुख–दुःख को यश ने अपने गीतों में जगह दी है। इन गीतों में आदर्श नहीं है। लेकिन गीत उस आदर्श को अवश्य रेखांकित करते हैं, जिनके बिना जीवन जीया नहीं जाता। मसलन कि इन गीतों में व्यक्ति अपनी न्यूनता के साथ है, लेकिन वह पूर्णता की तलाश में है। व्यक्ति अपने लघु अस्तित्व में भी मूल्य का पोषक है। यश के गीतों का व्यक्ति अपरम्पार दुःखों में भी टूटता नहीं है। व्यक्ति और गीत दोनों को ही यह ताकत मूल्यों से ही प्राप्त होती है।

यश अपने इन गीतों में अनटूटा जीवन गाते हैं। अनटूटे जीवन की रेखा को गाढ़ी करने के लिए वे अपने समय की कुचालों को उभारते हैं। वे गाढ़े अँधेरे के बीच से रोशनी के बिन्दु उभारते हैं। अँधियारे को घना करने में आज राजनीति अग्रणी भूमिका में है। समाज की व्यवस्था को उसके मूल्यगत सरोकारों के साथ बदल देने में राजनीति ने कोई कसर नहीं छोड़ी है। यह हमारे समय का सच भी हो सकता है कि राजनीति ही आज व्यक्ति और समाज की दिशा तय कर रही है। पर बाज़ार भी तो है, जो इनकी दिशा को प्रभावित कर रहा है। कहा जा सकता है कि बाज़ार लगाने की, और बाज़ार द्वारा व्यक्ति–समाज के लूट की क्रिया में राजनीति की भी मिलीभगत है। यश के गीतों में गाँव से लेकर दिल्ली तक की राजनीति की तस्वीर को इस तरह फ्रेम किया है, कि अभिव्यक्ति की रोशनी में व्यक्ति जीवन और समाज व्यवस्था के कई–कई बिम्ब उभरते देखे जा सकते हैं। उपलब्धि के नाम पर पसीने में डूबा जनतंत्र है हमारे पास। वोटों पर नंगी होकर नाचती हुई प्यास है। आँगन–गलियारे में गूँजता अकाल है।

यश के गीतों में रिश्तों की एक सुन्दर बस्ती है। उसमें प्रेम, सद्भाव, समर्पण और समन्वय साथ–साथ रहते हैं। उस बस्ती में बूढ़े पिता हैं। ममतालु माँ है। वत्सल भाई है। उस बस्ती में बिल्ली के रास्ता काट देने पर भी सब काम होते हैं। उस बस्ती में रूढ़ियों की रीढ़ टूट चुकी है। अँधविश्वास जहाँ गल गये हैं। खिड़की की छींक जहाँ अचानक ही शुभ हो जाती है, यश ऐसी ही बस्ती के बंजारे हैं। यश के इस संग्रह को पढ़ते हुए लगेगा कि गीत की भाषा और शिल्प दोनों ही कितना आगे बढ़ गये हैं। यश ने भाषा को उसके रोमान से निकालकर समय के कठोर को कहने योग्य बनाया। यह भी हुआ है कि यश ने गीत को प्रतीकों–बिम्बों से अलग कर उसकी अभिव्यंजना में अलग व्यक्तित्व दिया। यश इस अर्थ में जीवन और गीत दोनों की लीक तोड़ते हुए भी दोनों को ही अपनी परम्परा में नवीन गौरव देते हैं।

□□□

अमरीका में 'अंधायुग'

● उमेश अग्निहोत्री

बहुत अरसे से धर्मवीर भारती रचित 'अंधायुग' करने की इच्छा थी। लेकिन जब तब इसे करने का प्रस्ताव रखा मित्रों–साथियों ने निरुत्साह ही किया। नाटक की भाषा, कथानक, प्रस्तुति को लेकर बहुत से संदेह व्यक्त किए जाते रहे। 'इसकी भाषा क्लिष्ट है, हम जो भारतीय अमरीका में आकर बस गये हैं उन्हें समझ नहीं आयेगी।' 'कथानक महाभारत से लिया गया है, अब तो वह टेलीविज़न पर देखा जा सकता है।' प्रस्तुति भी जटिल जान पड़ती है यहां कैसे कर पायेंगे इत्यादि।

'अंधायुग' आज़ादी के बाद के भारतीय जनमानस की स्थिति का, जिसमें भाई–भाई आपस में लड़े थे, साम्प्रदायिक हिंसा भड़की थी, मर्यादाएं टूटी थीं–बहुत सशक्त चित्रण है और आज भी सामयिक है आदि तर्क किसी को प्रभावित नहीं कर सके।

आलोचकों के तर्क इतने गलत भी नहीं थे। अमरीका में रहते–रहते बहुत से भारतीय अपनी भाषा, साहित्य, संस्कृति के साथ अपना सम्पर्क बनाये रखने की हर कोशिश के बावजूद उनसे धीरे–धीरे कटते ही जा रहे हैं। भारतीय नृत्य–संगीत में तब भी किसी हद तक उनकी रुचि है जिसके अपने कारण हैं–लेकिन जहां तक भाषा और साहित्य की बात है–और उसमें भी हिंदी साहित्य की–बहुतों की जानकारी नगण्य ही है। अन्य भाषा–भाषी लोगों को चूंकि अपनी भाषा की फिल्में प्रचुर मात्रा में देखने को नहीं मिलती, वे अपनी भाषा के प्रति अपने स्वाभाविक लगाव को अपनी भाषा की किताबें पढ़ कर या नाटक आदि देखकर शांत करते दिखायी देते है। लेकिन जहाँ तक हिंदी भाषी लोगों की बात है, स्थिति उलट है। शायद उन्हें लगता है कि हिंदी की किताबें हों या नाटक, वे उन्हें ऐसा क्या देंगे जो उन्हें हिंदी फ़िल्मों के ज़रिये नहीं मिल पाता। फ़िल्मों में कविता भी है, कहानी भी है और उच्च कोटि का अभिनय भी। इसलिए हिंदी फ़िल्मों के माध्यम से जितना कुछ वह भाषा और

साहित्य के नाम पर प्राप्त कर पाते हैं उतना ही है उनका साहित्यिक ज्ञान। वे उतने में ही प्रसन्न हैं। उनसे 'अंधायुग' जैसी कृति के लिए किसी भी तरह की सराहना की अपेक्षा करना मेरी ज्यादती ही कही जायेगी।

शायद यही कारण है कि मैंने यहां आकर जब भी कोई नाटक किया, हर बार घोषणा तो की कि अगला 'अंधायुग' होगा, पर इसे हर बार टालता ही रहा। यह स्थिति गत वर्ष के अंतिम दिनों में बदली जब इधर अमरीका में 11 सितम्बर की घटना हुई, और उधर दक्षिण एशिया में भी परमाणु युद्ध की बात कुछ इस तरह होने लगी मानों वह कोई खिलवाड़ हो। एक तरफ़ आतंक का परिदृश्य और दूसरी तरफ़ अमरीका, दोनों ही परमात्मा या अल्लाह को अपने पक्ष में बताते हुए, अपने हर कदम को औचित्य ठहराने लगे।

यह सब सुनते हुए 'अंधायुग' की पंक्तियां मन में गूंजती रहीं। जैसे कि 'धर्म किसी ओर नहीं था, सभी थे अपनी अंधी प्रवृतियों से परिचालित।' 'जिसको तुम कहते हो प्रभु... उसने मर्यादा को तोड़ा है बार–बार।' 'हर क्षण होती है प्रभु की मृत्यु कहीं न कहीं, हर क्षण अंधियारा गहरा होता जाता है।' और न जाने कितनी पंक्तियां। यही लगता रहा हर कोई मन में यह समझे कि 'हर क्षण इतिहास बनाने का क्षण होता है' अंतिम वार करना चाहता है, जिसके बाद उसे लगता है स्थिति उसके अपने पक्ष में अचानक बदल जायेगी।

उसके बाद अमरीका द्वारा आतंकी तंत्र का पकड़ा जाना, उसे अमरीका में लाया जाना, यह सब युयुत्सु की पीड़ा को नये संदर्भ देता जान पड़ा जो पुत्र तो धृतराष्ट्र का था लेकिन लड़ा था पांडवों की तरफ़ से, और युद्ध के बाद अपने घर वापस लौटा था। विश्व बाज़ारी–करण की मर्यादाओं के मौजूदा चरण में आज हर कोई अपने परिवार, समाज, देश के बंधनों से ऊपर उठ युयुत्सु की तरह सोचने के लिए विवश है।

यह कुछ बातें थी, मुझे लगा अमरीका में 'अंधायुग' करना ही होगा। अमरीका में बसे भारतीयों के लिए इसकी बहुत अहमियत है। वे कौन है, किस की तरफ़ है, क्या हमारा अतीत, हमारा दर्शन हमें कोई रास्ता दिखाता है?

एक शेक्सपीरियन अभिनेता रिचर्ड जॉनसन की कही बात भी याद आयी, जिसने लिखा था दूसरे विश्वयुद्ध के दौरान जब वह छोटा था, और जब बमों और राकेटों की आवाज़ आकाश को गुंजाये रखती थी, लंदन में शेक्सपियर के नाटक भी खेले जाते थे। वह भी एक नाटक देखने गया था। *'शेक्सपियर की उस महान कविता में ऐसी असाधारण शक्ति थी कि मुझे लगा अगर मुझे मरना ही है तो बेहतर होगा कि उस वक्त शेक्सपियर की वह सुंदर पंक्तियां मेरे दिमाग में हों।'*

'अंधायुग' की कविता भी कुछ कम सशक्त नहीं है। इसका आभास नाटक की रिहर्सलों के दौरान अभिनेताओं को तब होने लगा जब मैंने कुछ शब्द बदल कर उसी वज़न के सरल शब्द रखने चाहे ताकि दर्शकों को भावार्थ ग्रहण करने में कठिनाई न हो। लेकिन

जब तक मैं वैसा कर पाता अभिनेता मूल शब्द की ध्वनि का ही आनंद लेने लगे। मूल शब्द को रखने के प्रति आग्रह हिंदी भाषी अभिनेताओं से भी अधिक उन अभिनेताओं की ओर से था जो केरल, तमिलनाडु, कर्नाटक, गुजरात, महाराष्ट्र और पंजाब से थे। इनमें कोई किसी कम्पनी का सी.ई.ओ, कोई कंसलटेंट, कोई मैनेजर, कोई वैज्ञानिक था।

आरम्भ में जब अभिनेता नहीं मिल रहे थे, मैंने नाटक को संक्षिप्त भी किया क्योंकि मेरा उद्देश्य किसी भी सूरत में 'अंधायुग' करना था। पर एक बार जो आया वह अगली बार अन्य दो जनों को और लेकर आया, इस तरह पात्र बढ़ते चले गये, नाटक अपने सम्पूर्ण रूप में उभरने लगा। नाटक के लिए संगीत मैंने स्वयं कई रिकार्ड सुन–सुन कर छांटा। प्रकाश संयोजन दिलीप कुमार ने किया जो यूं तो कैनेडी सेंटर की प्रस्तुतियों में सहयोग देते हैं, लेकिन एक बार रिहर्सल देखने आये तो इतने प्रभावित हुए कि बोले मैं इससे जुड़ना चाहूंगा।

जुलाई में वाशिंगटन महानगर क्षेत्र के एक कॉलेज के औडिटोरियम में हमने पहली प्रस्तुति की। अपनी नाटक मंडली 'प्रवासी कला मंच' और इंडिया हैरिटेज सेंटर और प्रोड्यूसर डॉक्टर जय जोशी के सहयोग से हम यह नाटक कर पाये। गांधारी की भूमिका मेरी पत्नी और सशक्त अभिनेत्री पुष्पा अग्निहोत्री ने की।

जहाँ तक दर्शकों की बात है वे नाटक का वह अंक देखकर सर्वाधिक हैरान हुए जिसमें युधिष्ठर सिंहासन पर बैठ चुके थे और पांडव उद्दंड हो चुके थे, मांस भी बेहिसाब खाने लगे थे। इसका कारण शायद यह है कि पांडवों के बिगड़े स्वभाव और अपशब्दपूर्ण आचरण के संबंध में बहुत से लोगों को पर्याप्त जानकारी भी नहीं थी। अभिनेताओं तक से इस अंक को पूर्णतः उभारने में काफ़ी समय लगा।

धर्मवीर भारती ने इस अंक को शीर्षक दिया है 'विजय–एक क्रमिक आत्महत्या।' दर्शकों ने 'अंधायुग' के उस पक्ष को तो आसानी से ग्रहण कर लिया जिसमें युद्ध की निरर्थकता उभर कर सामने आती है, लेकिन 'विजय, एक क्रमिक आत्महत्या' है जिसमें 'विप्र निर्वासन' लेते हैं, और 'आत्मघात होने लगे हैं 'स्थितियां बिलकुल वैसी ही है जैसे पहले (धृतराष्ट्र के काल में) थीं, यह उन्हें आसानी से स्वीकार नहीं होता।

नाटक का वह संदेश जिसमें कृष्ण सबका दायित्व अपने ऊपर लेते हैं—चाहे वह युयुत्सु हो या अश्वत्थामा—और अपना दायित्व सब पर छोड़ दुनिया से चले जाते हैं—कई दर्शकों को बहुत महान तो लगा पर अनुकरणीय नहीं। मौजूदा दौर में यह दायित्व आज हर मानव के लिये है कि उसे मानव भविष्य को बचाना है, हिंसा के चक्र को रोकना है। इसके लिए उसे धर्म, जाति से ऊपर उठकर क्षमाशील होने का साहस दर्शाना है, कृष्ण या ईशु की तरह, जो क्षमा का संदेश देते हैं। कई लोगों की प्रतिक्रिया थी दंडित तो किया ही जाना होगा। जो भी हो, 'अंधायुग' जिसने देखा उसे सोचने के लिए बहुत–सी सामग्री दे गया।

□□□

प्रधानमंत्री निवास में 'कुछ देह/कुछ विदेह' और 'शंख को टेरती बाँसुरी'

● राजकुमार गौतम

26 दिसंबर, 2002। सायं 6.30 बजे। 'पंचवटी', प्रधानमंत्री निवास, नई दिल्ली। साहित्य को समर्पित संस्था 'परम्परा' (नई दिल्ली) द्वारा आयोजित काव्य–संध्या 'कविता के नाम शाम'। दो सद्यः प्रकाशित काव्य–संग्रहों 'शंख को टेरती बाँसुरी' (रामकुमार चतुर्वेदी 'चंचल') तथा 'कुछ देह/कुछ विदेह' (राजनारायण बिसारिया) का प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी के हाथों लोकार्पण का अवसर। समारोह की अध्यक्षता अटल जी और संचालन का दायित्व डा० कन्हैयालाल नंदन पर। मंच–विभूतियाँ पधार चुकी हैं। काव्य रसज्ञता को समर्पित विशिष्ट साहित्यिक बंधु पंचवटी में जुट रहे हैं।

अटल जी तथा अन्य विशिष्ट अतिथियों के हाथों से दीप प्रज्वलन। अटल जी की हल्की–सी चुटकी, अपनी ही काव्य–पंक्ति के जरिए : *'आओ फिर से दिया जलाएँ।'* 'परम्परा' संस्था के संस्थापक एवं प्रमुख संरक्षक काशीनाथ मेमानी अटल जी को उनके जन्मदिन (25 दिसंबर) की शुभकामनाएँ देते हुए अभिभूत हैं। जन्मदिवस और नव वर्ष के अवसर पर अटल जी के निदेशों में देश में नई ऊर्जा का संचार हो। आभार ज्ञापन है कि उन्होंने कविता की इस शाम में शामिल होने की अनुमति प्रदान की। 'इसके लिए हम सचमुच अटल जी के ऋणी हैं।' मेमानी जी ने परिचय दिया है 'परम्परा' का—सहज–संवेद्य कविता–धारा के वाहक कवियों को वार्षिक 'ऋतुराज सम्मान' प्रदान करना एवं काव्य–संध्याओं का आयोजन। पिछले वर्ष 'लहरों के शिलालेख' लेख–संकलन तथा इस वर्ष वरिष्ठ काव्यकार राजनारायण बिसारिया के संग्रह 'कुछ देह/कुछ विदेह' के माध्यम से प्रकाशन का सिलसिला। वरिष्ठ गीतकार रामकुमार चतुर्वेदी 'चंचल' का विशेष आभार जो कि 'परम्परा' के अंग ही हैं।

संचालन कर रहे डॉ० कन्हैयालाल नंदन ने कविद्वय का संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत किया। रामकुमार चंचल की लोकप्रियता असीम है। बिसारिया जी के इस आठ प्रकरणों वाले कविता–संग्रह में लगभग आधी शती की यात्राएँ एवं अनुभवों के विविध रंग हैं, जिन्हे आप आठ कविता–संग्रह भी मान सकते हैं। छंद और छंदमुक्त कविता में यह संग्रह सार्थक हस्तक्षेप करता है।

सुप्रसिद्ध विधिवेत्ता और सांस्कृतिक–साहित्यिक मेधा के पर्याय डॉ० लक्ष्मीमल्ल सिंधवी, अटल जी को विनम्रतापूर्वक धन्यवाद ज्ञापित करते हैं, जिनके कवि–मन के कारण ही ऐसी शामें संभव हो पाती हैं। इस आयोजन के केंद्रीय आकर्षण–दोनों कवि ऐसे हैं जिन्होंने हिंदी कविता की धारा को सजाया और सँवारा है। रामकुमार जो शौर्य और ओज के कवि हैं–इस बात का साक्षी है लाल किला, जिस पर आयोजित वार्षिक कवि–सम्मेलनों में उन्होंने लंबे समय तक निरंतर हिस्सेदारी निबाही है। वे नाम के भले ही 'चंचल' हों, मगर शब्द को हृदयंगम करने की दिशा में वे पर्याप्त गंभीर हैं। उनका संपूर्ण कृतित्व उल्लेखनीय है। दिनकर और शिवमंगल सिंह 'सुमन' की कविताओं में भी वैसा ही पराक्रम, संकल्प और साहस है जैसा कि रामकुमार की रचनाओं में। अटल जी के काव्य से भी हमें यही आश्वस्ति मिलती है। 'जंग न होने देंगे' लिखने वाले अटल जी शांति के दूत हैं, मगर कारगिल तो हुआ! किंतु जब मन में शांति होती है, तब युद्ध में आसक्ति नहीं होती। भविष्य की ऊर्जा, आस्था और निष्ठा मिलती है रामकुमार जी की कविताओं में–'आँसू–भरे महाभारत में/गीतों की सेना जीती है।' चंचल जी की कविताओं में दीपक से उनका लगाव बहुत लुभाता है–'*मृत्तिका के पुत्र हैं, दीपक हमारा नाम/ज्योति के संदेशवाही दूत हम अभिराम/स्नेह से भरपूर अंतर, वर्तिका उद्दाम/हम अँधेरे से करेंगे भोर तक संग्राम*।'

डॉ० सिंघवी को 'कुछ देह/कुछ विदेह' ने भी प्रभावित और अभिभूत किया है। शृंगार के साथ–साथ इन कविताओं में जीवन की कुछ ऐसी व्याख्याएँ हैं जो मन को छू जाती हैं। कई कविताएँ छंद से मुक्त रहकर भी, छंदयुक्त है। यह कवि का अपना अर्जित छंद है, भले ही वह छंदशास्त्र के अनुशासन में न हो। ये कविताएँ दैनिक सरोकारों से उपजती हैं। सामान्य–सी दिखने वाली बात से भी जीवन की आधारभूत भूमि पर कविता लिखी जा सकती है, यह साक्ष्य है यहाँ। उनकी एक कविता है–'*दुनिया की सबसे छोटी ग़ज़ल/मैंने तलाशी/नु जाने कहाँ, कहाँ/मिली/जब तुमने कही–'हाँ'*। बिसारिया जी सफल कवि हैं या सार्थक चित्रकार; निर्णय कर पाना मुश्किल है। उनमें अनुपम शब्द–चित्रात्मकता है।

अब समय था कि प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी 'कुछ देह/कुछ विदेह' तथा 'शंख को टेरती बाँसुरी' का लोकार्पण करें जो मंचासीन अतिथियों के मध्य संपन्न हुआ।

औपचारिक उपक्रमों के बाद अब बारी थी कवि–मुख से कविताओं के वाचन की। इस क्रम में सबसे पहले राजनारायण बिसारिया ने विविध रंगों को बिखेरती अपनी कुछ सराहनीय कविताओं का प्रभावशाली पाठ किया। कुछ छोटी कविताएँ, व्यंग्य और विडंबना की चुटकियाँ–

'नौकरी का रस', 'कॉफी हाउस' (*'कवि जी ने पानी का पाँचवाँ गिलास लिया/घंटे–भर सिप किया, खाली कर रख दिया/मेनेजर बोर हुआ/कहा–सुना शोर हुआ/कवि जी तब टले जब बैरे ने टिप किया!'*) के अतिरिक्त 'बहाने बनाना' तथा 'गीतों की बिदाई : गद्य का स्वागत' आदि कविताएँ सुनाकर उन्होंने श्रोताओं का मन मोह लिया।

रामकुमार चतुर्वेदी 'चंचल' ने प्रधानमंत्री जी को उस जन्मदिन की शुभकामनाएँ दीं जो नैसर्गिक रूप से बड़ा दिन भी है। अपने कवि में संस्कार–संरक्षण की परम्परा के लिए उन्होंने, जल, रज और आकाश का आभार व्यक्त किया। काव्य–पाठ की शुरुआत उन्होंने 'अस्तित्व घोष' शीर्षक कविता से की–*'मत समझना हो गया है/राख का अधिकार/मैं अभी अंगार हूँ/जलता हुआ अंगार!'* वरिष्ठ गीतकार और ऐसी सटीक पंक्तियों–*'जिसे बाँधा न जा पाए, उसे मुस्कान कहते हैं/जिसे टोका न जा पाए, उसे आह्वान कहते हैं/जिसे पोंछा न जा पाए, वही तो है खरा आँसू/जिसे जाना न जा पाए, उसे बलिदान कहते हैं।'*–के गीतकार ने अपनी कई राष्ट्रीय ओज और सम्मान की कविताओं के द्वारा प्रबुद्ध श्रोताओं को आंदोलित और प्रभावित किया।

संचालन कर रहे डॉ० नंदन ने एक ग़ज़ल के अलावा दार्शनिक तत्त्वान्वेषी कविता का पाठ किया तो श्रोताओं ने कवि को खुले मन से सराहा। कविता थी–*'आसमान टूटा/उस पर टँके हुए/ख़्वाबों के सलमे–सितारे/बिखरे!/देखते–देखते दूब के दलों का रंग/पीला पड़ गया/फूलों का गुच्छा/सूखकर खरखराया/और यह सब कुछ मैं ही था/यह मैं/बहुत देर बाद जान पाया।'* उनकी ग़ज़ल का रंग भी कुछ ऐसी ही सादगी में मर्मज्ञता का नमूना था–*'परिंदों की किस्मत में उड़ना लिखा है/बना ले भले वो कहीं आशियाना।'*

कार्यक्रम में केंद्रीय मंत्री सत्यनारायण जटिया ने 'उसकी याद आई है' तथा 'पत्थर' कविताओं का पाठ किया। डॉ० सिंघवी ने मनुष्य के मन को केंद्र में रखकर लिखी अपनी कविता को पढ़ा। अटल जी के जन्मदिन पर लिखी गई एक काव्य–शुभकामना का भी उन्होंने पाठ किया।

समारोह की अध्यक्षता कर रहे अटल जी ने कहा कि आज की कविता की यह शाम, ग्वालियर के नाम है। उन्होंने वर्षों पूर्व के परिवेश को याद करते हुए कहा कि जब वे, चंचल जी और सुमन जी ताँगे में बैठकर कवि–सम्मेलनों में जाते थे, उस आनंद को शब्दों में व्यक्त नहीं किया जा सकता। तब कवि–सम्मेलन स्तर के होते थे। चंचल जी इतने वर्षों बाद मिले हैं। वे चंचल ही रहे। उस समय जब ये दहाड़ते थे, तो लाल किले में श्रोता अभिभूत हो जाते थे। बिसारिया जी अलग तरह के कवि हैं। मैं कविता लिखता था, अब नहीं लिखता हूँ। कोई राजनीति में कविता लिख सकता है, मुझे नहीं भरोसा होता। लेकिन राजनीति भी छोड़ी नहीं जा सकती। लेकिन जब छूटेगी, मैं कविता की ओर लौटूँगा–यह मैं आपको विश्वास दिलाता हूं।

अटल जी ने इस अवसर पर 'जीवन बीच चला' तथा 'ऊँचाई' शीर्षक कविता का पाठ किया। इस कविता की अंतिम पंक्तियाँ हैं–*'मेरे प्रभु! मुझे इतनी ऊँचाई कभी मत देना/गैरों को गले न लगा सकूँ/इतनी रुखाई कभी मत देना।'*

अटल जी के अनुरोध पर श्रोताओं में उपस्थित प्रख्यात हास्यकवि सुरेंद्र शर्मा ने अपनी कविता 'सूर्पणखा' का पाठ किया। समारोह के अंत में 'परम्परा' संस्था की संचालिका श्रीमती किरण मेमामी ने धन्यवाद ज्ञापन किया।

□□□

रचनाकार

विद्यानिवास मिश्र
4/19, आसफ अली रोड
नई दिल्ली–110 002

डॉ॰ लक्ष्मीमल्ल सिंघवी
18, विलिंगडन क्रेसेंट,
नई दिल्ली-110 011

नरेन्द्र कोहली
175, वैशाली, पीत्तमपुरा
दिल्ली -110 088

पूर्णिमा वर्मन
पोस्ट बाक्स-25450,
शारजाह, यू ए इ

प्रो॰ पुष्पिता
हिन्दी प्रोफेसर, प्रथम सचिव
भारतीय सांस्कृतिक केन्द्र
भारतीय राजदूतावास, पारामारिबो
सूरीनाम

दिविक रमेश
बी–295, सेक्टर–20,
नोएडा–201 301

सुरेशचन्द्र शुक्ल 'शुक्ल आलोक'
Editor, Speil
Grevlingveien 2G
0596 Oslo
Norway

डॉ॰ मोहन कां. गौतम

मनोहर पुरी
82, साक्षर
ए-3, पश्चिम विहार
नई दिल्ली -110 063

प्रो॰ सुरेश ऋतुपर्ण
अतिथि आचार्य,
तोक्यो यूनीवर्सिटी ऑफ फॉरेन स्टडीन
3-11-1, अशाहीयो, फुचु–शी,
तोक्यो–183–8534
जापान

ओम प्रकाश कादयान
973, अर्बन एस्टेट–2,
हिसार (हरि.)–125 005

पंकज परिमल
राजकीय आयुर्वेदिक चिकित्सालय
माज़रीमाफी, पो॰ आई॰आई॰पी॰ मोहकमपुर
देहरादून (उत्तरांचल)

दया प्रकाश सिन्हा
बी–255, सेक्टर–26
नोएडा–201 301

प्रेम कृष्ण टंडन
27, मैत्री एंपार्टमेंट्स
ए-3 पश्चिम विहार
नई दिल्ली–110 063

बालेश्वर अग्रवाल

लालित्य ललित
बी-3/43 शकुंतला भवन
पश्चिम विहार
नई दिल्ली – 110 063

अभिमन्यु अनत
संवादिता
त्रिओले, मारीशस

पद्मेश गुप्त

अश्विन गाँधी

गोपाल चतुर्वेदी
9/5, राणा प्रताप मार्ग
लखनऊ–226 001

कुँअर बेचैन
2, एफ–51
नेहरू नगर
गाजियाबाद

हरिशंकर 'आदेश'
18 Sugarbush Square
Westhill Ont. MIC 3M7
Canada

गंभीर सिंह पालनी
प्रबंधक
नैनीताल बैंक लि०
भीमताल–263 136
(उत्तरांचल)

गौतम सचदेव
42 Headstone Lane
Harrow Middlesex
HA-2 6 HG (W.K.)

पद्मा दुबे
B-97 सिद्धार्थ कुँज अपार्टमेंटस
सेक्टर–7, प्लाट नं. 17,
द्वारका, नई दिल्ली–110045

अशोक भाटिया
1882 सैक्टर–13,
अरबन एस्टेट
करनाल–132 001

अशोक आलोक
द्वारा इलाहाबाद बैंक
कैशोपुर जमालपुर–811 214
मुंगेर (बिहार)

विश्वमोहन तिवारी

डॉ० श्रीराम परिहार
आजाद नगर,
खण्डवा-450 001

उमेश अग्निहोत्री
7881 Wintercress la
Springfield, VA-22152

राजकुमार गौतम
60/4 सी, सैक्टर–II
डी आई जेड एरिया
काली बाड़ी मार्ग
नई दिल्ली-110 001